गुजराती हस्तलिखित पद संग्रहों में प्राप्त मध्यकालीन हिन्दी पद साहित्य का आलोचनात्मक अध्ययन

प्रयाग विश्वविद्यालय की डी० फिल्० की
उपाधि के लिये प्रस्तुत
शोध-प्रबंध

●

प्रस्तुत-कर्ता
ओम प्रकाश सक्सेना एम० ए०

निर्देशक
डा० जगदीश गुप्त

●

हिन्दी-विभाग
प्रयाग विश्वविद्यालय
१९६५

अ व त र णि का

मध्ययुग का भक्ति आन्दोलन देश व्यापी था। इस आन्दोलन की प्रेरणा से विविध भारतीय भाषाओं में जो भक्ति-काव्य रचा गया उसमें भाषा के परिधान की भिन्नता होते हुये भी भाव, चेतना की पर्याप्त समानता मिलती है। विविध भारतीय भाषाओं के साहित्य परस्पर इतने अधिक प्रभावित हुये कि एक प्रदेश के कवियों की रचनाएं दूसरे प्रदेश में सैकड़ों योजनों की यात्रा करके पहुंची और वहां के लोकमानस को प्रभावित करने में सफल सिद्ध हुई। इस भूमिका में गुजराती हस्त-लिखित पद संग्रहों में प्राप्त मध्यकालीन हिन्दी पद साहित्य के आलोचनात्मक अध्ययन की महत्ता एवं उपादेयता का स्पष्टीकरण स्वयमेव हो जाता है। १९६० ई० में एम०ए० करने के उपरांत १९६१ ई० में शोध में प्रवृत होने पर मेरे मन में प्रस्तावित विषय पर अनुसंधान करने की जिज्ञासा उत्पन्न हुई। उस समय विषय को स्वीकार कर लेने पर भी अपनी सीमित शक्ति देखते हुये सफलता के प्रति मैं पूर्ण आश्वस्त नहीं था किन्तु ज्यों-ज्यों गुर्जर प्रदेश की अनेक यात्राएं सम्पन्न होती गई और मुझे गुजराती हस्तलिखित पद संग्रहों से हिन्दी पदकारों के अनेक पद रत्न प्राप्त होते गये, उसी अनुपात में मेरा उत्साह सम्वर्धित होता गया।

इस सम्बन्ध में लेखक को गुजरात, बम्बई, नाथद्वारा, कांकरोली जैसे अनेक स्थानों की यात्रा करनी पड़ी। गुजरात में रहकर उसने कई महीनों तक अहमदाबाद की "गुजरात विद्या सभा", नड़ियाद की 'डाही लक्ष्मी लायब्रेरी', बड़ौदा के प्राच्य विद्या मंदिर, में कार्य किया। बम्बई की श्री फार्बस गुजराती सभा में भी उसे कुछ दिनों तक कार्य करना पड़ा। अपनी अनेक यात्राओं में लेखक को नाना प्रकार की कठिनाइयों का सामना करना पड़ा, जिनका विस्तार यहां अनावश्यक सा प्रतीत होता है।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध दस अध्यायों में विभाजित है। पूर्व पीठिका के अन्तर्गत गुजरात और हिन्दी प्रदेश के सांस्कृतिक सम्बन्धों का अनुसंधान किया गया है और यह दिखाने का यत्न किया गया है कि गुजरात और हिन्दी प्रदेश राजनैतिक, सामाजिक धार्मिक और साहित्यिक सूत्रों से चिरकाल से परस्पर आबद्ध रहे हैं। उनकी इस सम्बद्धता का प्रभाव दोनों प्रदेशों के साहित्यों पर भी पड़ा है। इसी का परिणाम है कि मध्ययुग के अनेक हिन्दी पदकारों के पद गुजरात पहुंचे और वहां उन्हें लोक-

-प्रियता प्राप्त हुई । गुजराती संग्रह कर्ताओं ने गुजरात के वैष्णव कवियों के समान हिन्दी प्रदेश के भक्त कवियों के पदों को भी पर्याप्त महत्व प्रदान किया । अस्तु इस अध्याय को समस्त अध्ययन की भूमिका कहा जा सकता है ।

प्रथम अध्याय में गुजराती के उन हस्तलिखित पद संग्रहों का विवरण प्रस्तुत किया गया है जो गुजरात के विभिन्न संग्रहालयों में सुरक्षित है । इन हस्तलिखित पद संग्रहों में सामान्य रूप से अत्यन्त प्रसिद्ध हिन्दी पदकारों के पद प्रचुरता के साथ मिलते हैं किन्तु ऐसे पदकारों के पदों की भी संख्या कम नहीं है जो अधिक प्रसिद्ध नहीं कहे जा सकते । ऐसे कवियों की सूची इस अध्याय में दी गई है । हिन्दी प्रदेश में हिन्दी साहित्य सम्मेलन ही एक मात्र ऐसी संस्था है जहां इस प्रकार का एक पद-संग्रह सुरक्षित है । शेष सभी संग्रह गुजरात में ही सुलभ हुये हैं । कुल मिलाकर इस अध्ययन में लगभग एक सौ चार हस्तलिखित पद संग्रहों से एकत्र की गई सामग्री का निर्देश किया गया है ।

दूसरा अध्याय भी एक प्रकार से पहले अध्याय से ही सम्बद्ध है । इसके अन्तर्गत उन व्यक्तिगत और सार्वजनिक संस्थाओं का परिचय दिया गया है जहां की हस्तलिखित प्रतियों का अध्ययन किया गया है ।

तीसरे अध्याय में आलोच्य पदों की वर्ण्यवस्तु का विवेचन हुआ है । सम्पूर्ण अध्ययन की सामग्री को सगुण और निर्गुण भक्ति मूलक पद शीर्षकों में विभाजित कर क्रमश: कृष्ण चरित, राम चरित, वल्लभाचार्य, माहात्म्य वर्णन, विनय, पर्व, उत्सव, तथा चेतावनी, भक्ति तथा गुरु महिमा आदि शीर्षकों के अन्तर्गत वर्गीकृत किया गया है । जो स्थल भाव की दृष्टि से महत्वपूर्ण थे उनका वैशिष्ट भी निरूपित किया गया है । यह समस्त विश्लेषण पदों को ही साक्ष्य मानकर प्रस्तुत किया गया है । अन्य किसी स्रोत का संधान पुनरावृत्ति के भय से अनुचित समझा गया ।

चौथे अध्याय में प्राप्त पद साहित्य का रचनाकारों के अनुसार वर्गीकरण प्रस्तुत किया गया है । गुजराती हस्तलिखित पद संग्रहों में जिन हिन्दी पदकारों के पद प्राप्त हुये हैं, यहां उनकी जीवनी एवं रचनाओं का अनुसंधान न करके मात्र परिचय देना ही उचित समझा गया है । कुल मिलाकर लगभग सत्तर पदकारों के पद गुजराती हस्तलिखित पद संग्रहों में सुरक्षित हैं । ये पदकार हिन्दी प्रदेश के प्रसिद्ध पदकार हैं जो निम्बार्क,

वल्लभ, चैतन्य, राधावल्लभ, हरिदासी, रामानंदी, एवं संत आदि सम्प्रदायों से संबंधित हैं। इनके अतिरिक्त कुछ ऐसे पदकारों के भी पद उपलब्ध हुये हैं जो किसी सम्प्रदाय से अपना सम्बन्ध नहीं रखते उन्हें स्फुट कवि शीर्षक के अन्तर्गत रक्खा गया है। कुछ पदकार ऐसे भी हैं जो गुजरात और महाराष्ट्र से सम्बद्ध थे किन्तु उन्होंने काव्य-रचना हिन्दी में भी की।

" उपलब्ध रूपों से तुलना " शीर्षक पांचवे अध्याय में आलोच्य पदों की उनके उपलब्ध रूपों से तुलना की गई है। अधिकांश पदों की उनके प्रकाशित रूप से एकरूपता लक्षित होती है किन्तु इसके साथ ही कुछ महत्वपूर्ण अन्तर भी मिलते हैं। इसी संदर्भ में रचनाकार के नाम में अन्तर, एक पद के अथवा उसके किसी अंश के एकाधिक प्राप्त पाठों की उपयुक्तता पर भी विचार किया गया है। अंत में लेखक इस निष्कर्ष पर पहुंचा है कि आलोच्य पदों में प्राप्त परिवर्तन पाठ विज्ञान और भाषा के रूपात्मक अध्ययन की दृष्टियों से पर्याप्त महत्वपूर्ण कहे जा सकते हैं।

" पाठ की दृष्टि से विचार " शीर्षक छठें अध्याय में आलोच्य पद-साहित्य की पाठ समस्या पर विचार किया गया है। इस अध्ययन को सूरदास, परमानंददास, कबीर के पदों तक ही सीमित रक्खा गया है क्योंकि इन्हीं पदकारों के पद एक तो संख्या में अधिक हैं और दूसरे अध्ययनगत सामग्री भी प्रस्तुत करते हैं। इन तीनों कवियों के प्राप्त पदों की संख्या, प्राप्ति स्रोत, पाठ-विकृतियों और उनके कारणों का अध्ययन प्रस्तुत करने के अनन्तर हस्तलिखित प्रतियों का मुद्रित रूपों से सम्बन्ध निर्दिष्ट किया गया है। वस्तुस्थिति के स्पष्टीकरण हेतु तालिका-चित्र भी प्रस्तुत किये गये हैं। अंत में हिन्दी पाठ की तुलना में गुजराती पाठ की उपलब्धि पर भी विचार किया गया है।

" भाषा का स्वरूप और मिश्रण की समस्या " शीर्षक सातवा अध्याय पर्याप्त महत्व का है। इस अध्याय के उत्तरांश में ध्वनि परिवर्तन एवं पंजाबी गुजराती भाषाओं के मिश्रण का उदाहरण सहित विवेचन प्रस्तुत किया गया है। अध्याय के पूर्वांश में कुछ पदकारों के पदों में प्राप्त तत्सम, अर्ध तत्सम, तद्भव, देशज, और विदेशी शब्दों के आधार पर आलोच्य पद साहित्य के शब्द समूह का निरूपण हुआ है। पर्याय शब्दों के उदाहरण के रूप में कृष्ण और राम के लिये प्रचलित शब्दों का संकलन उदाहरण रूप में प्रस्तुत किया गया है जो पर्याप्त महत्वपूर्ण हैं।

" छंद विधान " शीर्षक आठवें अध्याय में पदों के स्वरूप तथा उसमें प्राप्त ध्रुवा,

की विभिन्न स्थितियों की ओर निर्देश प्राप्त होगा । इसके साथ ही पदों में प्रयुक्त विभिन्न छंदो,उनके लक्षणों और आलोच्य पदों में प्राप्त उनके उदाहरणों का भी निर्देश कर दिया गया है । छंद निर्देश के अनन्तर कृष्णभक्त कवियों के पदों में संगीत, विभिन्न रागों और वाद्यों का विशेष उल्लेख किया गया है क्योंकि कृष्णभक्त कवियों के आलोच्य पदों में संगीत का निर्वाह सर्वाधिक कुशलता के साथ हुआ है ।

अध्याय नौ में प्राप्त अप्रकाशित पदों की प्रामाणिकता पर विचार किया गया है । गुजराती हस्तलिखित पद संग्रहों में परमानंददास,कृष्णदास,कुंभनदास,और कबीर के कुछ पद ऐसे भी प्राप्त हुये हैं जो मुद्रित संस्करणों ~~की-पुस्तक-में~~ नहीं प्राप्त होते । इसीकारण इन्हें अप्रकाशित पदों की संज्ञा दी गई है । इन कवियों के जो पद-संग्रह प्रकाशित है उन संग्रहों का आधार क्या है इसका उन्हीं के साक्ष्य के आधार पर निर्देश किया गया है । इसके उपरांत अप्रकाशित पदों की वर्ण्यवस्तु पर विचार करते हुये जहां-जहां प्रकाशित पदों की विषय वस्तु से अन्तर मिलता है उसका भी उल्लेख कर दिया गया है । अंत में यह संभावना व्यक्त की गई है कि ये अप्रकाशित पद वास्तव में इन्हीं कवियों के हैं,किसी कारण से गुजराती हस्तलिखित पद संग्रहों में सुरक्षित रह गये जब कि हिन्दी परंपरा में उनका लोप हो गया ।

दसवें अध्याय में नवोपलब्ध पदों के साहित्यिक मूल्यांकन का यत्न किया गया है । इन पदों की मूल प्रेरणा भक्ति भावना रही है किन्तु अपवादों को छोड़कर अधिकांश पदों का उद्देश्य सम्प्रदाय प्रचार एवं साम्प्रदायिक भावधारा की विवृति ही रहा है । यहां पर केवल परमानंददास,कृष्णदास,कुंभनदास, कबीर के प्राप्त अप्रकाशित पदों के ही काव्यत्व का ही निरूपण किया गया है ,अन्य प्राप्त अप्रकाशित पदों का नहीं।

उपर्युक्त आधारों पर प्रस्तुत अध्ययन को मौलिक कहा जा सकता है ।गुजराती हस्तलिखित पद संग्रहों में प्राप्त पदों का उद्घाटन एवं अध्ययन इससे पूर्व कही नहीं हुआ है । तथ्य निरूपण के साथ उनके विश्लेषण द्वारा तर्कसंगत निष्कर्षों पर पहुंचने के लिए लेखक आद्य से अंत तक सजग रहा है । इसीलिए प्रबंध में अनावश्यक विस्तार नहीं मिलेगा ।

अपने यात्रा काल में लेखक को आचार्य नवलकृष्ण गोस्वामी,श्रीविनीत गोस्वामी, श्री नवनीत गोस्वामी,डा० प्रियबाला शाह,श्री रसिकलाल छो० पारीख, श्री गोविंद लाल भट्ट, श्री मगनभाई देवशंकर , श्री मंजूबेन एच० फवेरी,उपेन्द्र उ० रावल. आदि

अनेक महानुभावों का सहयोग प्राप्त हुआ जिसके लिये वह उनका हृदय से आभारी है । लेखक उन सभी संस्थाओं और उनके कार्य कर्ताओं का भी अत्यन्त आभारी है जिनकी सहायता से उसे सामग्री संकलन की अनेक सुविधायें प्राप्त हुई । इस संदर्भ में लेखक विद्वर श्री केशवराम काशीराम शास्त्री का विशेष अनुग्रही है क्योंकि लेखक उनसे अनेक प्रकार से लाभान्वित हुआ है ।

अपने श्रद्धेय गुरु डा० जगदीश गुप्त का लेखक सबसे अधिक कृतज्ञ है जिनके पाण्डित्यपूर्ण निर्देशन में यह प्रबन्ध लिखा गया है । यदि विषय चयन से लेकर अंत तक लेखक उनकी दृष्टि का सम्बल न प्राप्त करता तो यह कार्य असंभव ही था ।

मैं श्रद्धेय गुरुवर प्रो० रामकुमार वर्मा के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करना अपना धर्म समझता हूं जिन्होंने कृपापूर्वक प्रस्तुत विषय पर कार्य करने की अनुमति प्रदान कर मेरे उद्देश्य की ओर मुझे अग्रसर किया । इसके अतिरिक्त पं० उमाशंकर शुक्ल, डा० माता प्रसाद गुप्त, डा० हरदेव बाहरी, डा० पारसनाथ तिवारी, डा० राजेन्द्र कुमार वर्मा, श्री पूर्णेन्दु त्रिवेदी, से भी मुझे समय-समय पर अध्ययन विषयक विविध सुझाव मिलते रहे हैं. मैं इन सभी शुभेच्छुओं का अत्यन्त आभारी हूं । बन्धुवर श्री निवास तिवारी की अन्तिम समय पर प्राप्त सहायता मेरे लिए अत्यंत महत्वपूर्ण सिद्ध हुई है ।

अंत में लेखक उन सब का पुनः स्मरण करता है जिनके सद्भाव से आज यह कार्य पूरा हो सका है ।

ओम प्रकाश सक्सेना

(ओम प्रकाश सक्सेना)

१६१, अतरसुइया
प्रयाग,
१०-१२-६५.

संक्षिप्त रूप

आ०	आचार्य निवास, अहमदाबाद
उत्त०	उत्तरार्ध
की०	कीर्तन संग्रह
क०ग्रं०प्रयाग	कबीर ग्रंथावली, हिन्दी परिषद् प्रयाग विश्वविद्यालय, प्रयाग
क०ग्रं०सभा	कबीर ग्रंथावली, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी
कां०	कांकरौली
गु०	गुजरात विद्या सभा, अहमदाबाद
डा०	डाही लक्ष्मी लायब्रेरी, नड़ियाद
तृ०	तृतीय
द्वि०	द्वितीय
देसाई	लल्लूभाई छगनलाल देसाई
प०का०	परमानन्द सागर, प्रकाशक, विद्या विभाग कांकरौली
प०शु०	परमानन्द सागर, संपा० डा० गोवर्धननाथ शुक्ल
पद सं०	पद संख्या
पू०	पूर्वार्द्ध
प्र०	प्रथम
प्रका०	प्रकाशक
प्रा०	प्राच्य विद्या मंदिर, बड़ौदा
पृ०	पृष्ठ

पं०शु०	पंडित उमाशंकर शुक्ल
फा०	श्री फार्बस गुजराती सभा, बम्बई
भा०	भाग
म०	मगनभाई देवशंकर, बड़ौदा
सभा०	नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी
सं०	संख्या
संपा०	संपादक
श०क०	शब्दावली कबीर चौरा
श०वे०	शब्दावली वेलवेडियर प्रेस
ह०प्र०सं०	हस्तलिखित प्रति संख्या
हिं०	हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग

- अनुक्रम -

पूर्व पीठिका

प्रथम खंड : परिचय

अध्याय १

गुजराती हस्तलिखित पद संग्रहों का विवरण

अध्याय २

मुख्य ग्रन्थ प्राप्ति स्थानों का परिचय

व्यक्तिगत संग्रह - श्री मगन भाई देवशंकर का निजी संग्रह, आचार्य निवास का निजी संग्रह

सार्वजनिक संग्रह- गुजरात विद्या सभा, अहमदाबाद - डाहीलक्ष्मी लायब्रेरी, नड़ियाद - प्राच्य विद्या मंदिर, बड़ौदा- श्री फार्वस गुजराती सभा, बम्बई - हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग ।

(पृष्ठ ५४ से ५९ तक)

द्वितीय खंड : प्राप्त पदों का वर्गीकरण

अध्याय ३

वर्ण्यवस्तु का अध्ययन

वर्ण्यवस्तु की दृष्टि से वर्गीकरण - क- सगुण भक्ति मूलक पद -ख- निर्गुण भक्ति मूलक पद ।

क- सगुण भक्ति मूलक पद - कृष्ण चरित : कृष्ण जन्म - कृष्ण के संस्कार- नामकरण-छठी-वर्षगांठ- बाल लीला- कृष्ण का प्रातः जागरण- पालना-कलेऊ- बेदन(भोग)-घुटनों चलना- आंगन में नृत्य- सौन्दर्य वर्णन - माखन चोरी - गोवर्धन लीला - गोचारण- चीरहरण ।

राधा प्रधान कृष्ण लीलाएं - राधा जन्म- पालना - राधा सगाई- पनघट लीला- संभोग वर्णन - वसंत क्रीड़ा - होली - वर्षा हिंडोला दान लीला - मान लीला - रास लीला - महारास-जलक्रीड़ा - मथुरा लीला - विरह - गोपी उद्धव संवाद ।

रामचरित - राम जन्म - पालना - जागना - खेल - आखेट -

मिथिला गमन - धनुष भंग - विवाह - राम वन गमन - राम केवट संवाद - भरत पश्चाताप - हनुमान लंका गमन - विभीषण शरणागत - राम प्रतिज्ञा - रावण मंदोदरी संवाद - रावण अंगद संवाद - वसंत ।

वल्लभाचार्य एवं उनके वंश से सम्बन्धित पद - श्रीमद् वल्लभाचार्य - गो० विट्ठलनाथ - गो० गोपीनाथ ।

माहात्म्य वर्णन सम्बन्धी पद - श्री यमुना - वृन्दावन - गोकुल ।

विनय, राम कृष्ण के प्रति - नाम स्मरण - दैन्य वर्णन - इष्टदेव की महत्ता - पश्चाताप - भय प्रदर्शन - उद्धार की प्रार्थना - वंदना- आश्वासन ।

पर्व और उत्सव - दीपावली - रक्षा बंधन - पवित्रा - चंदन धारण रथयात्रा - हटरी - वामन जन्म - नृसिंह अवतार ।

विविध - आरती - शिव द्वारा कृष्ण दर्शन - राम और कृष्ण की उभयमूलक भक्ति ।

ख- निर्गुण भक्ति मूलक पद - चेतावनी - भक्ति तथा गुरु महिमा विविध - निष्कर्ष ।

(पृष्ठ ६० से ८८ तक)

अध्याय ४

रचयिता के अनुराग वर्गीकरण

कृष्णभक्त कवि

निम्बार्क सम्प्रदाय - श्री भट्ट

वल्लभ सम्प्रदाय - सूरदास - परमानंददास - कुंभनदास - कृष्णदास - नंददास - चतुर्भुजदास - गोविंदस्वामी - छीतस्वामी - कटहरिया- कान्हरदास - जन भगवान - श्री काका वल्लभ जी - श्री द्वारिकेश जी - श्री व्रजोत्सव जी - श्री चन्द्रप्रिया बेटी जी - गो० श्री विट्ठलनाथ व गंगाबाई - दयाल - मदनमोहन - विष्णुदास

रामदास - हरिराय - तुलसीदास(जगधरिया)- मथुरादास - हरजीवन - पैला - धोंधी - माधवदास दलाल - मानकचंद - रामराय हित- भगवानदास - श्री रघुनाथ - यादवेन्द्र - हृषिकेश - स्यामदास- पद्मनाभ दास - राजा आसकरन

चैतन्य सम्प्रदाय - गदाधर भट्ट - सूरदास मदनमोहन - वल्लभ रसिक

राधावल्लभ सम्प्रदाय - श्री हित हरिवंश - हरिराम व्यास - हित रूपलाल - हित दामोदर - नागरीदास - गो० किशोरीलाल - चन्द्रसखी ।

हरिदासी सम्प्रदाय - स्वामी हरिदास - विट्ठल विपुल ।

रामानंदी सम्प्रदाय - रामानंद - गो० तुलसीदास - अग्रदास - प्राणदास - बन्ना भगत - रामसेवक ।

संत कवि - कबीर - रैदास - धरमदास - मलूकदास - गरीबदास - दादुदयाल ।

स्फुट कवि - मीरांबाई - तानसेन - कवि गंग ।

हिन्दीतर भाषा भाषी कवि - ब्रह्मानंद - नरसिंह मेहता - नामदेव- निष्कर्ष । (पृष्ठ ६० से ११२तक)

तृतीय खंड : प्राप्त पदों का आलोचनात्मक अध्ययन

अध्याय ५

उपलब्ध रूपों से तुलना

पदों में अन्तर और उसके कारण

क- रचनाकार के नाम का अन्तर - एक ही कवि के अनेक नाम - स्मृति विभ्रम - सम्प्रदाय भेद के कारण - उदाहरण ।

ख- चरणों की न्यूनाधिकता - आदर्श बाहुल्य - विवरणात्मक प्रसंग - स्मृति विभ्रम - साधारण असावधानी - वर्ण साम्य के कारण - उदाहरण ।

ग- पाठ की अत्यधिक भिन्नता - उदाहरण - निष्कर्ष ।

(पृष्ठ ११४ से १४६ तक)

अध्याय ६

पाठ की दृष्टि से विचार

सूरदास - प्राप्त पदों की स्थिति - पाठ विकृतियाँ - नागरी लिपि जनित - वर्ण विपर्यय - उच्चारण साम्य - प्रतिलिपिकार की असावधानी - फारसी लिपि जनित - अज्ञात कारण - प्रतियों का मुद्रित रूपों से सम्बन्ध - पदों के हिन्दी रूप की तुलना में गुजराती रूप की कतिपय उपलब्धियां - प्रक्षिप्त पद ।

परमानंददास - प्राप्त पदों की स्थिति - पाठ विकृतियाँ - नागरी लिपि जनित - फारसी लिपि जनित - अन्य कारण - सचेष्ट कारण - प्रतियों का मुद्रित रूपों से सम्बन्ध - हिन्दी पदों की तुलना में गुजराती पदों की उपलब्धियां - प्रक्षिप्त पदों की समस्या ।

कबीर - प्राप्त पदों की स्थिति - पाठ विकृतियां - नागरी लिपि जनित - पुनरावृत्ति सम्बन्धी - फारसी लिपि जनित - गुजराती प्रभाव जनित - अधिक शब्द समावेश के कारण - प्रतियों का मुद्रित रूपों से सम्बन्ध - हिन्दी पद की तुलना में गुजराती पद की उपलब्धि - अप्रकाशित पद - निष्कर्ष ।

(पृष्ठ १५० से १८९ तक)

अध्याय ७

भाषा का स्वरूप और मिश्रण की समस्या

शब्द समूह - तत्सम शब्द - अर्ध तत्सम शब्द - तद्भव शब्द - देशज शब्द - विदेशी शब्द ।

शब्दों में ध्वनि परिवर्तन - ध्वनि परिवर्तन के कारण - इ > ई - इ की स्थिति - ह का लोप - इ > अ - उकार का लोप - मध्यस्थ स्कार की स्थिति - ऐ > अई - औ, औं > अउ - अ, उ, ऊ > औ - क > ग - ख > ष - य का आगम - स का श - ह का लोप - अल्पप्राण

का महाप्राण - ण का ड़ - त्र के स्थान पर त - ज्ञ का ग्य- संयुक्त ध्वनियों में र् तथा व् का लोप - च का लोप - निष्कर्ष ।

पर्याय शब्द - कृष्ण - राम

भाषा मिश्रण - ~~[illegible]~~ पंजाबी भाषा का मिश्रण - गुजराती भाषा का मिश्रण - मिश्रण के कारण - मिश्रण के रूप - संज्ञा - विशेषण - सर्वनाम - क्रियापद - सहायक क्रिया - अव्यय - विभक्ति - निष्कर्ष ।

(पृष्ठ१८८से २१८तक)

अध्याय ८

छंद विधान

पदों का स्वरूप - ध्रुवा सहित पद - ध्रुवा रहित पद - ध्रुवा से पद की संगति - छंद संगति - तुक संगति ।

पदों में प्रयुक्त छंद और उनका स्वरूप - सरसी और सार - विष्णुपद - [illegible] - उपमान, शोभन, रूपमाला - हरिप्रिया - कुकुभ - सखी- दिग्पाल - वीर - झूलना - चौपाई - चौबोला - ।

कृष्ण भक्त कवियों के पदों में संगीत विधान - निष्कर्ष ।

(पृष्ठ२१९से२३२तक)

अध्याय ९

प्राप्त अप्रकाशित पदों की प्रामाणिकता

परमानंददास, कृष्णदास, कुंभनदास, कबीर - प्राप्त प्रकाशित पद संग्रहों के संपादन आधार का विवरण - प्रकाशित संस्करणों की तुलना में विषय वस्तु का अन्तर - निष्कर्ष ।

(पृष्ठ२३३से२४८तक)

-0-

पूर्व पीठिका

गुजरात और मध्यदेश की भौगोलिक परिस्थितियां प्राय: समान होने के कारण दोनों के एक दूसरे के निकट आने में कोई कठिनाई नहीं उपस्थित हो पाई है। यही कारण है कि मध्यदेश और गुजरात का सांस्कृतिक सम्बन्ध सदियों से चला आ रहा है। ऐतिहासिक दृष्टि से यह सम्बन्ध कृष्ण के यादवों समेत मथुरा छोड़कर द्वारका में जा बसने से प्रारम्भ होता है।[१] कृष्ण के जीवन का उत्तरार्ध द्वारका में ही व्यतीत हुआ और वहीं उन्होंने यादवों का राज्य स्थापित किया।[२] काठियावाड़ में प्रभास से कुछ मील दूर जहां श्रीकृष्ण शर-विद्ध होकर गिर थे, आज भी दिखाया जाता है।[३] कृष्ण का सम्बन्ध मथुरा और द्वारका दोनों से ही रहा है, इसीलिए दोनों को भारत की सात मोक्षदायक पुनीत नगरियों में माना गया है।[४] प्राचीन द्वारका तथा वर्तमान द्वारका की स्थिति में कुछ अन्तर माना जाता है,[५] किन्तु फिर भी द्वारका का इतिहास लगभग २००० वर्ष पुराना है।[६] मध्यदेश और गुजरात के सांस्कृतिक सम्बन्ध को बताने वाले अनेक प्रमाण शिलालेख, मूर्तियों, ताम्रपत्रों, तथा साहित्य के रूप में प्राप्त होते हैं।

कृष्ण-भक्ति मथुरा से द्वारका तक के विशाल क्षेत्र में प्राचीनकाल से ही प्रचलित रही है, जिसके अनेक प्रमाण मिलते हैं। मथुरा क्षेत्र से बलराम तथा कृष्ण की अनेक मूर्तियाँ पुरातत्व की खोजों द्वारा प्राप्त हुई हैं। ईसा की दूसरी शताब्दी की

१- गुजराती और ब्रजभाषा कृष्णकाव्य का तुलनात्मक अध्ययन, पृ० ४६५

२- भारतीय साहित्य, वर्ष ६ अंक २ पृ० ६१

३- गुजरात एण्ड इट्स लिटरेचर, पृ० १२

४- गुजराती और ब्रजभाषा कृष्णकाव्य का तुलनात्मक अध्ययन, पृ० ४६५

५- नागरी प्रचारिणी पत्रिका, भाग १२ पृ० ६७

६- दि ग्लोरी दैट वास गुर्जर देश, पार्ट I सेक्शन III चैपटर III पृ० १३१

एक मूर्ति मथुरा से प्राप्त हुई है, जो सबसे प्राचीन है। शिलापट पर वसुदेव कृष्ण को सूप में रखकर यमुना पार करते हुए दिखलाए गए हैं।[१] ई० ६०० के लगभग की एक अन्य मूर्ति में वे गोवरधन उठाये हुए हैं, और नीचे ग्वाल-वाल खड़े हैं। एक अन्य मूर्ति, जो गुप्तकाल की है, में कृष्ण को कालीयदमन करते हुए दिखलाया गया है। बलराम की एक शुंगकालीन प्रतिमा मथुरा से तथा दूसरी विदिशा से मिली है। इनमें बलराम को हल-मूसल लिए चित्रित किया गया है।[२] मथुरा के आसपास ई० १०० वर्ष पूर्व शुंगकालीन मुद्राएं प्राप्त हुई हैं, जिनपर कृष्ण की आकृति है।[३]

गुजरात में कृष्ण-भक्ति के प्रचार का एक महत्वपूर्ण प्रमाण, वाघेला सारंगदेव के समय के एक शिलालेख से प्राप्त होता है, जो १२९२ ई० का है, जिसमें सारंगदेव के पाल्हणपुर में व्यापार में नियुक्त अधिकारी महन्त पेथड़देव द्वारा कृष्ण की पूजा आदि के निमित्त दान देने का उल्लेख है। इस लेख का प्रारम्भ " वेदानुद्धरते जगन्ति बहते भूभार मुद्बिभ्रते " से प्रारम्भ होता है जो गीतगोविंद की पंक्तियाँ हैं। इस शिलालेख से एक कृष्ण मंदिर होने की सूचना प्राप्त होती है।[४] गिरनार के रेवती-कुंड से प्राप्त होने वाला ई० १४१७ का एक शिलालेख " नवनीत और दामोदर " की स्तुति से प्रारम्भ होता है।[५] कृष्ण का त्रैलोक्यमोहन रूप गुजरात में ही उपलब्ध होता है तथा इसके साथ ही कालीयदमन और गोवर्धन धारण विषयक अनेक प्रतिमाएं आदि आबू, मनोद, सोमनाथ, तथा मांगरोल नामक स्थानों से प्राप्त हुई हैं।[६]

कृष्ण के अतिरिक्त विष्णु के अन्य रूपों की उपासना ब्रज तथा गुजरात में समान रूप से प्रचलित रही है। जिसके अनेक प्रमाण उपलब्ध होते हैं। उनकी कुषाण-कालीन कुछ चतुर्भुजी और अष्टपदी मूर्तियां भी मिलीं हैं, जो प्रतिमा विज्ञान की दृष्टि से पर्याप्त महत्वपूर्ण हैं। मथुरा से प्राप्त एक मूर्ति पर उन्हें बोधिसत्व मैत्रेय के समान

१- ब्रज का इतिहास , पृ० ८४

२- हिन्दी साहित्य, प्रथम खंड, भूमिका, पृ० २२६

३- कैम्ब्रिज हिस्ट्री आफ़ इंडिया , पृ० ४२६

४- वैष्णव धर्म नो संक्षिप्त इतिहास, पृ० ४२६

५- गुजराती साहित्य, खण्ड पांच, पृ० ३११

६- चालुक्यास् आफ़ गुजरात , पृ० २९५

दिखाया गया है। यहीं से प्राप्त एक अन्य शिलापट्ट पर विष्णु को अर्धनारीश्वर गजलक्ष्मी तथा कुबेर के साथ प्रदर्शित किया गया है। विष्णु की गुप्तकालीन मूर्ति तत्कालीन कला का उत्तम उदाहरण है। विष्णु को ध्यानमुद्रा में दिखाया गया है और उनके विविध अंग तथा वस्त्राभूषण अत्यन्त सुरुचिपूर्ण ढंग से अंकित हैं। विष्णु के विश्वरूप की भी कुछ सुंदर प्रतिमाएं अलीगढ़,कामवन,कन्नौज आदि में मिली हैं।[१]
कुछ मूर्तियां विष्णु के अतिरिक्त वाराह तथा नृसिंह की भी हैं। गुजरात में स्कंदगुप्त के गुजरात शासक पर्णदत्त के पुत्र चक्रपालित द्वारा गुप्त सं० १३८ में चक्रपाणि विष्णु के मन्दिर के निर्माण कराये जाने का उल्लेख मिलता है।[२] संभवत: यह गुजरात का प्रथम विष्णु मन्दिर है।

विष्णोश्च पादकमले समवाप्य तत्र।

-- -- -- -- -- --

करितमवक्रमतिना चक्रभृत: चक्रपालितेन गृहं ।।

जूनागढ़ के लेख में विष्णु की स्तुति करने के उपरांत ही लेख के विवेच्य विषयों का निरूपण किया गया है:

श्रियमभिमत भोग्यां नैक कालापनीतां ।
त्रिदशपति सुखार्थं यो बलयराज्य हार: ।
कमलनिलय नाया: शाश्वतं धाम लक्ष्मया:।
सजयति विजि तार्त्रि विष्णुं रत्यन्तजिष्णु:।।[३]

देलमाल में लीम्बो जी माता जी के मन्दिर के दक्षिण-पश्चिम एक छोटा सा मन्दिर है,जिसकी पूर्व की दीवाल में गरुड़ पर बैठे हुए विष्णु की मूर्ति है।[४] मोढ़ेरा के सूर्य मन्दिर के निकट अनेक विष्णु के मन्दिर हैं,इन्हीं में एक शेषशायी विष्णु की

१- हिन्दी साहित्य प्रथम खंड,भूमिका, पृ० २२६
२- वैष्णव धर्म नो संक्षिप्त इतिहास, पृ० ३५०
३- हिन्दी साहित्य,प्रथम खण्ड,भूमिका,पृ० ७२
४- वैष्णव धर्म नो संक्षिप्त इतिहास , पृ० ३५२

मूर्ति है जो ७-८ वीं शताब्दी की है।[१] लाठी के समीप ई० १४६६ की एक विष्णु की चतुर्भुज मूर्ति प्राप्त हुई है।[२]

विष्णु तथा कृष्ण के अतिरिक्त सूर्य,ब्रह्मा,आदि अन्य देवताओं की मूर्तियां व्रजप्रदेश में प्राप्त हुई हैं। ब्रह्मा की दो मूर्तियां मथुरा से मिली हैं। एक में उनके तीन मुख एक सीध में दिखाए गए हैं और चौथा बीचवाले सिर के पीछे है। महावन में मिली हुई एक कलापूर्ण मूर्ति पर ब्रह्मा अपनी पत्नी के साथ बैठे हुए दिखलाए गए हैं।[३] सूर्य की एक मूर्ति जिसमें वे कटार तथा कमल का गुच्छा लिए बैठे हैं।[४] इसी प्रकार मध्यदेश से अग्नि,इन्द्र,कार्तिकेय,गणेश,दुर्गा,तथा उनके विविध रूप,सप्तमातृका,गंगा,यमुना , मातृदेवी,वसुधारा,आदि की भी अनेक मूर्तियां मिली हैं। कौशाम्बी,अहिच्छत्रा,मढ़ेरा, और ग्वालियर से प्राप्त सूर्य की तथा काशी, कन्नौज,कामवन,मथुरा आदि स्थानों से प्राप्त कार्तिकेय की मूर्तियां उल्लेखनीय हैं।[५]

हिन्दू त्रिदेवों में ब्रह्मा,विष्णु,के अतिरिक्त शिव हैं, जिनके विविध रूपों की प्रतिमाएं खोज में मिली हैं। कुषाण शासकों में से कई ने अपने सिक्कों पर नंदी बैल सहित एक या अनेक मुखवाली शिव मूर्तियों को अंकित कराया था।[६] कुषाण सम्राट वमाकाडाफिसीज की मुद्राओं पर त्रिशूलधारी शिव तथा उनके वाहन नन्दी का अंकन मिलता है। इस नरेश की मुद्राओं पर माहेश्वर शब्द उत्कीर्ण है।[७] कुषाणकालीन शिव की एक मूर्ति जिसमें शकलोग पूजा करते हुए दिखलाए गए हैं तथा कुछ मूर्तियाँ एकमुखी,चतुर्मुखी,और पंचमुखी, शिव की भी मिली हैं।[८] कुछ मूर्तियों में शिव पार्वती को दंपति भाव में दिखाया गया है तथा कुछ में अर्द्ध-नारीश्वर भाव का चित्रण है। शिव की जो गुप्तकालीन मूर्तियां मिली हैं उनमें विन्ध्यप्रदेश के नयना

१- वैष्णव धर्म नो संक्षिप्त इतिहास , पृ० ३५२

२- वही , पृ० ३६०

३- हिन्दी साहित्य,प्रथम खंड,भूमिका, पृ० २२५

४- ब्रज का इतिहास, पृ० ८६

५- हिन्दी साहित्य,प्रथम खंड,भूमिका,२२७-२२८

६- वही, पृ० २२६

७- वही, पृ० ७६

८- ब्रज का इतिहास, पृ० ८२

और भुमरा की प्रतिमाएं अग्रगण्य हैं। उंचेहरा तथा उसके पास लोह से कुछ अलंकृत शिवलिंग मिले हैं। चन्द्रगुप्तकालीन मथुरा के अभिलेख से ज्ञात होता है कि उदित नामक शैव आचार्य ने अपने पूर्ववर्ती आचार्यों के सम्मान में शिवलिंगों की प्रतिष्ठा की थी। गुप्तकाल के उपरांत शैवधर्म निर्बाध रूप से गतिशील रहा। हर्षवर्धन के शासन-काल में यह जनसमुदाय का प्रिय धर्म था। हुएनसांग के अनुसार इस समय तक वाराणसी शिवधर्म का विश्रुत केन्द्र हो चुका था। थानेश्वर नामक नगर में प्रत्येक गृही शिव की उपासना करता था। स्वयं हर्षवर्धन भी बौद्धधर्म में दीक्षा लेने से पूर्व शिव के उपासक थे। कन्नौज से कई सुन्दर शिव प्रतिमाएं प्राप्त हुई हैं। यहां कुछ शिवलिंग ऐसे मिले हैं जिनपर चतुर्वेद- ब्रह्मा, विष्णु, शिव तथा सूर्य का अंकन है।[1] कुछ पर सूर्य के स्थान पर चौथा मुख देवी का है। पंचदेव वाले कुछ शिवलिंग भी प्राप्त हुए हैं जिनपर विष्णु सूर्य, देवी और गणेश का अंकन मिलता है। कन्नौज से प्राप्त कल्याणसुन्दर (शिव - पार्वती परिणय) की प्रतिमा अंग सौष्ठव तथा भावाभिव्यक्ति में अद्वितीय है। जिसका निर्माणकाल ७०० ई० के लगभग है।

मध्यदेश के समान ही गुजरात में भी विष्णु तथा अन्य देवताओं की मूर्तियां मिलती हैं। गुजरात में अणहिलपुर पाटण से उत्तर १५ मील आगे कसरा ग्राम में १०वीं शताब्दी के मन्दिर का एक भग्नावशेष है जिससे ज्ञात होता है कि वहां ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश के अलग-अलग मंदिर थे। इसी मन्दिर के उत्तर में विष्णु मन्दिर की दीवालों में गरुड़, वाराह, वामन, और लक्ष्मीनारायन, की भी मूर्तियां हैं।[2] अमलसाड़ स्टेशन से पूर्व धमडाछा नामक ग्राम से प्राप्त एक ताम्रपत्र जो, " ऊँ नमो भगवते वासुदेवाय, " भागवत के मंत्र से प्रारम्भ होता है और इसके पश्चात वराह की स्तुति की गई है।[3] मोढ़ेरा का ११ वीं शताब्दी का सूर्य मन्दिर प्रसिद्ध है। १३ वीं शताब्दी का वडनगर के पूर्व की ओर एक प्राचीन मन्दिर है जिसके दरवाजे के ऊपर वाराह तथा वामन की मूर्तियां हैं। पाटण से आगे कदवार नामक ग्राम में प्राचीन

१- हिन्दी साहित्य, प्रथम खंड, भूमिका, पृ० २२७

२- वैष्णवधर्म नो संक्षिप्त इतिहास, पृ० ३५१

३- गुजरात ना ऐतिहासिक लेख, पृ० १४१-४२

मंदिर के खंडहर हैं, जो वाराह अवतार के हैं।[१] पोरबंदर के १५ मील उत्तर-पश्चिम विशावद ग्राम में रणछोड़ तथा शंकर के प्राचीन मन्दिर हैं।[२] १२७३ वि० के प्रभास पाटण के एक शिलालेख से ज्ञात होता है कि श्रीधर ने अपनी माता की इच्छानुसार "मुरारिपु (विष्णु) रोहणी स्वामी नाम का एक मंदिर भी बनवाया था।[३] ई० १२४६ के पोरबन्दर के पास काटेला ग्राम के महाकालेश्वर मन्दिर के लेख से ज्ञात होता है कि सौराष्ट्र के अधिकारी ने रैवतीकुंड के समीप एक अन्य मन्दिर का भी निर्माण कराया था जिसमें अन्य मूर्तियों के साथ महेश, विष्णु, रैवती, तथा बलदेव की भी मूर्तियां थीं।[४] वि० १४३७ का चक्रतीर्थ से प्राप्त शिलालेख हरि की स्तुति से प्रारम्भ होता है। धंधुसर के १३८६ के शिलालेख में, "जलशायी विष्णु नो प्रबोध जय मारे थाय" वाक्य से विष्णु की स्तुति आरम्भ होती है।[५] १२ वीं शताब्दी के वैरावल के लेख में विष्णुपूजा के प्रचार करने का उल्लेख है।

वैष्णवधर्म के समान ही शैवधर्म के द्वारा भी गुजरात और मध्यदेश परस्पर सम्बद्ध रहे हैं। क्योंकि गुजरात में शैवधर्म के प्रचार और प्रसार के प्रमाण मूर्तियों, मन्दिरों और दानपत्रों के रूप में मिलते हैं। जिसप्रकार मध्यदेश में काशी शिव की नगरी समझी जाती है, उसी प्रकार गुजरात में सोमनाथ। ऐसी मान्यता है कि आज भी नर्मदा के जल में से शिवलिंग निकलते हैं। सोलंकी शासकों के शासनकाल में सोमनाथ पाटण गुजरात का प्रसिद्ध शैवतीर्थ स्थल के रूप में माना जाता था। १२ ज्योतिर्लिंगों के वर्णन में सोमनाथ का भी उल्लेख आया है। लकुलीश जो शैव सम्प्रदाय के प्रवर्तक थे, गुजरात में ही हुए थे।[६] गुजरात के ऐतिहासिक काल के प्रारम्भ के यथा रुद्रराम रुद्रसिंह, आदि क्षत्रप शासकों के नामों में प्रयुक्त रुद्रादि से ज्ञात होता है कि वे

१-सोमनाथ एंड अदर मेडिवल टेम्पल इन काठियावाड़, पृ० ३८

२- वही, पृ० ४४

३- वैष्णव धर्म नो संक्षिप्त इतिहास, पृ० ३५५

४- वही, पृ० ३५६

५- वही, पृ० ३५८

६- भारतीय साहित्य, अप्रैल १९६१, पृ० ६१

शैवधर्म के अनुयायी थे । गुजरात के प्रतापी वल्लभी शासक(५०६-७६६ई०) शैव थे । आज भी वल्लभीपुर के खण्डहरों में शिवलिंग प्राप्त होते हैं । ई० ६०६ के एक दान पत्र में महादेव की पूजा,धूप,गंध आदि के लिए दान देने का वर्णन है । सोलंकी वंश के अनेक लेखों से यह ज्ञात होता है कि ईसा की १० वीं शती से १४ वीं शती तक सारे गुजरात में शैव पाशुपत धर्मका अत्याधिक प्रचार था । वि० १०४३ के एक अन्य ताम्र-पत्र में रुद्र महालय देव की पूजा के लिए दान देने का उल्लेख है । ताम्रपत्र के ऊपर नन्दी का चिह्न अंकित है ।[1] इस प्रकार हम देखते हैं कि प्रभास के सोमनाथ से लेकर काशी के विश्वनाथ तक शैवोपासना का एक ही स्वर में गूंजता रहा ।[2]

मूर्तियों,शिलालेखों तथा मुद्राओं के अतिरिक्त गुजरात में प्राप्त प्राचीन साहित्य से भी ज्ञात होता है कि विष्णु तथा उनके अन्य अवतारों की पूजा का वहां प्रचार था। हेमचन्द्र अपने द्वयाश्रय काव्य के प्रारम्भ में अनहिलपुर पाटण के वर्णन में लिखते हैं कि विभिन्न राजाओं ने इस नगर में स्वयंभू (अर्हत्) विष्णु,शंभु,सूर्य,तथा कार्तिकेय के मंदिरों का निर्माण किया था ।[3] वि० १२८७ में सोमेश्वर " कीर्तिकौमुदी " में पाटण के वर्णन में लिखते हैं कि पाटण के सरोवर के चारों तरफ- हर तथा उपेन्द्र के मन्दिर थे ।[4] कवि राजशेखर द्वारा वि० १४०५ में रचित " चतुर्विंशति " नामक प्रबंध में वर्णित है कि राजा वीरधवल ने वीरनारायण के मन्दिर का निर्माण कराया था ।[5] " विष्णुभक्ति-चन्द्रोदय " नामक ग्रंथ, जो १४१३ ई० का है, में विष्णु पूजा की विधि,विष्णुभक्ति की महिमा आदि सामान्य पौराणिक विष्णु-भक्ति की कथा वर्णित है ।[6]

वैष्णव तथा शैव धर्म से इतर जैन तथा बौद्ध धर्म के द्वारा भी गुजरात तथा व्रज प्रदेश एक सूत्र में बंधे रहे । मथुरा का कंकाली टीला तो जैन धर्म का बहुत बड़ा

१-शैव धर्म नो संक्षिप्त इतिहास , पृ० १४६

२- गुजराती और ब्रजभाषा कृष्णकाव्य का तुलनात्मक अध्ययन,पृ० ४६६

३- वैष्णवधर्म नो संक्षिप्त इतिहास , पृ० ३५४

४- वही, पृ० ३५६

५- वही, पृ० ३५५

६- वही, पृ० ३५८

केन्द्र रहा है।[१] १८८९ से १८९१ ई० तक इस टीले की खुदाई करने से १५०० कलावशेष प्राप्त हुए हैं।[२] इनके आधार पर ज्ञात होता है कि कुषाणकाल से ई० की दसवीं शताब्दी तक मथुरा जैन धर्म का प्रबल केन्द्र रहा। जैन तीर्थंकर सुपार्श्व की जन्मभूमि होने के कारण उत्तर भारत के जैनियों के लिए इसका आकर्षण सदैव रहा है।[३] यह परम्परा भी प्रसिद्ध है कि जैनियों की दूसरी धर्म सभा आदि स्कन्दिलाचार्य के नेतृत्व में मथुरा में ही हुई थी। जिसमें नष्ट होते हुए आगमों की वाचना की पुनर्व्यवस्था की गई।[४] अत: स्पष्ट है कि मध्ययुग में मथुरा जैन धर्म की सर्वश्रेष्ठ पीठस्थली थी।

गुजरात तो शताब्दियों तक जैन धर्म की श्वेताम्बर शाखा का प्रमुख केन्द्र रहा है और आगे चलकर जैन धर्म गुजरात का राजधर्म भी बन गया।[५] गुजराती जैन साहित्य में श्रीकृष्ण को भी स्थान प्राप्त हुआ। ११वें तीर्थंकर नेमिनाथ को श्रीकृष्ण का बड़ा भाई बतलाया गया। नेमिनाथ जब कभी द्वारका जाते तो कृष्ण उनके वचनों को बड़ी श्रद्धा से सुनते थे। 'वसुदेव हिंडी' प्राचीन जैन ग्रंथ है जिसमें कृष्ण चरित वर्णित है।[६]

मथुरा बौद्ध धर्म का प्रमुख केन्द्र रहा है। भगवान बुद्ध स्वयं यहां आये थे। उनके बाद महाकात्यायन मथुरा आये और गुदावन बिहार में ठहरे। मथुरा के राजा ने बौद्ध धर्म स्वीकार किया था। उपगुप्त नाम के प्रसिद्ध आचार्य यहीं हुए थे। चीनी यात्री फाह्यान तथा ह्यूआन-चुआंग के उल्लेखों के अनुसार मथुरा में २० संघाराम होने का पता चलता है।[७]

गुजरात में भी इस बात के कुछ तथ्य मिलते हैं कि वहां बौद्ध धर्म का प्रचार अन्य धर्मों के समान हुआ। बौद्धकाल में गुजरात में शांति देवाचार्य द्वारा बौद्ध धर्म का प्रचार हुआ।[८] नवीं शताब्दी तक जालंधर, गुजरात, राजपुताना और उड्डीयान

१- ब्रज का इतिहास, पृ० ८७

२- सूर पूर्व ब्रजभाषा और उसका साहित्य, पृ० ४८

३- वही, पृ० ४८

४- ब्रज और ब्रजयात्रा, पृ० ७

५- गुजराती और ब्रजभाषा कृष्णकाव्य का तुलनात्मक अध्ययन, पृ० ४४६

६- पोद्दार अभिनन्दन ग्रंथ, पृ० ७०५

७- ब्रज और ब्रजयात्रा, पृ० ८

८- भारतीय साहित्य, अप्रैल १९६१, पृ० ६१

में बौद्धमत प्रतिष्ठित था। वल्लभी में शीलादित्य सप्तम के समय तक बौद्ध धर्म का सम्मान था। गुजरात के शासक राष्ट्रकूट दंतिवर्मन के एक शिलालेख(८६७ई०) के मंगलाचरण में बुद्ध की वंदना है और उसके भाई ध्रुव द्वितीय के दानपात्र में बौद्ध संघ का स्पष्ट उल्लेख है।[१] ह्वेनसांग लिखता है कि " इस नगर में (वल्लभी) इस समय १०० बौद्ध मठ बने हुए हैं, जिनमें रहने वाले विद्यार्थी भिक्षुओं की संख्या लगभग ६०० थी है।[२]

राजनैतिक दृष्टि से भी गुजरात और मध्यदेश का घनिष्ट संपर्क रहा है और दोनों ही एक दूसरे के द्वारा शासित होते रहे हैं। डा० ग्रियर्सन ने गुजरात को मध्यदेश का उपनिवेश कहा है।[३] इस संबंध में डा० धीरेन्द्र वर्मा का मत भी उल्लेखनीय है, " भौगोलिक दृष्टि से विन्ध्य के पार पहुंचने के लिए गुजरात का प्रदेश सबसे अधिक सुगम है। इसीलिए बहुत प्राचीन काल से यह मध्यदेश का उपनिवेश रहा है।[४] प्राचीन काल से ही अनेक जातियां गुजरात में जाकर बसती रहीं हैं। पौराणिक युग से मध्य-देश के लोगों का गुजरात में जा कर बसने का उल्लेख प्राप्त होता है। पुराणों में सर्वप्रथम मनु के पौत्र (शर्याति के पुत्र) आनर्त के गुजरात में आने की कथा मिलती है।[५] इन्हीं के नाम पर गुजरात का नाम आनर्त भी रहा है। आर्य-संस्कृति के उत्थानकाल में गंगा और यमुना के मध्य के तपस्वी रिषियों के आश्रमों से ही जीवन के नवीन मार्गों तथा नूतन विचारों को जन्म मिलता था,जो धर्म का रूप लेकर मात्र गुजरात में ही नहीं सम्पूर्ण देश में स्वीकृति पाते थे।[६] प्राचीन काल से ही काशी हिन्दू संस्कृति का महान केन्द्र रहा है। यहां के पंडितों को गुजरात में विशेष सम्मान दिया जाता था।[७] मूलराज के शासन काल में, प्रयाग,कान्यकुब्ज तथा वाराणसी आदि से सहस्रों ब्राह्मण गुजरात आए और यहीं बस गए।[८]

१- धीरेन्द्र वर्मा विशेषांक, पृ० २४६

२- हिन्दी साहित्य, प्रथम खंड,भूमिका, पृ० ३८

३- सूरपूर्व ब्रजभाषा और उसका साहित्य, पृ० ४७

४- ब्रजभाषा, पृ० ३

५-सरस्वती,गुजरात में हिन्दी, दिसम्बर १९६२

६-गुजरात एण्ड इट्स लिट्रेचर, पृ० ८

७- गुजराती साहित्य (मध्यकालीन) पृ० १०४

८- सरस्वती, ' गुजरात में हिन्दी ' दिसम्बर १९६२

पश्चिमी विद्वानों के अनुसार भारत में आर्यों के दो दल आये । एक पहले आया, दूसरा बाद में । जो दल पहले आया, वह मध्यदेश में आकर बस गया । इस दल के पश्चात दूसरा प्रबल दल आया और उसने पहले दल के आर्यों को मध्यदेश से निकाल बाहर किया ।[१] यह निकला हुआ दल ही पंजाब, सिंध, गुजरात, महाराष्ट्र में जाकर बसा । आर्यों के समान ही शक लोग भी मध्यएशिया से भटकते हुए ई० की दूसरी शताब्दी तक भारत में आ गये थे । ये तक्षशिला तथा मथुरा होते हुए ही, काठियावाड़ कल्पद्विप, तथा आसपास के प्रदेशों में जाकर रहे ।[२] बाद में ये शक हिन्दू हो गए । ये कई शाखाओं में बटे थे जो गुजरात से मध्यदेश तक फैले थे । मथुरा इन्हीं शाखाओं में से एक की राजधानी थी । क्षत्रप रूद्रदमन गुजरात का प्रसिद्ध शासक हुआ है ।[३]

गुर्जरों ने हूणों तथा अन्य आक्रमणकारियों के साथ ई० की छठी शताब्दी में भारत में प्रवेश किया ।[४] हूण तो राजस्थान में ही बस गए, किन्तु गुर्जर प्रथम पंजाब में बसने के पश्चात मथुरा होते हुए काठियावाड़ पहुंचे । पंजाब में स्थित गुजरात, गुजरानवाला, तथा गुर्जर खां आदि इस तथ्य को स्पष्ट करते हैं और फिर पंजाब से धीरे-धीरे यह गुर्जर गुजरात की ओर गए ।[५] आभीर जाति भी पंजाब तथा मथुरा होकर ही काठियावाड़ पहुंची थी । ई० ६१५ के निकट कन्नौज का सम्राट महिपाल सम्पूर्ण गुजरात का सम्राट कहलाता था ।[६] एक मुस्लिम यात्री अलमसुदी के अनुसार उस समय कन्नौज का शासक गुर्जर का शासक समझा जाता था ।[७] ए०के०फार्व्स के अनुसार सुप्रसिद्ध वल्लभी राज्य की स्थापना करने वाला कनकसेन अयोध्या का ही एक निष्काशित राजकुमार था ।[८] गिरनार के शिलालेख इस बात के साक्षी हैं कि गुजरात पर चन्द्रगुप्त मौर्य का आधिपत्य था ।[९] बिन्दुसार के समय महाराष्ट्र, गुजरात, कर्नाटक

१- हिन्दी भाषा और साहित्य का विकास , पृ० ७१

२- गुजराती साहित्य ना मार्गसूचक अने वधूमार्ग सूचक स्तम्भो, पृ० ३

३- सूरपूर्व व्रजभाषा और उसका साहित्य, पृ० ५२

४- ग्लौरी दैट वास गुर्जर देस , पृ० १

५- छठी गुजराती साहित्य परिषद् नो रिपोर्ट, पृ० २२

६- ग्लौरी दैट वास गुर्जर देस, पृ० १४

७- वही पृ० १५

८- रासमाला, पृ० १६-१७

९- गुजरात नो सांस्कृतिक इतिहास, पृ० २७

आदि सारे प्रदेश मौर्य साम्राज्य के अन्तर्गत थे ।[१] अशोक का साम्राज्य भी मध्यदेश के साथ गुजरात,काठियावाड़,तथा उत्तरी कोंकण तक विस्तृत था ।[२] विभिन्न मुद्राओं तथा स्कंदगुप्त के गिरनार के लेख से प्रमाणित होता है कि गुजरात गुप्त साम्राज्य का एक अंग था ।[३] गुप्त सम्राटों के शासनकाल में सौराष्ट्र जिसमें आधुनिक गुजरात एवं काठियावाड़ सम्मिलित थे, पश्चिम का एक महत्वपूर्ण प्रान्त था । जूनागढ़ के अभिलेख से पता चलता है कि स्कंदगुप्त के काल में इस प्रान्त का राज्यपाल पर्णदत्त नामक एक अत्यन्त योग्य व्यक्ति था । स्कंदगुप्त के कर्मचारियों में वही इस प्रान्त की रक्षा करने में सबसे कुशल व्यक्ति समझा जाता था । जिस प्रकार देवता वरुण के ऊपर पश्चिमी दिशा का भार सौंपकर स्वस्थ हो गए थे, उसी प्रकार स्कन्दगुप्त अपने पश्चिम प्रान्त सौराष्ट्र की रक्षा का भार पर्णदत्त को सौंपकर आश्वत हो गया था--

नियुज्य देवा वरुणं प्रतीच्यां स्वस्था यथानोन्मनसोबभूवु :
पूर्व्वेतरस्यां दिशि पर्णदत्तं नियुज्य राजा धृतिमांस्त था भूत ।।[४]

८४३ ई० के दौलतपुर के शिलालेख से ज्ञात होता है कि गुजरात तक मिहिर-भोज का आधिपत्य था और वहीं की कन्या से उसने विवाह भी किया था ।[५] विक्रम की ७ वीं शताब्दी के अन्त में कन्नौज के शासक ने गुजरात के शासक को हरा कर समस्त भूभाग पर अधिकार कर लिया था । ई० १०१९ में भोज ने कोंकण पर अधिकार कर महाराजाधिराज परम भट्टारक की उपाधि धारण की थी । कोंकण विजय के वार्षिकोत्सव पर भोज ने आधुनिक गुजरात के खेरा जिले के नार ग्राम को दान में दिया था ।[६] प्रभाकरवर्द्धन को गुर्जर नरेश की निद्रा का भंग करने वाला बतलाया गया है ।[७] बल्लभी शासक ध्रुवसेन द्वितीय के शासनकाल में मालवा का भी कुछ भाग

१-हिन्दी साहित्य,प्रथम खंड,भूमिका, पृ० ३१-३२
२- हिस्ट्री आफ गुजरात, पृ०
३- गुजरात नो सांस्कृतिक इतिहास, पृ० ४२
४- हिन्दी साहित्य, प्रथम खंड,भूमिका, पृ० ३७-३८
५-दि ग्लौरी दैट वास गुर्जर देस, पृ० २४ ६९-७०
६- वही , पृ० १३०
७- हिन्दी साहित्य, प्रथम खंड, भूमिका, पृ० ४२

वल्लभी के अधीन था । कालान्तर में इस युद्ध का अंत दोनों नरेशों के मध्य एक वैवाहिक संबंध के द्वारा हुआ । ह्वेनसांग लिखता है कि हर्ष ने अपनी पुत्री का विवाह ध्रुवसेन द्वितीय के साथ किया था ।[१]

हूणों के आक्रमण से मथुरा से लेकर गुजरात तक का क्षेत्र पादाक्रान्त हुआ, जिसका सम्मिलित विरोध राजपूतों की विभिन्न शाखाओं -- परमार,चालुक्य, परिहार,चौहानों,-- ने किया । वर्षों तक गुजरात कन्नौज और उज्जियनी से ही शासित होता रहा । गुर्जर और प्रतिहारों ने अपना केन्द्र कन्नौज को ही बनाया । यवनों के आक्रमणों का सामना एक बार पुन: मथुरा से गुजरात के लोगों को सम्मिलित रूप में करना पड़ा । गुजरात के अत्यन्त प्रतापी शासक सिद्धराज जयसिंह के शासन की सीमा आधुनिक महोवा तक थी ।[२] अलाउद्दीन खिलजी ने १२६७ ई० में गुजरात को विजय किया । मुहम्मद तुगलक ने अपने जीवन के अंतिम ६ वर्ष गुजरात में ही व्यतीत किए ।[३]

शासन के साथ ही गुजरात की सीमाएं भी समय-समय पर बदलती रही हैं । प्राचीन समय में गुजरात का क्षेत्र उतना विस्तृत नहीं था जितना आज है । केवल मही नदी के उत्तर के प्रदेश को ही गुजरात कहा जाता था । गुजरात प्रदेश पालनपुर,कड़ी, अहमदाबाद,मही काठा और खेड़ा तक ही सीमित था ।[४] एक अन्य विवरण के अनुसार गुजरात तीन खण्डों में विभक्त था । पश्चिमी भाग सौराष्ट्र,दक्षिणी भाग लाट, तथा उत्तरी भाग आनर्त देश कहलाता था ।[५] आनर्त में उस समय तक गुर्जरों का राज्य स्थापित नहीं हो पाया था । बाम्बे गजेटियर में लाट प्रदेश में (नर्मदा और खम्भात के मध्य का भूभाग) ७वीं शताब्दी के किसी एक छोटे से गुर्जर राज्य का उल्लेख हुआ है, पर वह अधिक प्रसिद्ध नहीं था । क्योंकि अलबरुनी(६४० ई०)

१- हिन्दी साहित्य , प्रथम खंड, भूमिका, पृ० ३८

२- गुजराती और ब्रजभाषा कृष्णकाव्य का तुलनात्मक अध्ययन, पृ० ४६७

३- हिस्ट्री आफ गुजरात, पृ० ३०

४-भारतीय साहित्य, अप्रैल १९६१, पृ० ६१

५- छठी गुजराती साहित्य परिषद नो रिपोर्ट, पृ० २१

जिस गुर्जर प्रदेश का वर्णन करता है उसमें वर्तमान गुजरात का एक भी भाग सम्मिलित नहीं था। उस गुर्जर राज्य की राजधानी जयपुर के समीपवर्ती नगर वजन या नारायन में थी।[1] ९ वीं शताब्दी में राजपुताने का उत्तरी और मध्य भाग गुजरात कहलाता था[2] तथा इस क्षेत्र के निवासी गुर्जर नाम से जाने जाते थे।[3] मध्यकालीन गुजरात में मालवा, खानदेश, तथा राजपूताने का दक्षिणी भाग भी सम्मिलित था। इसी शताब्दी में ग्वालियर गुर्जर गढ़ कहा जाता था। १८ वीं शताब्दी तक उत्तर भारत का सहारनपुर गुजरात नाम से ज्ञात था।[4] आधुनिक गुजरात की रूपरेखा तब तक निश्चित नहीं हुई जब तक मुगल साम्राज्य का अंग नहीं बन गया। १५७३ ई० में अकबर ने गुजरात को विजय कर उसके राज्य की सीमाएं निर्धारित करके उसे अपने राज्य में सम्मिलित कर लिया।[5] गुजरात और मध्यदेश पुनः एक सूत्र में बंध गए।

प्राचीनकाल से ही संस्कृत भाषा का प्रचार और प्रसार दोनों प्रदेशों में समान रूप से रहा है। वैदिक संस्कृत के पश्चात (जब कि उसका स्वरूप वैयाकरणों ने स्थिर, सुनिश्चित कर दिया), जन-साधारण की बोलियों को विकास का अवसर मिला। बौद्ध तथा जैन धर्म के प्रवर्तकों और प्रचारकों ने अपने उपदेशों के लिए इन्हीं जन बोलियों का आश्रय लिया। तत्पश्चात इन्हें मागधी और पालि नाम दिया गया। किन्तु फिर भी लोगों की बोलियों में बराबर परिवर्तन होता रहा और अशोक की धर्म-लिपियों की भाषाएं ही बाद में प्राकृत के नाम से प्रसिद्ध हुई। भरत मुनि ने अपने नाट्यशास्त्र में सात प्राकृतों का उल्लेख किया है -

शौरसैनी, मागधी, अर्धमागधी, दाक्षिणात्य, वाह्लीकी, आवन्ती, प्राच्य।[6]

इन प्राकृतों में शौरसैनी प्राकृत सबसे अधिक उन्नत, लोकप्रिय तथा संस्कृत से

१- गुजराती लैंग्वुज एंड इट्स लिटरैचर, वालुम II पृ० १६३

२- ग्लौरी दैट वास गुर्जर देस, पृ० १

३- गुजराती एंड इट्स लिटरैचर, पृ० २४

४- ग्लौरी दैट वास गुर्जर देस, पृ० १

५- गुजराती और ब्रजभाषा कृष्णकाव्य का तुलनात्मक अध्ययन, पृ० ४६७

६- हिन्दी साहित्य, प्रथम खंड, भूमिका, पृ० १४२

प्रभावित भाषा थी । शौरसैनी व्रजभाषा का पुरान रूप है।[१] इसी से हिन्दी क्षेत्र की बोलियों का विकास हुआ । मथुरा के आसपास का प्रदेश शौरसैनी प्रदेश कहा जाता था । यहां की प्राकृत का भी यही नाम हुआ । शौरसैनी प्राकृत वर्तमान पश्चिमी उत्तरप्रदेश ,पूर्व पंजाब,राजस्थान,मध्यप्रदेश और गुजरात के क्षेत्र तक फैली हुई थी ।[२] साहित्य में प्रयुक्त होने पर वैयाकरणों ने ' प्राकृत ' भाषाओं को कठिन अस्वाभाविक नियमों में बांध दिया किन्तु लोकजीवन में प्रचलित बोलियां व्याकरणिक नियमों में नहीं बांधी जा सकीं तथा वे निरंतर विकासमान रहीं । बाद में इन बोलियों को अपभ्रंश नाम प्राप्त हुआ,और जब साहित्यिक प्राकृतें मृत हो गईं , उस समय इन अपभ्रंशों को साहित्यिक भाषा का गौरव प्राप्त हुआ । संस्कृत वैयाकरणों ने संस्कृत से भिन्न समस्त भाषाओं को अपभ्रष्ट कहा है किन्तु भारतीय भाषाओं के इतिहास में ' अपभ्रंश ' का रूढ़ार्थ आभीरों आदि की भाषा माना गया है । 'काव्यादर्श' में आचार्य दण्डी लिखते हैं कि काव्य में आभीरों आदि की भाषा अपभ्रंश कहलाती है।[३] आरंभ में जब आभीर भारतीय संस्कृति में दीक्षित नहीं हुए थे तो उन्हें और उनकी भाषा को अपभ्रष्ट कहा जाता था । उनके राजस्थान , सिंध, और गुजरात में फैल जाने पर आभीरी और शौरसैनी प्राकृत के मेल से अपभ्रंश ग्रामीण भाषा के रूप में विकसित होने लगी । शासन सत्ता ग्रहण करने के पश्चात इन्हीं की भाषा को ' अपभ्रंश ' कहा गया ।[४]

यह आभीर कौन थे, इस पर अभी तक विद्वानों की एक राय नहीं है । कुछ इन्हें विदेशी मानते हैं । जबकि कुछ के मत से इनका भारतीय होना भी सिद्ध होता है । क्योंकि महाभारत में इनका उल्लेख सर्वप्रथम मिलता है,जिसमें वर्णित है कि ये उपजातियां पंचनद में रहती थीं । ई० सन् के प्रारम्भ होने के समय उत्तर-पश्चिम की

१- ब्रज का इतिहास , पृ० १४६-४७

२- हिन्दी और प्रादेशिक भाषाओं का वैज्ञानिक इतिहास, पृ० २४

३- गुजराती और ब्रजभाषा कृष्णकाव्य का तुलनात्मक अध्ययन, पृ० ४६८

४- हिन्दी साहित्य,प्रथम खंड,भूमिका, पृ० १४३

और से निरन्तर आक्रमणों के दबाव के कारण गुजरात,काठियावाड़, क्षेत्रों में चली गई । इसकी पुष्टि काठियावाड़ में प्राप्त १८१ ई० की राजाज्ञा से होती है जिसमें आभीर सेनापति रुद्रभूति का उल्लेख है । इलाहाबाद में समुद्रगुप्त के लौहस्तम्भ के एक लेख से ऐसा प्रतीत होता है कि उस समय तक आभीरों का प्रभुत्व मालवा और राजस्थान में हो गया था और वे झांसी तक फैले हुए थे ।[1] मिर्जापुर में अहरौरा नाम से आभीरों का प्रभाव प्रतीत होता है तथा ताप्ती से लेकर देवगढ़ के क्षेत्र का नाम भी इन्हीं का दिया हुआ है । इस प्रकार हम देखते हैं कि इन आभीरों का विस्तार, जो गोपाल-कृष्ण या गोविन्द के उपासक थे , गुजरात से लेकर शूरसेन प्रदेश तक था और इनकी भाषा अपभ्रंश का प्रसार भी लाट,सुराष्ट्र,त्रवण,दक्षिणीपंजाब,राजपूताना,अवंती, और मंदसौर आदि में था ।[2] भरतमुनि ने अपने नाट्यशास्त्र में जिसे " आभीरादिगिर: " कहा था, वही भाषा तीन शताब्दियों के पश्चात साहित्यिक भाषा के रूप में आती है, क्योंकि भामह ने अपभ्रंश को कविता की भाषा माना है । अपभ्रंश का यह साहित्यिक पद काठियावाड़ में प्राप्त वल्लभी के राजा ध्रुवसेन द्वितीय के ताम्रपत्र से पुष्टि होता है । १० वीं शताब्दी में राजशेखर ने इसे संस्कृत और पालि के समान साहित्यिक भाषा के रूप में निरुपति किया है । अपभ्रंश के साहित्यिक रूप ग्रहण कर लेने के कारण कुछ विद्वानों ने साहित्यिक प्राकृतों को ही अपभ्रंश में परिवर्तित कर दिया, जिसके कारण प्रत्येक प्राकृत के एक अपभ्रंश रूप का विकास हुआ, जैसे शौरसेनी प्राकृत का शौरसेनी अपभ्रंश,मागधी प्राकृत का मागधी अपभ्रंश । वैयाकरणों ने अपभ्रंशों को इस प्रकार विभक्त नहीं किया था , वे केवल तीन अपभ्रंशों के साहित्यिक रूप मानते थे । इनमें नागर अपभ्रंश मुख्य थी ,जो शौरसेनी से प्रभावित थी और गुजरात तथा राजपूताने में प्रचलित थी । हेमचन्द्र ने जिस अपभ्रंश का उल्लेख अपने व्याकरण में किया है वह पछाही भाषा है जिसका व्यवहार व्रजमण्डल से लेकर राजपूताना और गुजरात तक था ।[3] डा० भांडारकर अपभ्रंश भाषा का उद्गम और विकास का क्षेत्र मथुरा के

१- हिन्दी और प्रादेशिक भाषाओं का वैज्ञानिक इतिहास, पृ० ५६

२- गुजराती और व्रजभाषा कृष्णकाव्य का तुलनात्मक अध्ययन, पृ० २४८

३- ब्रज का इतिहास , पृ० ५६-५७

आस पास मानते हैं । उन्होंने स्पष्ट लिखा है कि , " ६,७ वीं शताब्दी के आस-पास अपभ्रंश का जन्म उस प्रदेश में हुआ,जहां आजकल व्रजभाषा बोली जाती है । यह शौरसेनी अपभ्रंश किसी समय गुजरात में भी प्रचलित थी,के०एम० मुंशी के मन्तव्य से भी इस तथ्य की पुष्टि होती है । १३वीं शताब्दी के आसपास गुजरात ,मारवाड़, और राजस्थान में एक ही भाषा बोली जाती थी ।[१] १२,१३,१४, शताब्दी में राजपुताना और गुजरात की भाषा में अधिक अंतर नहीं था और यह स्पष्ट लगता है कि मथुरा और वृन्दावन के कीर्तन पद इस भाषा में थे । इतना ही नहीं द्वारका श्री कृष्ण का धाम होने के कारण , कृष्ण कीर्तन का प्रवाह गुजरात में बढ़ता ही गया ।[२]

देवसेन, सोमप्रभु,मेरुतुंग एवं हेमचन्द्र आदि जैन लेखकों की रचनाओं के अतिरिक्त रामसिंह,अब्दुर्रहमान,आदि लेखकों की रचनाओं में उपलब्ध शब्दों की विस्तृत सूची में आधुनिक मालवी,गुजराती,राजस्थानी में प्रचलित शब्दों को देखकर कहा जा सकता है कि मालवी के बीज भी उसी क्षेत्र में विद्यमान थे, जहां से राजस्थानी और गुजराती के अंकुर प्रस्फुटित हुए ।[३] अस्तु गुजराती का राजस्थानी के साथ ही मालवी से भी घनिष्ठ संबंध रहा है । इसीप्रकार गुजराती और मारवाड़ी दोनों का उद्‌गम स्थल भी एक ही है ।[४]

भारतीय आर्यभाषा के विकास के उपर्युक्त सर्वेक्षण से यह स्पष्ट हो जाता है कि पूर्व मध्ययुग में व्रजप्रदेश से लेकर गुजरात तक प्राय: एक ही भाषा प्रचलित थी । भाषा ने भारतीय धर्म साधना के सदृश गुजरात और व्रजमण्डल के संबंधों को घनिष्ट एवं स्थायी बनाया है । भाषा की यह स्थिति मीरां के पदों से पूर्णरूपेण स्पष्ट हो जाती है । उनके पदों का गुजराती,राजस्थानी,और व्रजभाषा में पाये

१- भारतीय साहित्य,जनवरी १९५९, पृ० २४

२- गुजराती साहित्य, खंड ५, पृ० ३११

३- धीरेन्द्र वर्मा विशेषांक, पृ० १२

४- पुरानी राजस्थानी , पृ० ४

जाने का यही कारण है । व्रजभाषा के कवियों के सदृश्य गुजरात के कवियों ने भी परम्परागत आदर्श भाषाओं की तुलना में लोक को प्रभावित करने वाली लोक भाषा का आश्रय ग्रहण किया । लोक-चेतना और लोकभाषा की युगपद स्थिति गुजरात और व्रज के वैष्णव साहित्य से पूर्णतया पुष्ट होती है । कृष्णभक्ति के साथ व्रजभाषा के ललित पद और शब्दरत्न भी गुजरात पहुँचे । गुजराती कवियों की भाषा में प्राप्त व्रजभाषा की शब्दावली दोनों प्रदेशों की एकता की घोतक है । वस्तुत: भाषा ने दोनों प्रदेशों की एकता को स्थायित्व प्रदान करने में सेतु का कार्य किया है ।

उपर्युक्त सूत्रों के अतिरिक्त गुजरात और व्रजप्रदेश वैष्णवधर्म एवं उसके साहित्य के माध्यम से भी परस्पर एक सूत्र में बंधे रहे । ईसा की ११ वीं शताब्दी से लेकर १५ वीं शताब्दी तक दोनों प्रदेशों कालोकजीवन पर्याप्त अस्त-व्यस्त रहा । यवनों के निरंतर आक्रमणों और पाशविक अत्याचारों से दोनों ही प्रदेशों का जन-जीवन पर्याप्त सीमा तक प्रभावित हुआ । विषम परिस्थिति में हतप्राण प्रजा ने पराजय की विस्मृत के लिए प्रेमलक्षणा भक्ति का आश्रय ग्रहण किया । इस तरह भक्ति धर्म जनता का धारणाधार बना । श्रीमद्भागवत वैष्णवधर्म का मुख्य ग्रंथ बना । उसमें गोपाल कृष्ण की विविध लीलाओं का भक्तिभाव सम्पन्न अभिव्यक्तीकरण हुआ । दोनों भाषाओं के कृष्णभक्ति काव्य में भागवत को उपजीव्य ग्रंथ के रूप में स्वीकार किया गया तथा गुजरात और व्रजमण्डल एक भावात्मक स्तर पर एक दूसरे के अत्यन्त निकट आ गए ।

भागवत का व्रजप्रदेश में पर्याप्त प्रचार हुआ । सभी कृष्ण -भक्त आचार्यों ने भागवत को अपना उपजीव्य ग्रंथ माना है ।[१] कृष्ण-लीलाओं के साथ अपनी दार्शनिक मान्यताओं की अभिव्यक्ति के लिए उन्होंने भागवत का आधार लिया । स्वामी वल्लभाचार्य ने भागवत की सुबोधिनी टीका में शुद्धाद्वैत सिद्धान्त के अनुसार भागवत के सिद्धान्तों की व्याख्या की । निम्बार्क सम्प्रदाय में शुकदेवाचार्य ने सिद्धान्त प्रदीप में भागवत का विवेचन किया । चैतन्य मत में सनातन गोस्वामी के द्वारा " वृहद वैष्णव

१- भागवत संप्रदाय , पृ० १४७-४८

तोष्णी " नामक रचना में भागवत दशम स्कंध की आध्यात्मिक विवेचना हुई । इसी प्रकार जीव गोस्वामी ने भागवत के गूढ़ अर्थ की अभिव्यक्ति के लिए षट संदर्भ " की प्रथम रचना की । राधावल्लभ और हरिदासी सम्प्रदायों में यद्यपि भागवत की प्रत्यक्ष मान्यता नहीं है तथापि कृष्ण की जो लीलाएं इन सम्प्रदायों में मान्य हुईं, उनका मूल उद्गम श्रीमद्भागवत ही है । कृष्णभक्ति के इन सम्प्रदायों के संरक्षण में जो ब्रजभाषा का काव्य लिखा गया उन पर भागवत का प्रभाव स्पष्ट है ।

मध्यदेश में भागवत की लोकप्रियता का एक प्रमाण उसके भाषानुवादों की पुष्टि परंपरा भी है । कृष्णभक्त आचार्यों के अतिरिक्त लोक में भी भागवत का पर्याप्त आदर हुआ । जिसके परिणामस्वरूप उसके जन-भाषा में अनुवादों की आवश्यकता का अनुभव किया गया । वैष्णव भक्त कवि भागवत के अनुवादों में प्रवृत्त हुए । परिणामत: मध्यदेश में भागवत के भाषा अनुवादों की प्रवृत्ति को पर्याप्त प्रश्रय मिला । मध्यदेश में नंददास कृत दशम स्कंध, हरिदास कृत भागवत दशम स्कंध , हितदास कृत भागवत दशम स्कंध , कृष्णदास कृत भागवत भाषा, ब्रजकुंवरि कृत ब्रजदासी भागवत, वैष्णवदास रसजानि कृत भागवत भाषा, आदि अनेक भाषानुवाद प्राप्त होते हैं ।[१] मध्यदेश में भागवत के इन अनुवादों से उसकी लोकप्रियता स्वयंसिद्ध है। भागवत के लोकप्रिय एवं भक्त भाव व्यंजक कथानकों और अन्तरकथाओं पर आधारित अनेक स्वतन्त्र काव्यों की भी रचना हुई जो प्रकारान्तर से भागवत की ही लोकप्रियता के प्रमाण हैं ।

ब्रजप्रदेश के समान ही गुजरात में श्रीमद्भागवत का प्रचार और उसका वहाँ के साहित्य पर प्रभाव व्यापक रूप में परिलक्षित होता है । ईसा की १० वीं शती तक इसकी प्रसिद्धि गुजरात में हो चुकी थी । मूलराज सोलंकी ने भागवत की ११०८ प्रतियां सिद्धपुर के ब्राह्मणों को दान की थीं । एक विद्वान की धारणा है कि यदि गुजराती साहित्य में से भागवत से अनुप्रेरित सारी रचनाओं को निकाल दिया जाय तो बहुत कम ऐसी रचनाएं रह जायेंगी, जिन्हें साहित्य कहा जा सकेगा ।[२]

१- गवेषणा, मार्च १९६४,भागवत के भाषानुवादों की परम्परा, पृ० ११०

२- गुजराती और ब्रजभाषा कृष्णकाव्य का तुलनात्मक अध्ययन ,पृ० ४६६

भागवत के इसी प्रभाव का परिणाम है कि गुजरात के कई कवियों के भागवत-दशम स्कंध के गुजराती में पद्यानुवाद प्राप्त होते हैं। सं० १५२६ में प्रभास पट्ट ने के कायस्थ केशवदास हृदेराम ने भागवत दशम स्कंध का पद्यानुवाद किया था।[१] वि० १५४१ में भीम नामक कवि ने बोपदेव कृत " हरिलीलाषोडषकला " का गुजराती में अनुवाद किया, जिसमें भागवत की अनुक्रमणिका का विशद रूप से वर्णन है। १६वीं शताब्दी में पाटण गुजरात के महाकवि भालण ने भागवत दशम स्कंध का बहुत ही ललित अनुवाद किया। सं० १६८४ में अविचलदास द्वारा रचित भागवत के एक दो स्कंध जो नडियाद में रचे थे, मिलते हैं।[२] इसी प्रकार हरिरस कथासार, नामक भागवत का सार, जिसकी रचना सं० १६८८ में हुई, मिलता है। भागवत के पूर्ण अनुवादों के साथ ही उसमें वर्णित विभिन्न प्रसंगों पर स्वतंत्र रूप से भी लिखा गया। यथा-वीरसिंह जनार्दन नाकर कृत ऊषा हरण, मेघ जी देवीदास कृत रुक्मिणी हरण, तथा वस्ताकृत सुभद्राहरण, चतुर्भुज प्रेमदेव कृत भ्रमरगीता, सुरदास(१६११ वि०) प्रल्हादाख्यान, हरिदा भागवत सार और ध्रुवचरित, मंगल ध्रुवाख्यान, नारायण भट्ट कृत तृतीय स्कंध, एकादश स्कंध, कायस्थ कवि भगवान दास कृत भागवत एकादश स्कंध, संतमहाराज-भागवत, रत्नेश्वर कृत भागवत, जो भागवत की श्रीधरी टीका का गुजराती में शब्दश: अनुवाद है, वल्लभ भट्ट कृत भागवत, तुलजाराम कृत दशम स्कंध, प्रागदास कृत भागवत सार, रघुनाथ कृत दशम स्कंध, दयाराम कृत द्वादस स्कंध, भागवतानुक्रमणिका[३] आदि रचनाओं का उल्लेख इस संबंध में किया जा सकता है।

भागवत के अतिरिक्त ब्रजभाषा और गुजराती कृष्णभक्ति-काव्य को जयदेव कृत गीतगोविन्द ने सर्वाधिक प्रभावित किया। गीतगोविंद का प्रभाव ब्रजभाषा के अनेक कवियों के काव्य पर मिलता है। उसकी ललित पदावली तथा माधुर्यभावना कृष्णभक्त कवियों को अत्यन्त रुचिकर प्रतीत हुई। ब्रजप्रदेश में गीतगोविंद का प्रर्याप्त प्रचार एवं आदर है। सूरदास[४] और हरिराम व्यास[५] के पदों पर गीतगोविंद

१-पोद्दार अभिनन्दन ग्रंथ, पृ० ६३

२- गुजराती साहित्य, खण्ड ५ पृ० १६

३-वैष्णवधर्म नो संक्षिप्त इतिहास, पृ० ३७६-८०

४- सूरसागर (सभा) पद सं० १३०२

५- व्यासवाणी, पृ० ३६८

की छाया स्पष्ट है ।

इसके अतिरिक्त गीतगोविंद के काव्य सौष्ठव से भी प्रेरित होकर कुछ कवियों ने गीतगोविंद के व्रजभाषा में अनुवाद भी किए,जो पर्याप्त सुन्दर हैं । व्रजभाषा में गीतगोविंद के प्रमुख प्राप्त अनुवादों में,रामरायकृत गीतगोविंद पद, वैष्णवदास रसजानि कृति गीतगोविन्द भाषा,आदि उल्लेखनीय हैं ।[0] यह अनुवाद गीतगोविंद की लोकप्रियता के स्पष्ट प्रमाण हैं । उसकी ललित-पदावली अपनी माधुर्य भावना तथा काव्यात्मकता के कारण कृष्ण भक्त कवियों को आकृष्ट करती रही है ।

गुजरात में भी गीतगोविंद की लोकप्रियता के अनेक प्रमाण मिलते हैं । व्रजप्रदेश के समान गुजरात के भी कृष्ण-भक्त कवि उसकी ललित पदावली से प्रभावित हुए । नरसिंह मेहता, जो गुजराती के आद्य कवि कहे जाते हैं, की सुरत संग्राम आदि रचनाओं पर जयदेव के गीतगोविंद का प्रभाव स्पष्ट है ।[१] निम्न उद्धृत पंक्तियों में वे जयदेव का रिणि स्वीकार करते हैं -

अेक जाणो छे व्रज नी गोपी के रस जयदेव पीधो रे ।
उगतो रस अवनी ढ़लतो, नरसैयों ताणि ने लीधो रे ।[२]

इसी प्रकार १४६५ में पाटण के पास धानेडा ग्राम के नतर्षि नामक कवि ने " फागु काव्य " की रचना की थी । जिसपर गीतगोविंद की ललित शैली का प्रभाव स्पष्ट लक्षित होता है -

पण भरि नमंती तरुणी, वरुणी चरण संचारि रे ।
चालइ चमकत फमकत नेउर,केउर कटक विशाल रे ।[३]

भालण पर भी गीतगोविंद का प्रभाव निम्न पंक्तियों में देखा जा सकता है-

हरि बिना चन्द्रचकोर, जेम चकवी ने हरनीश भोर ।
तेम मुने वाहाला नंद किशोर, हरि विण हुं मुई रे ।[४]

---

०. हिन्दी अनुशीलन, वर्ष १४ अंक २
१- धौंडाक रस दर्शन , पृ० १६०
२- गुजराती साहित्य, खण्ड ५ प्रकरण ८ मुं पृ० ६३
३- वही, पृ० ३१३
४- वही , पृ० ३१७

मध्यदेश और गुजरात के साहित्यिक संबंधों का एक सूत्र गुजराती कवियों द्वारा ब्रजभाषा में काव्य रचना करना भी है। गुजरात में वल्लभ सम्प्रदाय ,स्वामी नारायण सम्प्रदाय,सूफी सम्प्रदाय, जैन धर्म और संत मत के व्यापक प्रभाव और गुजरात के मुसलमान बादशाहों और राजपूत राजाओं के हिन्दी प्रेम के कारण गुजरात के अंचल में हिन्दी को फलने-फूलने का पर्याप्त अवसर मिला। गुजरात में १५ वीं शताब्दी से लेकर आज तक हिन्दी के तीन सौ से भी अधिक कवि हुए हैं, जिन्होंने स्वभाषा गुजराती में काव्य रचना करने के साथ-साथ हिन्दी में भी काव्य रचनाएं की। यहां पर सभी कवियों का उल्लेख न कर हम संक्षेप में ब्रजभाषा में रचना करने वाले कुछ वैष्णव कवियों का उल्लेख मात्र ही कर रहे हैं। ब्रजभाषा में रचना करने वाले वैष्णव कवियों की परम्परा गुजरात में भालण से प्रारंभ होती है। इसकवि द्वारा रचित गुजराती काव्य " भागवत दशम स्कंध " में ५ पद ब्रजभाषा के भी प्राप्त होते हैं। भालण के समय के बारे में अभी विद्वानों में बड़ा मतभेद है। भालण कृत द्वितीय नलाख्यान के अनुसार कवि की उपस्थिति सं० १५४५ मान्य है। यदि भालण के इस समय और इन पदों को प्रामाणिक मान लिया जाये तो भालण को ब्रजभाषा का आदि कवि कहलाने तथा सूरदास से भी बहुत पहले ब्रजभाषा में काव्य-रचना करने का गौरव प्राप्त होता है।

भालण के पश्चात प्रभास पाटण के निवासी केशवदास कायस्थ के गुजराती ग्रंथ " कृष्ण लीला काव्य " के १४ वें और १६ वें सर्ग में ब्रजभाषा की फुटकर रचनाएं मिलती हैं। गुजराती के सुप्रसिद्ध कवि नरसी मेहता की भी कुछ स्फुट हिन्दी रचनाएं मिलती हैं। जूनागढ़ निवासी कवि त्रीकमदास(१७३४-१७६६ई०) ने डाकोर-लीला और " रुक्मिणी हरण " नामक प्रबंध काव्य और १६० के लगभग स्फुट पदों की रचना ब्रजभाषा मेंकी। वैष्णव कवियों की इस लम्बी परम्परा में गुजरात में ब्रजभाषा के और भी अनेक कवि हुए हैं, पर इन कवियों में चांदोद निवासी दयाराम (१७७७-१८५२ई०) सर्वश्रेष्ठ कवि हैं। इस गुजराती कवि ने ब्रजभाषा में ४१ ग्रंथ और १२,००० स्फुट पदों की रचना की है। सतसैया और रसिकरंजन ब्रजभाषा के सर्वोत्कृष्ट ग्रंथ हैं। इस कवि ने न केवल ब्रजभाषा में काव्य-रचना की वरन् ब्रजभाषा के काव्य ग्रंथों का गुजराती में अनुवाद भी किया। सूरदास के " सारावली " का अनुवाद दयाराम ने ४७ वर्ष की आयु में किया। यह अनुवाद मूल ग्रंथ का पंक्ति-

बद्ध ही नहीं शब्दश: भी किया गया है ।[१]

उपर्युक्त उदाहरणों से यह स्पष्ट हो जाता है कि गुजरात में अनेकों के कवियों ने गुजराती के साथ व्रजभाषा में भी काव्य-रचना की । उनका यह व्रजभाषा प्रेम दोनों प्रदेशों को एक सूत्र में बांधने में अधिक सहायक सिद्ध हुआ ।

मध्यदेश और गुजरात के संबंधों का एक सूत्र दोनों प्रदेशों में प्रचलित कीर्तन-परम्परा भी है । कीर्तन प्रणाली के द्वारा मध्ययुग में व्रज और गुजरात एक सूत्र में आवद्ध रहे हैं । व्रजप्रदेश में स्थापित वल्लभ-संप्रदाय का जैसे-जैसे प्रचार और प्रभाव बढ़ने लगा, वैसे-वैसे गुजरात में वल्लभ संप्रदायों के मंदिरों का निर्माण हुआ और नित्य पूजा के लिए कीर्तन प्रणाली का विधान रचा गया । इष्ट की पूजा और अर्चना में कीर्तन का प्रमुख स्थान होने के कारण कृष्ण भक्त कवियों ने कीर्तन हेतु गेय पदों की रचना की जिनका गान कृष्ण के अष्टप्रहर सेवा में किया जाने लगा । जिस कीर्तन की परंपरा की स्थापना श्रीमद्वल्लभाचार्य के द्वारा हुई, वह आज भी अक्षुण्ण बनी हुई है । व्रजप्रदेश के वल्लभ-सम्प्रदाय के गुजरात में व्यापक प्रचार होने के साथ ही, व्रजभाषा जो इष्ट प्रदेश की भाषा कहलाती है, में रचे हुए पद भी राजस्थान के माध्यम से गुजरात पहुंचे । धीरे-धीरे इन कीर्तनों का प्रभाव बढ़ता गया, जहां-जहां पुष्टिमार्गीय मन्दिरों या बैठकों का निर्माण हुआ, वहां ये कीर्तन भी पहुंचे । गुजराती भक्तों ने इन्हें लिपिबद्ध कर अपने नित्य उपयोग के लिए सुरक्षित रक्खा । यही कारण है कि गुजरात में इन पदों का संकलन साम्प्रदायिक कारणों के द्वारा ही अधिक हुआ, साहित्यिक कारणों से कम ।

प्रत्येक मन्दिरों और पुष्टिमार्गी भक्तों के घरों में इन पदों का संकलन किया गया, क्योंकि इष्ट की उपासना में इनका पर्याप्त महत्व था । वल्लभ संप्रदाय के जिन कवियों के पद गुजरात पहुंचे उनमें अष्टछाप के कविगण प्रमुख हैं । इन कवियों के पदों के साथ ही अन्य पुष्टिमार्गीय भक्त कवियों के पदों का भी प्रचार गुजरात में हुआ । निम्बार्क, चैतन्य, राधावल्लभ, हरिदासी, तथा अन्य कृष्ण भक्त संप्रदायों का प्रचार उस व्यापक रूप से गुजरात में नहीं हुआ, जिस रूप में वल्लभ संप्रदाय का ।

१- सूर सारावली, पृ० ६

इसी से इन सम्प्रदायों के पद गुजरात में कम संख्या में प्राप्त होते हैं। कृष्ण भक्ति के साथ ही गुजरात में राम भक्ति का भी प्रचार हुआ। गुजराती हस्तलिखित पद-संग्रहों में रामानंद, अग्रदास, गो० तुलसीदास, प्रागदास के पद प्राप्त होते हैं। कृष्ण और राम के साथ ही मध्यदेश की निर्गुण विचारधारा का भी प्रचार गुजरात में हुआ। जिसमें कबीर पंथ प्रमुख है। कबीर, धर्मदास, रैदास, मलूकदास की रचनायें गुजरात पहुंची। कबीर की विचारधारा का प्रभाव गुजराती के निर्गुण साहित्य पर पर्याप्त मात्रा में पड़ा है।

तात्पर्य यह है कि विविध भक्तिसम्प्रदायों में प्रचलित कीर्तन की प्रणाली ने गुजरात और ब्रज को एक सूत्र में बांधने में पर्याप्त सहायता की। विविध भक्त कवियों के गेय पद मध्यदेश से गुजरात में पहुंचे तथा वहां सगुण और निर्गुण भक्ति के प्रचार में सहायक सिद्ध हुये। इस सम्बन्ध में एक गुजराती लेखक का कथन है कि, " कृष्ण भक्ति के मुख्य केन्द्र होने के कारण उसके प्रभाव का प्रवाह मथुरा से द्वारका की ओर प्रवाहित हुआ " सत्य सिद्ध होता है।[१]

गुजरात में पुष्टिमार्ग का प्रसार

अन्य सम्प्रदायों की अपेक्षा गुजरात में वल्लभ सम्प्रदाय का अधिक प्रसार हुआ। वल्लभ सम्प्रदाय के अधिक प्रसार का कारण, " पुष्टिमार्ग मां रस के मान के वैभव ना त्याग नो तो सवाल हतो ज नहीं, अेटले आ आचार्य पद वैभान्वित सिंहासन थइ रहुं " ज्ञात होता है।[२] गुजरात में पुष्टिमार्ग का प्रचार स्वयं वल्लभाचार्य

१- गुजराती और ब्रजभाषा कृष्णकाव्य का तुलनात्मक अध्ययन, पृ० ४८१

२- गुजराती साहित्य, खण्ड ५ मौं, पृ० ३६४

के द्वारा ही प्रारम्भ हुआ । वल्लभाचार्य का जन्म ई० १४७३ को चौड़ानगर के समीप चंपारण्य में हुआ था । इनके माता पिता का नाम लक्ष्मण भट्ट और यल्लमागारु था ।काशी में विद्याअध्ययन समाप्त करने के पश्चात १२ वर्ष की आयु में आपने दक्षिण भारत की यात्रा की । दक्षिण भारत के पश्चात आपने समस्त भारत का भ्रमण करते हुये गुजरात के विभिन्न स्थानों सिद्धपुर,पाटण,वडनगर,वीशनगर,डाकोर,सूरत,द्वारका, काठियावाड़,प्रभास[१] की यात्रा की और अपने मत का प्रचार किया । गुजरात की ये यात्रायें सं० १५६५ के पूर्व क्रमश: तीन बार में हो चुकी थीं और १५८५ वि० में एक बार फिर आपके गुजरात आने के तथ्य मिलते हैं । द्वारका में उनका संयासियों के साथ गीता विषय पर अनेक दिनों तक विवाद चला और अंत में उन्होंने विजय प्राप्त कर गीता का वास्तविक रहस्य समझाया ।[२]

वल्लभाचार्य के उपरांत वल्लभ सम्प्रदाय में गुजरात यात्रा का एक क्रम ही बंध गया । वल्लभाचार्य के ज्येष्ठ पुत्र गो० गोपीनाथ के प्रचार का मुख्य केन्द्र गुजरात ही था ।[३] सं० १६१८ के लगभग उन्होंने गुजरात,सिंध,द्वारका आदि प्रान्तों का भ्रमण किया,जिसमें उन्हें दो वर्षों का समय लगा ।[४] इसके पूर्व भी आप कई बार गुजरात की यात्रायें कर चुके थे । गो० गोपीनाथ के छोटेभाई गो० विट्ठलनाथ ने तो द्वारकाधीश के दर्शन के लिये निम्नलिखित प्रमाण से ६ बार गुजरात की यात्रा की --

१- प्रथम अड़ैल से गुजरात पधारे

२- सं० १६१३ में पुन: अड़ैल से गुजरात पधारे

३- सं० १६१६ में गढ़ा से पधारे

४- सं० १६२३ में मथुरा से पधारे

५- सं० १६३१ में श्री गोकुल से पधारे

६- सं० १६३८ में पधारे

गो० विट्ठलनाथ के समय गुजरात (सिद्धपुर) में वल्लभाचार्य के शिष्य समर्थ विद्वान राणा व्यास और नरोड़ा में गोसाईं जी के शिष्य गोपालदास विशेषतय :

१- वैष्णवधर्म नो संक्षिप्त इतिहास, पृ० २५१

२- कांकरोली का इतिहास, पृ० ४६

३- अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय भाग १, पृ० ७५

४- कांकरोली का इतिहास , पृ० ८७

५- गुजराती और ब्रजभाषा कृष्णकाव्य का तुलनात्मक अध्ययन , पृ० ४७५

इस संप्रदाय का प्रचार किया करते थे ।[1] गो० विट्ठलनाथ जी के चतुर्थ पुत्र श्री गोकुल नाथ जी -- गोसाईं जी के पीछे ,विशेषकर गुजरात की यही जाया करते थे । गुजरात के बारह गांवों में सब लोग विशेष रूप से इनके सेवक होते आये हैं । इन बारह ग्रामों में देवगढ़,वगीया,बाडासीनोर,मोढ़ा शाह,कपडवनज,आंतरसुबा, आदि हैं । वल्लभ संप्रदाय के तृतीय पीठाधिपति श्री गिरिधर लाल जी ने सं० १७०१ में गुजरात के विभिन्न स्थानों पर जाकर वैष्णव धर्म का प्रचार किया ।[2]

इस प्रकार धीरे-धीरे कुछ ही समय में वल्लभ-संप्रदाय इतना व्याप्त हो गया कि गुजरात उसका घर बन गया और वैष्णव का अर्थ ही पुष्टिमार्गीय वैष्णव हो गया ।[3] स्थान-स्थान पर वल्लभ मत के मन्दिरों का निर्माण होने लगा, छोटे-छोटे ग्रामों में भी महाप्रभु की बैठक स्थापति होने लगी ।

गुजरात में पुष्टि सम्प्रदाय के केन्द्र

गुजरात में वल्लभ सम्प्रदाय के प्रचार और विकास के साथ ही गुजरात के विभिन्न स्थानों पर मन्दिरों का निर्माण हुआ और कुछ स्थान तो इतने प्रमुख हो गए कि उनकी प्रधानता आज भी विद्यमान है । द्वारका और डाकोर पुष्टि वल्लभ संप्रदाय के दो महत्वपूर्ण स्थल हैं जिनका गुजरात क्या सम्पूर्ण भारत के लिए विशेष महत्व है ।

१- कांकरोली का इतिहास , पृ० ६६

२- वही, पृ० १५८

३- वैष्णवधर्म नो संक्षिप्त इतिहास , पृ० ३६२

द्वारका

समुद्र के किनारे स्थित द्वारका बहुत प्राचीन है । महाभारत में कई स्थानों पर इसका वर्णन मिलता है । जिसमें इसे पुण्यस्थल कहा गया है । पुराणों में द्वारका की उत्पत्ति निम्न प्रकार से बतलाई गई है -

" भगवान मनु के पुत्र ययाति के एक पुत्री (सुकन्या) और उत्तानबर्हि, आनर्त और भूरिषेण नामक तीन पुत्र थे । आनर्त के पुत्र रैवत ने समुद्र के मध्य एक नगर की स्थापना की और उसे अपनी राजधानी बनाकर सम्पूर्ण आनर्त देश के ऊपर शासन किया । रैवत द्वारा स्थापित नगरी ही बाद में द्वारका के रूप में विख्यात हुई ।

छठी शताब्दी और उसके पश्चात के लेखों में द्वारका का वर्णन प्राप्त होता है । एक गुजराती विद्वान के मतानुसार वैष्णव तीर्थ के रूप में द्वारका की ख्याति सं० १२०० के पश्चात प्रारम्भ होती है और लगभग १५ वीं शताब्दी के पश्चात तो द्वारका की ख्याति एक तीर्थ के रूप में अधिक हो गई[1]।

द्वारका के इस विशाल मन्दिर में मुख्य मूर्ति रणछोड़ जी की है । इनके दोनों तरफ त्रिविक्रम और प्रद्युम्न के मन्दिर हैं । एक तरफ रुक्मिणी ,सत्यभामा, आदि पटरानियों के मन्दिर हैं । द्वारका मन्दिर की पूजा का अधिकार गुगली ब्राह्मणों के हाथों में है ।

डाकोर

गुजरात का दूसरा वैष्णव स्थान डाकोर है । डाकोर में भी रणछोड़ जी का मन्दिर है । रणछोड़ जी की मूर्ति द्वारका से ही आई है । इस संबंध में एक किवदंती है कि वजेसिंह नाम का एक भक्त था । जो प्रत्येक ६ महीने में रणछोड़ जी के दर्शन के लिए जाया करता था । ऐसा करते हुए जब वह अत्यन्त वृद्ध हो गया, तो भगवान रणछोड़ ने दया करके उसे एक रात स्वप्न में कहा कि तुम्हें यहां आने में अब बहुत कष्ट होता है । मैं तुम्हारे ग्राम चलूंगा । वजेसिंह रणछोड़ की मूर्ति

---

१. ऐतिहासिक संशोधन, पृ० ३६५.

लेकर द्वारका से चल दिया । चलते-चलते वह डाकोर तक ही आ पाया था कि द्वारका के ब्राह्मणों को इसका पता चला, उन्होंने उसका पीछा किया । वजेसिंह ने रणछोड़ की मूर्ति को तालाब में फेंक दिया ।

डाकोर के वर्तमान मन्दिर की स्थापना पेशवा के सराफ सतारा के गोपाल जगन्नाथ तांबेकर नामक गृहस्थ ने १७७२ ई० में की थी ।[१] डाकोर के सम्बन्ध में निम्न गुजराती के दोहे अत्याधिक लोकप्रिय हैं जिनसे डाकोर की महत्ता अधिक स्पष्ट होती है -

जेम को काशी केदार जाय , डाकोर जई ने गोमती नहाय ।
जे कोई राखशे अेनो विश्वास, मनना मनोरथ पूरशे आस ।।

धन्य बोडाणो धन्य अे जात, धन्य नगरी व देश गुजरात ।
धन्य परगणुं धन्य अे गाम, धन्य गोमती डाकोर नाम ।।[२]

वल्लभ सम्प्रदाय में उपासना विधि के साथ कीर्तन विधान

पुष्टिमार्ग में श्रीकृष्ण के प्रति आत्म-समर्पण इस कलियुग में मोक्ष प्राप्त करने का एक आदर्श उपाय है । इसी कारण श्रीमद् वल्लभाचार्य ने ब्रज के स्वामी एवं बाल रूप में कृष्ण की वंदना तथा उपासना का उपदेश दिया । उपासक को अपने हृदय में नंद यशोदा,गोपियों के सुख-दुख का अनुभव करने का प्रयास करना चाहिये और विभिन्न रूपों में कृष्ण की उपासना करनी चाहिये । यथा दर्शन,श्रवण,पादसेवन,कीर्तन-

हरि मूर्तिः सदा ध्येया संकल्पादपि तत्र ही
दर्शनं स्पर्शनं स्पष्टं तथा कृति गती सदा
श्रवणं कीर्तनं स्पष्ट पुत्र कृष्ण प्रिये रतिः ।

१- श्री वल्लभाचार्य,लाइफ,टीचिंग,मुवमेंट, पृ० ३७६
२- ऐतिहासिक संशोधन, पृ० ३७५

वल्लभ सम्प्रदाय में अन्य सेवाओं के साथ कीर्तन सेवा विधान महत्वपूर्ण है । जिसके बिना उपासक की उपासना अधूरी है । श्रीकृष्ण के बाल स्वरूप की उपासना मुख्य है । श्रीकृष्ण जिसप्रकार प्रात: से सायंकाल तक लीलाएं किया करते ,उनके माता-पिता,गोप-गोपिकाएं आदि उनको प्रसन्न करने के लिए,जिसप्रकार प्रयत्न करते थे, उसी प्रकार पुष्टि मार्ग के मन्दिरों में प्रात: से सायं तक अष्टप्रहर की नित्य सेवा विधि तथा वर्षोत्सव सेवाविधि का विधान स्वीकृत हुआ । जिसके अन्तर्गत प्रतिदिन प्रात:काल से सायंकाल पर्यंत आठ बार आठ सेवाओं और वसन्तोत्सव,हिंडोल तथा रासलीला आदि नैमत्तिक आचारों तथा लोक व्योहारों और वैदिक पर्वों के उत्सव षड रितुओं के उत्सव, तथा श्रीकृष्ण की नित्य और अवतार लीलाओं के उत्सव का आयोजन किया गया । अष्ट प्रहर की सेवाओं का क्रम विधान निम्न प्रकार है --

प्रथम प्रभु को जगाना-मंगला, पश्चात अलंकारादि धारण कराना-श्रृंगार, ग्वाल-बाल के साथ वन में गायें चराने जाना - ग्वाल, जंगल में गोपादि जो भी सामग्री लाते उनका आपस में मिल बांट कर भोजन करना - राजभोग। ढ़लते पहर-उत्थापन , पश्चात-भोग और फिर गायों के साथ वन से लौटना-संध्या और फिर अंत में शयन ।

उपर्युक्त क्रम से दिन भर में आठ दर्शन होते हैं। इन आठों दर्शनों में कीर्तन की व्यवस्था है । अष्टप्रहर की नित्य सेवा तथा वर्षोत्सव सेवाओं में विविध राग-रागिनियों में विशिष्ट वाद्ययंत्रों की संगत में उस समय से संबंधित भावानुकूल पदों के गायन की सम्यक् आयोजना की जाती है । मंगला की सेवा में अनुराग , खंडिता भाव जगाने तथा दधि मंथन के , श्रृंगार में बालरूप की सुन्दरता वेशभूषा, बालक्रीड़ा के , ग्वाल में सख्यभाव तथा कृष्ण के खेल चौगान,चकडोरी,गोचारण,गोदोहन, माखनचोरी,पालना, धैया अरोगन के, राजभोग में छाक के ,उत्थापन में गोटेरन के तथा अन्य लीला के , भोग में कृष्ण रूप गोपी दशा,मुरली,रूप माधुरी, गाय गोप आदि के,संध्या में गो ग्वाल सहित वन से आगमन,गोदोहन,धैया,वात्सल्य,

भाव से यशोदा का बुलाना आदि के और शयन समय अनुराग गोपी भाव से निकुंज-लीला तथा संयोग श्रृंगार के पदों का तथा वसंत,हिंडोल,रासलीला, आदि उत्सवों में इन क्रीड़ाओं से सम्बन्धित पदों का गायन किया जाता है ।

यों तो सभी सम्प्रदायों में कीर्तन-भक्ति मान्य है । सभी गायक भक्त कवि सुन्दर-सुन्दर पदों के द्वारा अपने इष्टदेव को प्रसन्न करने का प्रयत्न करते हैं । कीर्तन करते-करते भगवान की आराधना में बेसुध होकर नाचने वाले महाप्रभु चैतन्य ने कृष्ण-भक्ति का अत्यधिक प्रचार किया । यदि यों कहें कि कृष्ण चरित के गान में गीत-काव्य की जो धारा पूर्व में जयदेव और विद्यापति ने बहाई, उसी का अनुसरण व्रज के भक्त कवियों ने भी किया तो कोई अत्युक्ति न होगी । किन्तु पुष्टिमार्ग में नवधाभक्ति का विशेष महत्व है । नवधाभक्ति में कीर्तन पर अधिक बल इस कारण दिया जाता है कि संगीत में तन्मयता प्रदान करने की जैसी शक्ति है , वैसी अन्य साधनों में कम होती है । संगीत की चुम्बकीय शक्ति से खिंचकर भक्त का हृदय अपने उपास्य देव की वंदना में एक तान,एक ताल और एक लय हो जाता है । शास्त्रीय दृष्टि से पुष्टि का अर्थ होता है, जीव की आत्मा का पोषण उस परम तत्व के द्वारा होता है । अत: जीव का निरन्तर पास रखकर उस परम तत्व के आचरणों तथा क्रियाओं के गुणगान में संलग्न रहना अनिवार्य है[१]। इसी भावना के कारण पुष्टिमार्गीय सेवा विधान, अष्टप्रहर की नित्य सेवाविधि का विधान स्वीकृत हुआ ।

श्रीमद् वल्लभाचार्य ने सं० १५५० के लगभग गोवर्धन पर श्रीनाथ जी के मंदिर की सेवा प्रणाली निश्चित की तथा कुंभनदास को कीर्तन की सेवा सौंपी[२]। यहीं से कीर्तन की परम्परा प्रारम्भ होती है । इसके पश्चात तो फिर पुष्टिमार्ग के सभी कवियों ने कीर्तनों की रचना की जिसे वे स्वयं श्रीनाथ जी के सम्मुख गाते और प्रभु की विभिन्न लीलाओं का गान करते ।

१- हिन्दी के कृष्णभक्तिकालीन साहित्य में संगीत , पृ० ११३

२- बुद्धि प्रकाश , १९२८

कीर्तन की यह परम्परा जहां एक ओर धार्मिक महत्व रखती है,वहीं दूसरी ओर इसका व्रज और गुजरात के संबंधों को बनाये रखने की दृष्टि से पर्याप्त महत्व है । गुजरात और व्रजप्रदेश के वैष्णाव कवियों ने जिन गेय पदों की रचना की और कीर्तन परम्परा में जो उनका समावेश हुआ वे इन दोनों ही प्रदेशों के संबंधों को बनाये रखने की दृष्टि से निश्चित रूप से महत्वपूर्ण है ।

मध्ययुग के भक्ति-सम्प्रदाय

गुजरात में मध्ययुग के भक्ति सम्प्रदायों में वल्लभ सम्प्रदाय,रामानंदी सम्प्रदाय, निम्बार्क,मध्वा॰,राधावल्लभी,हरिदासी,कबीर पंथ आदि संम्प्रदायों का प्रचार गुजरात में हुआ । इनमें से वल्लभ सम्प्रदाय का प्रभाव वहां के जन-जीवन पर व्यापक रूप से पड़ा तथा अन्य सम्प्रदायों का प्रभाव सीमित ही रहा । गुजरात में स्वामी-नारायण सम्प्रदाय की स्थापना हुई, किन्तु उसका प्रभाव दौत्र गुजरात ही रहा, बाहर उसका प्रचार न हो सका ।

रामानुजी एवं रामानंदी सम्प्रदाय

गुजरात में रामानुज सम्प्रदाय का विशेष प्रचार या महत्व उस रूप में नहीं हुआ, जिस रूप में कृष्णा-भक्ति का । प्रसिद्ध गुजराती विद्वान स्व० दुर्गाशंकर शास्त्री के " वैष्णाव धर्म नो संक्षिप्त इतिहास " में निम्न विवरण मिलता है ,

" सबसे प्रचीन वैष्णाव सम्प्रदाय होने पर भी गुजरात में प्राचीन काल में रामानुजी सम्प्रदाय का विशेष असर रहा हो, ऐसा प्रतीत नहीं होता ।" फिर भी इस सम्प्रदाय के अनेक ग्रंथ चार-पांच सौ वर्ष के लिखे हुए गुजराती में मिलते हैं । इनसे इसके कुछ प्रचार का प्रमाण मिलता है । रामानुजी भक्तों की जो संख्या ११ लाख १८७६ की मतगणना के अनुसार बम्बई गजेटियर में अनुमानित की गई है, उसमें रामानंदी, रामसनेही, और साधारण सम्प्रदाय-युक्त रामभक्त भी सम्मिलित हैं । रामानुज मत

में ब्राह्मण,और वणिक विशेष रूप से मिलते हैं, जिनके मंदिर बडौदरा, डभोई, अहमदाबाद,सूरत आदि स्थानों में मिले हैं । वीसवीं शती के आरंभ में रामानुजी सम्प्रदाय के एक आचार्य काठियावाड़ में रहते थे , जिनके द्वारा जूनागढ़ में कुछ प्रचार हुआ ।[१]

उपर्युक्त विवरण से इतना तो प्रकट हो जाता है कि राम-भक्ति धारा का विशेष वेग गुजरात में नहीं रहा । एक अन्य उल्लेख जो इस संबंध में दर्शनीय है, इस प्रकार है -

> पंदर मां सैका मां गुजरात में रामानुज सम्प्रदाय प्रसर्यों लागे छे । अने वीरमगाम थी सुरत सुधी अने असर देखाये छे । आजे गुजरात मां ठेक ठेकाणों रामानुज देखाये छे, अने काठियावाड़ मां खीजड़ा मंदिर नामे प्रचलती सम्प्रदाय आनों एक फांटो छे, एम मानवाना कारण मले छे ।[२]

गुजरात में रामानंद का प्रभाव १४ वीं शती के उत्तरार्ध से लेकर १५ वीं शती के बाद तक रहा है । इस काल में रघुवा,रघुनाथ, आदि का प्रयोग कवि-गण अपने नाम के साथ करने लगे थे । मालण और प्रेमानंद के कतिपय काव्य इसके उदाहरण हैं । अनेक पदों में राम का उल्लेख " मालण प्रभु रघुनाथ "[३] और प्रेमानंद प्रभु राम " मिलता है । कुछ विद्वानों ने इस प्रभाव को साम्प्रदायिक न मानकर पौराणि माना है । इसी प्रकार नरसी की भी कुछ पंक्तियों में राम का वर्णन मिलता है, जिसमें उन्होंने अपने को राम का व्यापारी कहा है ।[४] सं० १५८७ में तलाजा नामक ग्राम के एक वैष्णव कवि " मीठा " के लिखे हुए ग्रंथ " वैष्णव लक्षणों की ये पंक्तियां इस संदर्भ में उल्लेखनीय हैं --

> सांभलि स्वामी श्री रघुनाथ,करुंअ विनती जोडी हाथ
> कहूं वैष्णव नई आप छंदिइ रमई।कहु राम ने ते किम गमइं ।
> विष्णुकथा गुण गाइ गीत ।उंबरि हीयडुं वहलइ चीत ।
> नारी पीयारी सरिस रमइ । कहु रामने ते किम गमइ ।[५]

१- वैष्णवधर्म नो संक्षिप्त इतिहास,पृ० ३८६
२-मैथिलीशरण अभिनन्दन ग्रंथ, पृ० ८४६
३- गुजराती साहित्य खण्ड ५, पृ० १६
४- गुजराती और ब्रजभाषा कृष्णकाव्य का तुलनात्मक अध्ययन, पृ० ४७१
५. मैथिलीशरण अभिनन्दन ग्रंथ, पृ० ८४६

गुजरात में रामभक्ति का कम प्रचार होते हुए भी १५ वीं शती के बाद से २०वीं शती ई० तक अनेक ग्रंथों का विवरण मिलता है, जिनका संबंध रामकथा या रामभक्ति से है। १५वीं शती में मालण कृत रामबाल चरित तथा सीता विवाह १६ वीं शती में उसके पुत्र उद्धव द्वारा रामायण की रचना हुई जिसे पूर्ण रूप उनके पुत्र विष्णुदास ने १५७५ वि० में दिया।[१] नाकर और मांडण द्वारा रामायण तथा कर्मण मंत्री द्वारा सीताहरण इसी शती में लिखे गये। सं० १६५४ में खंभात के विष्णुदास द्वारा रचित रामायण का भी उल्लेख मिलता है। १७ वीं शती में मधुसूदन कृत युद्धकांड, श्रीधर कृत रावण-मंदोदरी संवाद तथा काशीसुत शेघ जी के हनुमान चरित्र, आदि रचनाएं हैं। १८ वीं शती में " राम स्तवराज " राम चरित्र रामाचा, रामनोमहिमा, रामचन्द्र नी गरबी, अध्यात्म रामायण, तथा शामल कृत रावण-मंदोदरी संवाद, एवं वजाई कवि का " सीता संदेश " आदि रामपरक काव्यों की रचना हुई। १६ वीं शताब्दी में रचित रामकाव्य संबंधित रचनाओं का सृजन , गुजराती लोक-काव्य की विविध शैलियों में हुआ है, जिनमें रामराज्यभिषेक को घोल राम विवाह ना सलोको प्रमुख हैं।[२]

यद्यपि गुजरात और व्रजप्रदेश के धार्मिक संबंधों में प्रमुख सूत्र कृष्ण की उपासना-पद्धति रही है फिर भी राम की पूजा-भावना ने भी गुजरात और व्रजप्रदेश की एकता बनाये रखने में सीमित ही सही, किन्तु महत्वपूर्ण योग दिया है। इसका प्रमाण गुजराती हस्तलिखित पद-संग्रहों में प्राप्त राम-भक्त कवियों के पद कहे जा सकते हैं।

वल्लभ सम्प्रदाय

अन्य वैष्णव सम्प्रदायों की अपेक्षा गुजरात में वल्लभ सम्प्रदाय का विशेष प्रचार हुआ और उसका प्रभाव वहां के साहित्य पर भी यथेष्ट मात्रा में पड़ा। गुजरात में पुष्टिमार्ग की शुद्ध भक्ति गुजराती स्वभाव की व्यावहारिकता तथा व्यापारी प्रवृति के कारण काफी पनपी।

१- गुजराती साहित्य , खण्ड ५ पृ० १६

२- મૈથિલીશરણ અભિનન્દન ગ્રંથ, પૃ० ૮૪૬

गुजरात में वल्लभ सम्प्रदाय का प्रभाव लगभग १७वीं शती से आरम्भ होता है;[1] क्योंकि इस समय तक वल्लभाचार्य और उनके पुत्र गोपीनाथ और गो० विट्ठलनाथ गुजरात की यात्राएं अनेक बार करके अपने मत का प्रचार कर चुके थे ।

गुजराती भक्त कवियों ने वल्लभाचार्य को अपने काव्य का विषय बनाया । कवि गोपालदास, जो वल्लभाचार्य के शिष्य माइला कोठारी के जमाई थे तथा गो० विट्ठलनाथ की कृपा से जिनमें कवित्व शक्ति आई, ने " वल्लभाख्यान " नामक काव की रचना की, जिसमें वल्लभाचार्य का चरित वर्णित है । इस वल्लभाख्यान का सम्प्रदाय में विशेष महत्व हुआ । तत्पश्चात गोकुलनाथ के शिष्य गोपालदास तथा केशवदास ने भी वल्लभाचार्य का चरित गुजराती में लिखा । विट्ठलनाथ के अर्बुदारण्य निवासी शिष्य गदाधरदास ने " सम्प्रदाय प्रदीप ", नामक ग्रंथ की रचना संस्कृत में की, जिसमें वल्लभाचार्य को विष्णुस्वामी तथा विल्वमंगल की आचार्य परम्परा में स्थापित किया ।

इसके साथ ही गुजराती कवि भीम, केशवदास, वैकुंठदास, और महावदास पर भी पुष्टिमार्ग का प्रभाव स्पष्ट है ।[2] १६ वीं शती का कवि गिरधर जिसने रामायण और कृष्णचरित लिखा, वल्लभ मत का अनुयायी था । गुजराती कवियों में दयाराम, जिनकी गणना श्रेष्ठ कवियों में की जाती है, पुष्टिमार्ग के ही अनुयायी थे । इनका जन्म १८३३ में और देहावसान १६०६ वि० में हुआ था । दयाराम के कई काव्यों की कथावस्तु भागवतोक्त कृष्ण लीला से सम्बन्धित है । उन्होंने रसिक वल्लभ, पुष्टिपथ रहस्य, भक्ति पोषण आदि ग्रंथ पुष्टिमार्ग के सिद्धान्तों के प्रसार के लिए लिखे । दयाराम ने संस्कृत भाषा-भाषी गुजराती प्रजा में वल्लभ मत की भक्ति का प्रचार गुजराती भाषा के माध्यम से किया ।[3]

सं० १५५३ के लगभग चलोतर (गुजरात) में पुष्टिमार्ग अष्टछाप के चतुर्थ रत्न " कृष्णदास " का जन्म वहां की कुनबी जाति में हुआ था । शूद्रकुल में उत्पन्न

१- गुजराती साहित्य, खण्ड ५ मों , पृ० २६

२- गुजराती और ब्रजभाषा कृष्णकाव्य का तुलनात्मक अध्ययन, पृ० ४७६-७७

३- वैष्णवधर्म नो संक्षिप्त इतिहास , पृ० ३६५

उत्पन्न होने पर भी उन्हें पुष्टिमार्ग में पर्याप्त मान्यता मिली और इन्हें अधिकारी की उपाधि प्राप्त हुई । कृष्णदास व्रजभाषा साहित्य के आचार्य श्री सूरदास के बाद महाप्रभु वल्लभाचार्य के मन्दिर के अधिकारी थे । ये भारतीय संगीत के परम्परागत मूलक गायक, काव्य मर्मज्ञ,और पद रचना में अग्रणी थे । संगीत,काव्य और कलाओं के मर्मज्ञ गो० विट्ठलनाथ ने इनकी रचना-सौष्ठव को देखकर ही इन्हें पुष्टिमार्गीय आठ प्रधान रचयिताओं में जिन्हें सम्प्रदाय में " अष्टछाप " या भगवान के अष्टसखा कहा जाता है, सम्मिलित किया था ।

इस प्रकार उपर्युक्त उल्लेखों से यह स्पष्ट हो जाता है कि गुजरात पर वल्लभ-सम्प्रदाय का प्रभाव विशद रूप से पड़ा , जिससे वहां का साहित्य भी अछूता न रह सका ।

अन्य सम्प्रदाय

अन्य सम्प्रदायों में निम्बार्क, मध्व तथा राधावल्लभी और हरिदासी का कोई विशिष्ट प्रभाव गुजरात में परिलक्षित नहीं होता । निम्बार्क सम्प्रदाय के ग्रंथ गुजरात के भंडारों में मिलते हैं किन्तु बम्बई गजेटियर के अनुसार इस मत का एक भी अनुयायी गुजरात में नहीं मिलता ।

मध्व सम्प्रदाय के कुछ अनुयायियों का उल्लेख बम्बई गजेटियर के अनुसार मिलता है तथा इनके कुछ साम्प्रदायिक ग्रंथ भी मिलते हैं । गुजरात की दरजी,गराशीया तथा पाटीदार आदि जातियों में इसका कुछ प्रभाव मिलता है ।

राधाकृष्ण के उपासक राधावल्लभीय सम्प्रदाय के संबंध में इतना अवश्य ज्ञात होता है कि इसका प्रभाव वल्लभ सम्प्रदाय से पहले गुजरात में था किन्तु वल्लभ सम्प्रदाय के अत्यधिक प्रसार के कारण इसका प्रभाव समाप्त हो गया । फिर भी गुजरात की कणवीं आदि जातियों में इसका थोड़ा प्रचार है । विक्रम की १८ वीं शती में प्रीतमदास नाम का एक कवि हुआ है जिसने कृष्णलीला विषयक पदों की रचना की ।

परन्तु कृष्ण भक्ति के प्रवाह में उपर्युक्त सम्प्रदायों के कवियों के पद भी गुजरात में पहुंचे और वहां के हस्तलिखित संग्रहों में संगृहीत हुए ।

गुजरात में कबीर पंथ

कबीर को सतसंग प्रिय था । उनका सम्पूर्ण जीवन सतसंग में ही व्यतीत हुआ था । अपनी इसी सतसंग प्रियता के कारण उन्होंने समस्त भारत का भ्रमण किया था । झूंसी,मानिकपुर,वृन्दावन,बाघंवघाट तथा गुजरात में उनके भ्रमण के अनेक प्रमाण उपलब्ध होते हैं । कबीर की रचनाओं से भी उनके भ्रमण का पता चलता है ।[1] अपने जीवन के प्रारम्भ में की ग कबीर की यात्राएं किसी सच्चे गुरु की खोज के लिए की गई होंगी । " बनि बनि फिरों उदासो " जैसी पंक्तियां इस बात को चरितार्थ करती हैं कि कबीर को सच्चे गुरु की खोज में अनेक बार अनेक स्थानों की यात्राएं ~~अपने विचार और प्रसार के लिए की होंगी~~ + करनी पड़ी होंगी ।[2] और अपने जीवन जीवन के उत्तरार्ध में कबीर ने यात्राएं अपने विचार और प्रसार के लिए की होंगी ।

गुजरात में कबीर की यात्रा के प्रमाण स्वरूप कुछ तथ्य ज्ञात होते हैं । जिससे संभव लगता है कि कबीर ने गुजरात के विभिन्न स्थानों की यात्राएं अपने इसी लक्ष्य प्राप्ति के लिए की थीं । स्वामी रामानंद अपने चालीस शिष्यों के साथ गागरौन नरेश संत पीपा के निमंत्रण पर पहले गागरौन और वहां से वे द्वारका गए । रामानंद के साथ कबीर,रैदास,आदि भी थे ।[3] नर्मदा तटवर्ती भरौंच से १३ मील दूर एक बहुत बड़ा वटवृक्ष है जिसे कबीर वट कहते हैं । उस पेड़ के लिए प्रसिद्ध है कि अपनी गुजरात यात्रा के समय कबीर ने उसे स्पर्श करके हरा कर दिया था ।[4] एक अन्य उल्लेख के अनुसार गुजरात के एक सोलंकी राजा ने कबीर से पुत्र प्राप्ति के लिए प्रार्थना की थी, और उसे वह प्राप्त भी हुआ था ।[5] कबीर सम्प्रदाय में प्रचलित एक पुस्तक के निम्न पद से भी यह ज्ञात होता है कि कबीर ने गुजरात की यात्रा की थी --

---

१- उत्तर भारत की संत परम्परा, पृ० १६३

२- वही, पृ० १६५-६६

३- रामानंद सम्प्रदाय तथा हिन्दी साहित्य पर उसका प्रभाव, पृ० १८०

४- मिडीवल मिस्टिसिज्म आफ इंडिया, पृ० ६८-६६

५- कबीर एण्ड हिज फालोवर्स, पृ० १६

-------------------- सौरठ देश में पहुंचे जाई ।
जीत देखा तित क्रोध हंकारा पूजहिं मूरत बौभीत बिस्तारा ।
गढ़ गिरनार अेक है नाहु चंद वीज वां बरपत राऊं
नृपत वधुं अेक रहे स्याना पूजे साधु मातन जाना

कबीर का अपने पुत्र कमाल के साथ गुजरात जाना[2] और भृगुकच्छ में (भड़ौंच) में ठहरना प्रसिद्ध है । इसी प्रकार कबीर के सौराष्ट्र गिरनार जाने का भी उल्लेख मिलता है ।

उपर्युक्त कबीर के गुजरात यात्रा के उल्लेख साम्प्रदायिक ग्रंथों के आधार पर दिए गए हैं । इस जिनका आधार प्राचीन काल से चली आई हुई जनश्रुतियां हैं । अत: इनको बिना किसी प्रामाणिक प्रमाण के सत्य रूप में नहीं माना जा सकता है । किन्तु फिर भी जनश्रुतियों में कुछ सत्यता अवश्य होती है जिसकी पूर्ण अवहेलना नहीं की जा सकती है । अत: इस विषय में अभी अधिक खोज की आवश्यकता है कि कबीर ने गुजरात की यात्रा की थी या नहीं ।

पंथ का प्रसार

अन्य प्रान्तों के समान ही गुजरात में कबीर पंथ का प्रसार कबीर की मृत्यु के पश्चात उनके शिष्यों के द्वारा हुआ । वैसे तो कबीर के सहस्रों शिष्य थे किन्तु उनमें १२ प्रमुख थे । जिनके नाम इस प्रकार हैं - धर्मदास,सुरतगोपाल,भग्गुदास,जग्गीदास, नारायणदास,जीवनदास,कमाल,टकसाली,ज्ञानी,साहिबदास,और नित्यानंद । गुजरात में कबीर पंथ के प्रसार में धर्मदासी साधुओं ने विशेष योग दिया । धर्मदासी साधू अपने मुख्य केन्द्र छत्तीसगढ़ से निकलकर खानदेश होते हुए गुजरात पहुंचे । सर्वप्रथम इन साधुओं ने सूरत को अपना केन्द्र बनाया,और वहीं अपने सम्प्रदाय की स्थापना की । लगभग १७ वीं शताब्दी में कबीर पंथ की स्थापना गुजरात में हुई ।[3] सूरत की गद्दी के प्राचीन महंत श्रीकृष्ण दास सं० १७५६ में गद्दी पर बैठे थे । सूरत के पश्चात यह सम्प्रदाय गुजरात के अन्य नगरों यथा भरुच ,खंभात,अहमदाबाद,नडियाद,भावनगर,

---

१- कबीर सम्प्रदाय, पृ० १५५
२- वही , पृ० १३४
३- " गुजरात मां पण सत्तर सैका मा ते दाखल थयो लागे छे "
गुजराती साहित्य खण्ड ५ मों, पृ० ३२३

मौरवी,जामनगर,जूनागढ़,राजकोट आदि में फैला । इन सभी स्थानों का संबंध छत्तीसगढ़ की धर्मदासी गद्दी के साथ है । वाराणसी की सुरत गोपाल शाखा का भी गुजरात में कुछ प्रचार हुआ, किन्तु यह छत्तीसगढ़ की तुलना में सीमित ही रहा है । इसकी शाखाएं केवल सूरत,बड़ौदा,अहमदाबाद में हैं । वर्तमान समय में गुजरात के विभिन्न स्थानों पर कबीर पंथ की निम्नलिखित गद्दियां हैं --

सूरत	:	संग्रामपुर,लाल दरवाजा,दारगीया
भरुच	:	बांदरा, सुरज
बड़ौदा	:	सीआ बाग, भीमनाथ,आनंदपुरा,फतेहपुरा
अहमदाबाद	:	सांकडीशेरी, खाड़ियासरसपुर, दरियापुर
राजकोट	:	सत्रीबाड़ा, लालपरी

इसके साथ ही नडियाद,मौरवी,भावनगर,जामनगर,खंभात,तथा जूनागढ़ में एक-एक गद्दी है ।

सुरत गोपाल शाखा की विभिन्न गद्दियां

सुरत गोपाल वाराणसी के " कबीरचौरा" के महंत थे । इन्होंने `सुखनिधान` नामक ग्रंथ की रचना की थी । इनके दो मठ द्वारका तथा पुरी में हैं । इस शाखा की विशेषता शिष्य परंपरा की (नाद परंपरा) रही है जब कि धर्मदासी शाखा की वंश परंपरा (विंदु परंपरा) की । इनकी गद्दियां इस प्रकार हैं --

बड़ौदा	:	पाणी दरवाजा
सूरत	:	दील्ही दरवाजा
अहमदाबाद	:	नवा परा

गुजराती साहित्य पर प्रभाव

अपने प्रसार के साथ ही कबीर पंथ का गुजरात के साहित्य पर भी प्रभाव किसी न किसी रूप में अवश्य पड़ा है । कुछ गुजराती कवियों ने सीधे कबीर से प्रेरणा ली है और कुछ कवियों पर परोक्ष रूप से कबीर का प्रभाव परिलक्षित होता है । गुजराती साहित्य पर कबीर का प्रभाव किस रूप में पड़ा है इसकी चर्चा गुजराती

विद्वानों में काफी दिनों तक रही । कुछ गुजराती विद्वान नरसिंह मेहता पर रामानंद,चैतन्य और कबीर का प्रभाव मानते हैं ।[१] नरसी गुजरात के हैं आद्य कवि तेजस्वी भक्त। अपनी मृत्यु के पांच सौ वर्ष के पश्चात भी वे सिर्फ गुजरात के ही नहीं अपितु उसकी सीमा का उलंघन कर उनकी लोकप्रियता और भी व्यापक हो गई । " वैष्णव जन तो तैने रे कहिए " भजन से वे सारे गांधीवादी जगत पर अपना प्रभाव छा रहे हैं ।[२] नरसी मेहता के निम्न पद में कबीर का प्रभाव स्पष्ट है[१] --

ज्यां लगी आत्मा तत्व चिन्यो नही त्यां लगी साधना सर्व जूठी
मानुष देह तारो अेम अेले गयो,मावठानी जेम वृष्टि वूठी
शुं थयुं स्नान सेवा ने पूजा थकी शुं थयुं घेर रहि दान दीधे ।

- - -

भणे नरसैयां के तत्व दर्शन बिना रत्न चिंतामणि जन्म खायो ।[३]

इसके साथ कबीर की निम्नलिखित पंक्तियां तुलनीय हैं--

आत्म तत्व चीना बिना सब है जूठी सेव
करे सौ तौ भ्रमणा क्या तीरथ क्या देव ।[४]

ईसा की १६वीं शताब्दी में जबुंसर निवासी वछराज ने जो कबीर का अनन्य भक्त था " रसमंजरी " नामक एक उपदेशात्मक वार्ताओं का संग्रह किया । हिन्दी साहित्य में कबीर जिस प्रकार ज्ञानी और निर्गुणवादी कहे जाते हैं, उसी प्रकार गुजराती साहित्य में अखा वेदान्ती नाम से प्रख्यात हैं । अखो(१५६१-१६५६ई०) मध्यकालीन महापुरुषों में से एक हैं । उनके हृदय में पयगम्बरी आवेश और पयगम्बरी प्रकोप सतत प्रज्वलित था ।[५] उन्होंने " अखेगीता " नामक एक अपने विचारों के पदों

१- बसंत , सावण-भादों, सं० १६६१
२- भारतीय साहित्य, वर्ष ३ जनवरी १६५८,पृ० ३७७
३- नरसिंह मेहता कृत:काव्य संग्रह,पृ० ४८६ पद सं० ४३ ,
४- कबीर सम्प्रदाय, पृ० १५४
५- अखो एक अध्ययन, पृ० ६

का एक संग्रह किया । अखेगीता में उनकी सिद्धावस्था के गहनतम संवेदन शब्द देह के-~~स्वर्य~~ स्वरूप में मूर्तिमान होते हैं । इस पर भी कबीर की निर्गुणवादी विचार-धारा का प्रभाव है । प्रमाणस्वरूप एक पद यहां उद्धृत है --

साचुं साधन शुद्ध विचार जे हुं मारा नो काढ़े पार
जे मूकी अन्य साधन करे जैम भ्रमरोगी विजया वाव रे
निज आतम जाण्या बिना मर्म अखा नहिं छूटे करतां कर्म ।[1]

द्वारका के गुगली ब्राह्मण कवि मुकुंद ने १७०८ ई० में कबीर का जीवन-चरित्र लिखा । यह ग्रंथ कबीर के हिन्दू तथा मुसलमानों दोनों भक्तों में विशेष सम्मानित हुआ । यह हिन्दी का भी अच्छा विद्वान था ।

१७३० ई० में निर्गुण कविता की धारा बहाने वाला खेड़ा जिले का कवि प्रीतमदास हुआ । " सरस गीता " " ज्ञान नो कक्को " आदि उनकी रचनाएं हैं। उनकी एक काव्य पंक्ति आजकल गुजरात में एक कहावत के रूप में आज भी विद्मान है । " हरि नोमारग छे शूरा नो नहिं कायर नुं काम छे " ।[2] माया के विषय में प्रीतम कबीर की भावना से प्रभावित है :

जगत नुं सुख झाखल नुं छे, पाणी रे जाणी ले
वणाशी जाता वार नहिं,सत वाणी रे जाणी ले ।

काया रे तारी काम न आवे, जो करे कोटि उपाय रे
वणशीं जातां वार नहिं लागे,जो कुंदन कापी ने खाय रे ।[3]

१७७४ई० में कवि हरिदास ने वेदान्त तथा ज्ञान के पद लिखे जो साधुओं में अधिक प्रसिद्ध हुए । जीवराम भट्ट ने " जीवराज सेठ " नामक एक रूपक काव्य की रचना की, जिसमें आत्मा परमात्मा से मिलने के लिए यात्रा करती है ।

१- अखा ना छप्पा , पृ० ७६
२- भारतीय साहित्य,जनवरी १९५८ पृ० ३८३
३- कबीर सम्प्रदाय , पृ० १६३

शांकर वेदान्ती धीरा भगत (१७३५-१८२५ ई०) गुजराती साहित्य में अपनी काफियों केलिए प्रसिद्ध हैं । कहा जाता है कि धीरा भगत पदों की रचना करके,और उसे कागज में लिख के नदी के प्रवाह में वांसुरी वंद करके छोड दिया करते थे । गुरुधर्म उनकी विशिष्ण कृति है । इसके शब्द अखा के समान चुभते तो नहीं, किन्तु सरल रूप में यह अपनी बात समझाने का प्रयत्न करता है । कबीर की यह भावना " मुझको तु क्या ढूंढे वंदे, मैं तो तेरे पास में " धीरा भगत में निम्न रूप में उल्लेखनीय है --

दुनिया दीवानी रे ब्रह्मांड पाखंड पूजे
कर्ता वसे पासे रे वाजी काईं नव बूझे रे
जीव नहीं अने हरि कैंटी माने पूजे काष्ट पाषाण
चैतन्य पुरुष ने पाछल मूके अेवी अंधी जात अजाण ।[1]

गुजराती लोक समाज तथा साहित्य में भौजा भगत अपने चावखों के लिए प्रसिद्ध हैं । भोजा ने समाज सुधार की भावना से प्रेरित होकर काव्य रचना की । भोजा भगत के पद अखा की स्मृति ताजी करते हैं । " ये किसान थे और इन्होंने भोले आदमियों को फसाने वाले झूठे साधुओं के विरुद्ध पद लिखे । " छोटी - भक्तिमाल ", " सलैया आख्यान " उनकी रचनाएं हैं । संसार की क्षणभंगुरता का उपदेश देते हुए कवि का एक पद इस प्रकार है -

प्राणीया भजी लैने कीरतार आ तो स्वप्नुं छे संसार
धन दोलत ने माल खजाना पुत्र अने परिवार
अे माथी जाइश तुं अेकलो पछे खाशे जम ना मार रे ।[2]

१- सैलेक्शन फ्राम गुजराती लिट्रेचर , वालुम थर्ड, पृ० १६०
२- वही, पृ० २८१

निष्कर्ष रूप में कबीर पंथ का गुजरात में व्यापक प्रसार हुआ और वहाँ का साहित्य भी प्रभावित हुआ । इस प्रकार पश्चिम में स्थित गुजरात उत्तर भारत के सांस्कृतिक आंदोलनों से अछूता ही नहीं रहा बल्कि उसने उनसे प्रेरणा भी ली है ।

गुजरात का स्वामीनारायण सम्प्रदाय

अठारहवीं शताब्दी के समाप्त होते ही गुजरात में प्रचलित तथा प्रतिष्ठित वल्लभ संप्रदाय का प्रभाव क्षीण होने लगा । जनता अपने धर्म संप्रदाओं पर से आस्था हटाने लगी । सदियों से मानव हृदय में संचित भक्ति-भावना का स्थान अन्धविश्वास,घृणा,चोरी,और व्यभिचार ने ग्रहण कर लिया । प्रत्येक धार्मिक विश्वास,धार्मिक संगठनों और धर्म-संप्रदाओं पर से जनता की श्रद्धा हटने लगी । ऐसी स्थिति का चित्रण मुंशी कन्हैया लाल के शब्दों में इस प्रकार है[1]-
" मारे तेनी तलवार अने जीते तेनो देश तथा वरे तेनी नहीं पण हरे तेनी स्त्री " ।

समाज में स्त्रियों और अछूतों की स्थिति बड़ी ही दयनिय हो चुकी थी । स्त्रियां और अछूत धर्म-ग्रंथों के पठन-पाठन के योग्य नहीं समझे जाते थे । गुजरात के धार्मिक,सामाजिक जीवन की ऐसी उथल-पुथल का एक चित्र कवि ब्रह्मानंद के शब्दों में दर्शनिय है --

> कौऊक शीश जटा नख दीरघ, डोलत अंग बघंबर धारे
> केश लुचां अरु कान फटा कौउ घंट बजावत जंगम न्यारे
> कौऊक वीर के वादु कहावत कौऊक दादू ही दादू पुकारे
> न्यासी अरु बनवासी कहे अरु ऊदासी गुरुमुख गावे ।

गुजरात के ऐसे संक्रान्ति काल में जब वहां का जीवन ही व्यवस्थित नहीं था, स्वामीनारायण सम्प्रदाय की स्थापना हुई । सहजानंद स्वामी (१७८१-१८२० ई०) के प्रयत्नों से गुजरात के इस संप्रदाय ने उस समय की प्रचलित सभी सामाजिक,अनैतिक और धार्मिक कुरीतियों से डट कर मोर्चा लिया और उनके निराकरण के लिए

---

१. गुजराती साहित्य, खण्ड ४. पृ० २१०

प्रत्येक संभव कार्य किए । वास्तव में इस सम्प्रदाय के संस्थापक रामानुज संप्रदाय के (कबीर समकालीन नहीं) स्वामी रामानंद थे ।जिनका आविर्भाव १८वीं शताब्दी के मध्य हुआ था । इनके शिष्यों ने इन्हें उद्धव का अवतार भी माना है इसलिए इसे उद्धव "सम्प्रदाय" भी कहा जाता है ।

स्वामी रामानंद की मृत्यु के पश्चात इनके उत्तराधिकारी स्वामीनारायण हुए । स्वामीनारायण का जन्म वि०सं० १८३७ के चैत्र शुक्ल नवमी को अयोध्या के निकट छपिया ग्राम में हुआ था । इनका व्यक्तित्व बड़ा ही प्रभावोत्पादक तथा आकर्षित था । आपके नैतिक उपदेशों से प्रभावित होकर अनेकों चोर,डाकुओं ने अपने दूषित कर्मों का परित्याग कर दिया । राजाओं तक ने मदिरा पान करना छोड़ दिया । आप, ईश्वर की दृष्टि में सब समान हैं, जाति पांति,ऊंच नीच का भेद-भाव व्यक्ति द्वारा ही निर्मित है, इस मत का जीवन भर प्रचार करते रहे ।

अपने सम्पूर्ण जीवन काल में आप गुजरात के विभिन्न स्थानों की यात्रा करते हुए नैतिक,धार्मिक सुधारों का प्रचार करते रहे । अहिन्दू और अछूत आपसे अधिक प्रभावित हुए । इनके प्रवचनों का संकलन " वचनामृत " तथा " शिक्षा पत्री " में किया गया है । आपने अपने सम्प्रदाय के दो पीठ अहमदाबाद और बड़ताल में स्थापित किए । पश्चात इनकी प्रेरणा और प्रभाव से अनेकों कृष्ण मंदिरों की स्थापना गुजरात के विभिन्न स्थानों में हुई ।

स्वामी सहजानंद ने स्वामीनारायण के उपदेशों के आधार पर २११ श्लोकों की आचारधर्म की एक पुस्तक लिखी,जिसमें प्रारंभ में कृष्ण की वंदना की --

वामेयस्य स्थिता राधा श्रीश्च यस्यास्ति वक्षसि
वृंदावन विहारं त श्री कृष्णं हृदि चिन्तये ।

और अहिंसा पर भी अधिक बल दिया गया-

स्त्रियां धनस्य वा प्राप्त्यै साम्राजस्य च्वा क्वचित्
मनुष्यस्यतु कस्यापि हिंसा कार्या न सर्वथा ।

इस सम्प्रदाय के अनुयायियों को कंठ में तुलसी की माला और मस्तक पर चंदन धारण करना अनिवार्य है । नित्य कुछ नैमित्तक कार्यों के समाप्त करने पर श्रीकृष्ण अष्टाक्षर मंत्र का जाप करने के पश्चात ही व्यक्ति अपने दैनिक कार्यों को प्रारम्भ कर

सकता है । एकादशी का व्रत,कृष्ण जन्माष्टी,शिवरात्रि,का उत्सव और जीवन में एक बार द्वारका की यात्रा करना अनिवार्य है । इसमें पांच देवों की पूजा की प्रधानता होते हुए भी शिव की उपासना पर विशेष जोर दिया गया है -

एकात्ममेव विज्ञेयं नारायणा महेशयो

उभयोब्रह्म रूपेण वेदेषु प्रतिपादनात् ।

सम्प्रदाय द्वारा मान्य देवताओं को छोड़कर अन्य देवी-देवताओं की पूजा-उपासना करना निषेध है । सम्प्रदाय में वेद,व्याससूत्र,श्रीमद्भागवत,महाभारत में विष्णुसहस्र नाम, गीता,विदुर नीति,स्कंद पुराण, के विष्णु खंड में उल्लिखित श्री वासुदेव माहात्म्य तथा याज्ञवल्क्य स्मृति का विशेष माहात्म्य है । माता-पिता,गुरु और रोगी की सेवा करना अपना नैतिक कर्तव्य समझा जाता है ।

समाज में धार्मिक तथा सामाजिक सुधार के साथ ही इस सम्प्रदाय में कई महत्वपूर्ण कवि भी हुए जिन्होंने हिन्दी में रचनाएं कर हिन्दी साहित्य की श्रीवृद्धि की । इन कवियों में मुक्तानंद,ब्रह्मानंद,प्रेमानंद,निष्कुलानंद,भूमानंद,दयानंद, आदि प्रमुख हैं । ये सभी कवि संगीत के अच्छे ज्ञाता थे और इन्होंने नीति,वैराग्य,तथा कृष्ण भक्ति विषयक सरल मधुर पदों की रचनाएं कीं ।

अस्तु उपर्युक्त विवेचन के संदर्भ में यह स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है कि अत्यन्त प्राचीनकाल से व्रज और गुजरात अनेक माध्यमों से एक सूत्र में आबद्ध रहे हैं । निर्गुण-सगुण की देशव्यापी भक्ति-भावना व्रज और गुजरात को समान रूप से प्रभावित कर वहां के जन-मानस में एक से भावलोक की सर्जना करने में सहायक सिद्ध हुई है । मध्यदेश के सभी भक्ति-संप्रदायों की शाखाएं-प्रशाखाएं गुजरात में पहुंची जिनसे दोनों प्रदेश सांस्कृतिक स्तर पर एक दूसरे के निकट आये । मध्यदेश और गुजरात के साहित्यों में मिलने वाली समान प्रवृत्तियों का मूल स्वर वस्तुत: सांस्कृतिक है,जिसका एक रूप हस्तलिखित संग्रहों में सुरक्षित है । इसके अध्ययन से ऐसे अनेक महत्वपूर्ण तथ्यों का संधान किया जा सकता है जो मध्ययुगीन गुजराती और व्रजभाषा भक्ति-साहित्य के अध्ययन में उपादेय सिद्ध होंगे ।

-0-

प्रथम खंड

परिचय

अध्याय १

गुजराती हस्तलिखित पद-संग्रहों का विवरण

गुजराती हस्तलिखित पद संग्रहों से सामग्री संकलन हेतु लेखक को अनेक स्थानों का भ्रमण करना पड़ा । सार्वजनिक संग्रहालयों के अतिरिक्त अनेक हस्तलिखित पद संग्रह व्यक्तिगत संरक्षण में भी सुरक्षित हैं । इन सभी संग्रहों और संस्थाओं का परिचय अध्याय २ में दिया गया है । यहां पर इन संग्रहालयों से प्राप्त हस्तलिखित पद संग्रहों का विवरण मात्र ही प्रस्तुत किया जा रहा है ।

श्री मगनभाई देवशंकर का निजी संग्रह

इस संग्रह में वैसे तो गुजराती और हिन्दी की अनेकों प्रतियां हैं किन्तु प्रस्तुत अध्ययन से सम्बन्धित यहां केवल चार हस्तलिखित प्रतियां ही हैं जिनका विवरण इस प्रकार है -

ह०प्र०सं०	कवि नाम
१	परमानंददास,कल्यान,सूरदास,गोविंदस्वामी, कृष्णदास,नंददास,कबीर आदि कवियों के पद इस संग्रह में संकलित हैं ।
२	परमानंददास,कृष्णदास,सूरदास,गोविंदस्वामी, चतुर्भुजदास आदि कवियों के पद संग्रहित हैं ।
३	कबीर,नामदेव,हित हरिवंश,गदाधर भट्ट आदि कवियों के पद ।
४	गो० तुलसीदास,अग्रदास,दादू आदि कवियों के पद इस संग्रह में संकलित हैं ।

आचार्य निवास,का निजी संग्रह

राधावल्लभीय सम्प्रदाय के साहित्य की दृष्टि से यह संग्रह विशेष महत्व का

है । इस संग्रह की तीन हस्तलिखित प्रतियां विशेष उल्लेखनीय हैं जिनका प्रस्तुत अध्ययन में उपयोग किया गया है । इन तीनों प्रतियों का विवरण इस प्रकार है -

ह०प्र०सं०	कवि नाम
१	जनहरिया, परमानंददास, सूरदास, कबीर, कुंभनदास, छीतस्वामी, चतुर्भुजदास, कृष्णदास, तुलसीदास, आदि कवियों के पद इस संग्रह में संकलित हैं ।
२	तुलसीदास, परमानंददास, तथा सूरदास आदि कवियों के पद ।
३	कबीर, कुंभनदास, परमानंददास आदि कवियों के पद ।

गुजरात विद्या सभा,

इस सार्वजनिक संग्रहालय में गुजराती, संस्कृत, अरबी, फारसी, हिन्दी की हजारों प्रतियां सुरक्षित हैं । जिनमें से अनेकों प्रतिया विषय की दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं । इस संग्रहालय की निम्नलिखित हस्तलिखित प्रतियों का अध्ययन किया गया है । इनका विवरण इस प्रकार है :-

ह०प्र०सं०	कवि नाम
३३	सूरदास तथा अन्य कवियों के हिन्दी और गुजराती पद
११८ ११६ १२०	अष्टछाप के समस्त कवि तथा हरिराय, माणकचंद, गजाधर, आदि कवियों के धौल, धमार आदि ।

१२३	प्रीतम,कबीर आदि कवियों के पद ।
१२४	रैदास, मलूकदास,अखा आदि कवियों के पद।
१८३	परमानंददास,नंददास,आसकरन,हरिदास,आदि कवियों के पद ।
२८४	सूरदास तथा अन्य अष्टछाप के कवियों के पद ।
४७५	सूरदास,नरसिंह,परमानंददास आदि कवियों के पद ।
५७७	नरसिंह,मीरां,कबीर अखा आदि कवियों के पद ।
६१२	नरसिंह,धीरा,रैदास,ब्रह्मानंद,नंददास, आसकरन आदि कवियों के पद
६४५	कबीर के पद ।
६६१	कबीर,धर्मदास,नरसिंह,आदि कवियों के पद ।
६८३	सूरदास,कबीर,मीरां,तुलसी,नामदेव,मलूकदास, रामदास आदि कवियों के पद ।
७५४	कबीर और धीरा के पद ।
७७२	सूरदास,तुलसी,जनभगवान,अग्रदास,हित हरिवंश आदि कवियों के पद ।
८०१	अष्टछाप के कवि तथा विट्ठल रसिक,मैहा, कटहरिया, आदि के पद ।
८७९	मीरां , रामकृष्ण के पद ।
८९५	प्रीतम,धर्मदास,कबीर,जगन्नाथ के पद ।
९१८	रणछोड़,जीबनदास,गबरीबाई,नरसिंह, कबीर हरिदास आदि के पद ।
१०००	अष्टछाप के कवि ,तथा हित हरिवंश , मलूकदास,तुलसीदास,नामदेव, चंद्रसखी,अखा, रणछोड़,भालण,आदि कवियों के पद ।

१०३६	मेहा, रसिक, व्यास, श्री विट्ठल, तथा अष्टछाप के कवियों के पद ।
१०३८	कबीर के पद ।
१०५७	सूरदास तथा अन्य कवियों के पद ।
१०६१	छीतस्वामी, हरिराय, कृष्णादास, चंदसखी, आदि कवियों के पद ।
१०६७	परमानंददास तथा अन्य कवियों के पद ।
११६०	सूरदास, कबीर, तथा नंददास के पद ।
११६४	मीरां के पद ।
११६७	श्री भट्ट, परमानंददास के पद ।
११६८	अष्टछाप के कवियों के पद ।
१२४८	हित हरिवंश, चतुर्भुजदास, कृष्णादास के पद ।
१२६४	परमानंददास आदि कवियों के पद ।
१३२०	सूरदास, परमानंददास, रैदास, मीरां आदि के पद ।
१३२५	कबीर, रामसेवक, प्रागदास, आदि के पद ।
१३२६	सूरदास, गोविंदस्वामी, कृष्णादास, कबीर के पद ।
१३७७	कबीर के पद ।
१४७०	कृष्णादास के पद ।
१५०३	हरिजीवन, तुलसीदास, रसिकैण, आदि के पद ।
१५०७	गोविंदस्वामी, सूरदास, मीरां, आदि के पद ।
१५३२	माधौदास, हरीदास, तथा अन्य कवियों के पद ।
१५५१	सूरदास, मीरां, आदि के पद ।
१५६१	जनभगवान, सूरदास, आदि कवियों के पद ।
१६७६	छीतस्वामी, मेहा, माणकचंद, आदि के पद ।
१७४८	हरिदास, मीरां आदि के पद ।
१७५६	मीरां के पद ।
१७५८	कबीर, अग्रदास, दादू, रामदास के पद ।

१७५६	मीरां के पद ।
१७७६	कृष्णादास,चतुर्भुजदास, आदि कवियों के पद ।
२३६७	नामदेव,सूरदास, परमानंददास के पद ।
२४६३	श्रीभट्ट , परमानंददास,हरिदास के पद ।
२४६७	मीरां के पद ।
२५०६	नंददास,चंदसखी आदि कवियों के पद ।
२५४७	तुलसी, मीरां,कुंभनदास के पद ।
२५५०	मीरां, कबीर, रैदास के पद ।
२५५१	हरिदास, दासी, के पद ।
२५५६	सूरदास, चंदसखी, कुंभनदास आदि कवियों के पद ।
२५६०	मीरां, तुलसीदास के पद ।
२६१२	मीरां तथा अन्य कवियों के पद ।
२७०२	कृष्णादास,रामदास, रैदास आदि कवियों के पद ।
२७०३	कृष्णादास, कान्ह, आसकरन आदि कवियों के पद ।

श्री डाही लक्ष्मी लायब्रेरी

इस पुस्तकालय की निम्नलिखित हस्तलिखित प्रतियों का अध्ययन किया गया है । इनका विवरण इस प्रकार है --

बंध सं०	प्रति सं०		
२	- २	षोडश चिन्ह	: वल्लभदास
		सुदामाख्यान	: वल्लभदास
		,,	: नारायण दामोदर
		चिंतामणि	: रविदास
		पद	: रघुनाथ,नरसिंह,हरिदास, सुंदरदास,वल्लभ,हरिराय, चतुर्भुजदास आदि कवियों के पद।

बंध सं०	-	प्रति सं०	
३	-	२	पद : कबीर, अग्रदास, सूरदास, मीरां, नरसिंह मेहता, आदि के पद । नरसिंह मेहता नींपुत्र नो विवाह हारमाला, अध्याय गीता, श्री चिन्ह आदि रचनायें हैं ।
६	-	१५	पद : कुंभनदास, परमानंददास, गोविंदस्वामी, चतुर्भुजदास, तथा गरबी ।
६	-	२५	पद : सूरदास, रणछोड़, मीराबाई, कबीर, नरसिंह मेहता ।
७	-	२	पद : देवीदास, हरिदास, रामदास, माघोदास ।
७	-	५	पद : नंददास, परमानंददास, चतुर्भुजदास, ब्रह्मानंद, नाग संवाद, सुर पचीसी, घौल आदि अन्य रचनाएं ।
६	-	८	नरसिंह मेहता ना पुत्र नो विवाह, सरस गीता, चैत्रादि बारमास तथा पद : नरसिंह, रामकृष्ण, कृष्णदास, परमानंददास, हरिराय, तथा अन्य पुष्टिमार्गी कवियों के पद ।
१०	-	३	सप्तश्लोकी भागवत, मात नो गरबो, अष्टउपाधि पद: प्रीतम, निष्कुलानंद, सूरदास, माधवदास, कबीर के पद ।
१०	-	७	तुलसी विवाह : गिरधर बिवाह खेल : वल्लभराय राम विवाह : इच्छाराम हनुमान गरुड संवाद: दयाराम

बंध सं० - प्रति सं०		
	पद :	मीरां,सूरदास,नंददास,तुलसीदास
१२ - ६	पद :	नरसिंह, जगजीवन, कबीर, कृष्णदास
१२ - १०	पद :	,, ,,
३० - २३	पद :	सूरदास , राजाराम, मीरां,कबीर,कृष्णदास, तथा तानसेन ।

प्राच्य विद्या मंदिर

प्रस्तुत अध्ययन से सम्बन्धित इस संग्रहालय की केवल दो प्रतियां ही हैं ; जिनका विवरण इस प्रकार है -

ह०प्र०सं०	कवि नाम
८७६	परमानंददास,गोविंदस्वामी,नंददास आदि कवियों के पद ।
७५१२	पुष्टिमार्गीय कवियों के पद ।

श्री फार्बस गुजराती सभा

इस संग्रहालय में हिन्दी,फारसी,गुजराती की लगभग बारह हजार हस्तलिखित प्रतियां हैं। इनमें से कुछ प्रतियां विषय की दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं। इस संग्रहालय की निम्नलिखित हस्तलिखित प्रतियों का उपयोग प्रस्तुत अध्ययन में किया गया है -

ह०प्र०सं०	कवि नाम
६६	भाणदास,पुरुषोतम,नरसिंह,विष्णुदास, वैष्णवनाथ,रामदास, माधवदास,वल्लभदास आदि कवियों के पद ।

७१	विवेक वण्सारो तथा कूटक पद
	पद : प्रेमानंद,कबीर,मीरां,नरसिंह,दयाराम
८२	स्वर्गारोहण पर्व : सूर भट्ट ,रचनाकाल १७०४ वि०
	लेखनसमय १८२४ वि०
	पांडवविष्टि : माउ, रचना साल १६७६ वि०,
	लेखन समय १८२५ वि०
	कामावती का आख्यान : शिवदास
	पद : तुलसीदास, मीरां, नरसिंह,प्रेमानंद,सूरदास
	सूर्य नो छंद
१११	शिव भीलडी संवाद : भालण, लेखन समय १७५८
	सुदामा चरित : प्रेमानंद ,, ,,
	पद : कबीर, सूरदास, नरसिंह, भीम, केशव ।
१३४	नलाख्यान : प्रेमानंद , लेखन समय १८०५ वि०
	मोटुं अभिमन्युआख्यान
	सुदामा चरित्र
	पद : नरसिंह मेहता, कुंभनदास, सुंदरदास,गदाधर ,
	हरिराय, नंददास, रूपलाल, किशोरीलाल,स्याम सखी ।
१३६	श्री वल्लभाचार्य जी नां पद : केसोदास,रसिक,हरिदास,
	वल्लभ ।
	चौरासी वैष्णवों नां नाम ठाम नुं पद : दयाराम
	घोल : माधवदास, दास नो दास
	मुस्लिम एवं प्रणामी साहित्य ।
१५५	पद : पुरुषोत्तम,आत्माराम,रामदास,मीरां,
	नरसिंह , रामकृष्ण,परमानंददास ।

१७५ संत ना लक्षण : नरहरि
राम रमैणी : कबीर
कबीर रैदास संवाद , बिनति
गोपी संवाद (वेदान्त) : नरहरि
आनंद रस : नरहरि
पीपा जी नी चिंतामणि
मोहनदास जी की लीला , रामगुणानुवाद
पद : नरसिंह , मीरां , तुलसीदास ।

१९६ पद : मीरां ।

२०६ रास : रामभक्त
सत्यवाद नी वार्ता : शामल
शुकदेव आख्यान : गंग १७२८ वि०
पद संग्रह कवित्त : मीरां, रणछोड़, रामकृष्ण , मानपुरी हरिदास ।

२१० पद संग्रह : नरसिंह , हरिदास, भगवानदास, गोपाल, रामकृष्ण, चतुर्भुजदास , सूरदास,रसिक , परमानंददास, कृष्णदास ।

२२२ तुलसी माहात्म्य : हरिदास
रामरक्षा
पद : रामदास , कृष्णदास , छीतस्वामी , गोविंदस्वामी ।

२२३ पद : भगवानदास ।

२२५ कविता : कवि मंगल
रामदेव ना वंश नी कथा
पद : गिरधर , सुंदर, दीनदरवैश, गंग ।

२४६	पद : वशराम , गोहिल , कबीर, नरसिंह, सूरदास, परमानंददास, नंददास जूनी कविताओं नो संग्रह : नरसिंह
३१८	प्रकीर्ण गरबी : रामकृष्ण तिथि पद : रघुनाथ, जेठो , मीरां रसगीता : भीम ।
३२१	पद : नरसिंह , मानदास , मीरां ।
३७०	नलाख्यान : वासणसुत भीम १८३५ वि० चन्द्रहासाख्यान : भोजो बाल चरित : माहावदास बार महिमा : जीवो पद : कबीर, नरसिंह, चंदसखी,नंददास आदि।
५९७	प्रकीर्ण पद और भजन : कबीर,नरसिंह,मीरां , गोपालदास,रणछोड़ आदि ।
५४१	पद : नरसिंह मेहता , मीरां , सूरदास ।

हिन्दी साहित्य सम्मेलन

वैसे तो इस संग्रह में हिन्दी,प्राकृत,अपभ्रंश,संस्कृत,गुजराती,मराठी,गुरुमुखी की लगभग आठ-दस हजार हस्तलिखित प्रतियां हैं किन्तु प्रस्तुत अध्ययन से सम्बन्धित केवल एक ही प्रति ही है जिसका विवरण इस प्रकार है -

हस्तलिखित प्रति सं० ३२६६ वेष्ठन सं० १६६१
सांवलदास नो बीवा : सांवलदास
पद : परमानंददास , सूरदास , छीतस्वामी आदि ।

अध्याय २

मुख्य ग्रन्थ प्राप्ति स्थानों का परिचय

जिन संग्रहों और संस्थाओं में सुरक्षित गुजराती हस्तलिखित पद संग्रहों से हिन्दी पदकारों के पदों का संकलन किया गया है उनका परिचय इस प्रकार है -

१- व्यक्तिगत संग्रह

क- मगनभाई देवशंकर का निजी संग्रह, बड़ौदा

ख- आचार्य निवास का निजी संग्रह , अहमदाबाद

२- सार्वजनिक संग्रह

क- गुजरात विद्या सभा, अहमदाबाद

ख- डाही लक्ष्मी लायब्रेरी, नडियाद

ग- प्राच्य विद्या मंदिर , बड़ौदा

घ- श्री फार्बस गुजराती सभा, बम्बई

ङ- हिन्दी साहित्य सम्मेलन , प्रयाग

श्री मगनभाई देवशंकर का निजी संग्रह

बड़ौदा के श्री मगनभाई देवशंकर व्यवसायी होते हुये भी साहित्य के प्रेमी हैं। उनके निजी संग्रह में गुजराती का प्राचीन साहित्य मुद्रित पुस्तकों और हस्तलिखित प्रतियों के रूप में सुरक्षित है। इस संग्रह में गुजराती और हिन्दी की अनेकों प्रतियां हैं । श्री मगनभाई साहित्य प्रेमी होने के साथ ही उदार हृदय के भी हैं। उनकी उदारता के फलस्वरूप ही लेखक इस संग्रह की विभिन्न हस्तलिखित प्रतियों का अध्ययन कर सका। प्रस्तुत अध्ययन से सम्बन्धित इस संग्रह में केवल तीन ही प्रतियां मिली, जिनका समुचित उपयोग किया गया है।

आचार्य निवास का निजी संग्रह , अहमदाबाद

राधावल्लभीय सम्प्रदाय के आचार्य श्री नवनीत गोस्वामी के यहां राधावल्लभीय

सम्प्रदाय का महत्वपूर्ण साहित्य है । यह साहित्य प्राचीन हस्तलिखित प्रतियों के रूप में सुरक्षित है । राधावल्लभीय तथा अन्य सम्प्रदायों का दुर्लभ एवं अप्रकाशित साहित्य यहाँ पर है । इन हस्तलिखित प्रतियों में प्राप्त साहित्य के प्रकाशन की एक योजना आचार्य जी के सम्मुख है जिसे वे शीघ्र ही प्रारम्भ करने वाले हैं । इस प्रकार हस्तलिखित प्रतियों में सुरक्षित साहित्य के प्रकाशित हो जाने पर हिन्दी का बहुत सा अज्ञात साहित्य प्रकाश में आ जायेगा । आचार्य जी की सहज उदारता के कारण लेखक को इस संग्रह की विभिन्न हस्तलिखित प्रतियों को देखने और अध्ययन करने का अवसर प्राप्त हुआ । इस संग्रह में प्रस्तुत अध्ययन से सम्बन्धित तीन हस्तलिखित प्रतियां मिलीं जिनका समुचित उपयोग किया गया है ।

गुजरात विद्या सभा, अहमदाबाद

स्व० जे०के०फार्ब्स द्वारा दिनांक २६-१२-१८४८ई० को गुजरात विद्या सभा , की स्थापना अहमदाबाद में हुई । इसकी स्थापना का मुख्य उद्देश्य गुजराती भाषा-साहित्य की श्रीवृद्धि करना था । सभा अपने उद्देश्य में पूर्ण रूप से सफल रही है । सभा ने अपने विगत वर्षों में गुजराती साहित्य और प्राचीन भारतीय संस्कृति के विकास के लिये अनेक महत्वपूर्ण कार्य किये हैं । इसी उद्देश्य की प्राप्ति के लिये सभा ने अनेक संस्थाओं को भी जन्म दिया, जिनका उत्तरोत्तर विकास होता रहा है ।

सभा का एक प्रमुख कार्य साहित्य,भाषा और प्राचीन भारतीय संस्कृति पर लिखी हुई पुस्तकों को प्रकाशित करना भी है । इसी के साथ वह " बुद्धिप्रकाश " नामक गुजराती मासिक पत्रिका को भी प्रकाशित करती है ,जिसके द्वारा आधुनिक और प्राचीन गुजराती साहित्य का सम्यक् परिचय मिलता है । सभा का अपना एक पुस्तकालय भी है जिसमें गुजराती,हिन्दी,अंग्रेजी,संस्कृत,मराठी,बंगाली, की लगभग ४५,११५ पुस्तकें हैं ।

पुस्तकालय के साथ ही सभा का महत्वपूर्ण विभाग हस्तलिखित प्रतियों का है । इस विभाग में संस्कृत,गुजराती,ऊर्दू,हिन्दी की लगभग ६०२८ हस्तलिखित प्रतियां

हैं। इन हस्तलिखित प्रतियों में से लगभग साठ प्रतियों का अध्ययन किया गया है। इन प्रतियों में से अनेकों प्रतियां विषय की दृष्टि से पर्याप्त महत्वपूर्ण हैं जिनमें हिन्दी का अप्रकाशित साहित्य सुरक्षित है ।

डाही लक्ष्मी लायब्रेरी , नड़ियाद

इस सार्वजनिक पुस्तकालय की स्थापना दिनांक २५ अप्रैल १८६८ ई० को श्री मनसुखराम की धर्मपत्नी डाहीलक्ष्मी की पुण्य स्मृति में हुई। धीरे-धीरे इसका विकास होता गया और आज यह एक प्रमुख पुस्तकालय के रूप में माना जाता है । वर्तमान समय में यहां गुजराती, हिन्दी की पुस्तकों का अच्छा संग्रह है। पुस्तकों के साथ ही इसका महत्वपूर्ण विभाग हस्तलिखित प्रतियों का है। जिनका समय-समय पर संग्रह किया जाता रहा है। इन हस्तलिखित प्रतियों में गुजराती और हिन्दी की प्रतियां अच्छी संख्या में हैं। इस संग्रह की लगभग बारह प्रतियों का उपयोग प्रस्तुत अध्ययन में किया गया है।

प्राच्य विद्या मंदिर, बड़ौदा

बड़ौदा ने १८६३ ई० से ओरियंटल रिसर्च में रुचि लेना प्रारम्भ किया। उस समय के बड़ौदा राज्य के दीवान श्री मनीभाई जशभाई ने इस कार्य के लिये श्री मनूभाई नभूभाई द्विवेदी को नियुक्त किया।

श्रीमंत सम्पतराव गायेकवाड़ की विट्ठल मंदिर लायब्रेरी जिसमें ६३० पुस्तकें तथा बड़ौदा के श्री याजनेश्वर भट्ट का व्यक्तिगत पुस्तकालय जिसमें ६७ छपी पुस्तकें तथा ४४६ हस्तलिखित ग्रंथ थे , दोनों का मिलाकर एक संस्कृत सेक्शन की स्थापना बड़ौदा के सेन्ट्रल लायब्रेरी में की गई। इसके पश्चात लगभग १०,००० हस्तलिखित ग्रंथ देश के विभिन्न भागों से श्री अनन्त कृष्ण शास्त्री द्वारा एकत्रित किये गये।

इस दृष्टि से कि प्राचीन हस्तलिखित ग्रंथों में सुरक्षित महत्वपूर्ण ग्रंथों को प्रकाशित किया जाये, गायेकवाड़ ओरियंटल सिरीज़ १६१५ ई० में श्री सिमनलाल दलाल

के संपादकत्व में प्रारम्भ की गई ।

सैन्ट्रल लायब्रेरी के संस्कृत विभाग को १६२३ई० में स्टेट रिकार्ड आफिस के नवीन भवन में लाया गया । चार वर्षों के पश्चात १६२७ ई० में यह सैन्ट्रल लायब्रेरी से अलग कर के औरियंटल इंस्टीट्यूट के रूप में इसकी स्थापना हुई । १६३१ई० में अनुवाद विभाग को भी इसी से सम्बद्ध कर दिया गया । धीरे-धीरे अनुवाद विभाग इंस्टीट्यूट का प्रमुख विभाग बन गया, जिसने ३०० से भी अधिक प्रकाशन विभिन्न सिरीज़ में किये ।

१६४६ ई० में महाराजा सियाजीराव विश्वविद्यालय की स्थापना होने पर यह, विश्वविद्यालय के अधिकार में कर दिया गया ।

संस्कृत विभाग के प्रो० जी०एच०भट्ट १६५१ ई० में इसके डायरेक्टर बनाये गये । उन्होंने त्रैमासिक " जरनल आफ् दी औरियंटल इंस्टीट्यूट " नामक पत्रिका का प्रकाशन प्रारम्भ किया । अभी " स्वाध्याय " नामक गुजराती पत्रिका का भी प्रकाशन वर्तमान डायरेक्टर डा० सांडेसरा के सम्पादकत्व में प्रारम्भ किया गया है ।

इस का महत्वपूर्ण विभाग हस्तलिखित ग्रंथों का है जिसमें २२,००० हस्तलिखित ग्रंथ हैं । यह ग्रंथ देवनागरी, कन्नड़, सिंहली, वर्मी, तैलगू, मलयालम, बंगाली, मैथिली आदि भाषाओं के हैं जो कागज, ताडपत्र, तथा कपड़े पर लिखे हुये हैं । इसमें संस्कृत और प्राकृत के ग्रंथ संख्या में अधिक हैं किन्तु इसके साथ ही गुजराती, मराठी, हिन्दी, पंजाबी, आदि अन्य भाषाओं के भी ग्रंथ अच्छी संख्या में हैं ।

इस प्रकार यह संस्थान अपनी महत्वपूर्ण सामग्री के कारण भारत के प्रमुख संस्थानों में गिना जाता है ।

श्री फार्बस गुजराती सभा, बम्बई

इसकी स्थापना २५ मार्च १८६५ को श्री गुजराती सभा के नाम से हुई । इस संस्था के संस्थापक मि० जस्टिस अलैक्जन्डर फौन्लौक फार्बस थे । अक्टूबर १८६५ में उनका स्वर्गवास हो जाने पर इस संस्था का नाम श्री फार्बस गुजराती सभा रक्खा गया ।

गुजराती में लिखे हुए प्राचीन हस्तलिखित ग्रंथों का संग्रह करना, संशोधन और संपादन करवा कर प्रकाशित करना इसका मुख्य उद्देश्य है। इसके साथ ही संस्कृत, अंग्रेजी, प्राकृत, फारसी तथा अन्य प्रमुख भाषाओं के ग्रंथों का गुजराती में अनुवाद करवाना तथा गुजराती में स्वतन्त्र विषयों पर लिखे गये ग्रंथों को प्रकाशित करना भी इसका प्रमुख कार्य है। अभी तक सभा के सारे प्रकाशनों की संख्या ६६ हैं। इस संस्था के पास हिन्दी, गुजराती, ऊर्दू की लगभग ११०० हस्तलिखित प्रतियां हैं। इनमें से कुल ५८५ प्रतियों का विवरण छप चुका है। शेष प्रकाशित होने वाला है। ३० वर्षों से एक त्रैमासिक शोध पत्रिका भी प्रकाशित हो रही है।

इस प्रकार सभा अपने महत्वपूर्ण हस्तलिखित ग्रंथों और विभिन्न उपयोगी प्रकाशनों के कारण गुजरात की एक प्रमुख संस्था के रूप में विख्यात है।

हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग

हिन्दी साहित्य सम्मेलन राष्ट्रीय महत्व का एक सार्वजनिक प्रतिष्ठान है। केन्द्रीय शिक्षा मंत्रालय द्वारा गठित १५ सदस्यों के प्रथम शासन निकाय द्वारा उसका संचालन हो रहा है। हिन्दी के प्रसिद्ध साहित्यकार एवं विद्वान सेठ गोविंद दास उसके वर्तमान अध्यक्ष हैं। इस प्रतिष्ठान की स्थापना अक्टूबर १९१० ई० में हुई थी। अपने जीवन के लगभग ५४-५५ वर्षों में सम्मेलन ने हिन्दी के प्रचार और प्रसार में जो योगदान किया है उससे समस्त हिन्दी जगत सुपरिचित है। महामना मालवीय और राजर्षि पुरुषोत्तम दास टण्डन उसके निर्माणक थे।

सम्मेलन के विभिन्न कार्य कलापों एवं स्थायी महत्व के रचनात्मक कार्यों में उसके कलात्मक संग्रहालय भवन का नाम उल्लेखनीय है। राष्ट्रपिता गांधी जी के द्वारा ५ अप्रैल १९३६ ई० को इस भव्य भवन का उद्घाटन संपन्न हुआ। इस संग्रहालय में एक लक्ष से अधिक ज्ञान सामग्री एकत्रित हो चुकी है। उसकी इस सामग्री में लगभग ५० मुद्रित पुस्तकें, दैनिक साप्ताहिक, हिन्दी के पत्र तथा मासिक पत्र, पत्रिकाओं की सहस्रों फाइलों, स्व० मेजर बामनदास बसु का भेंटस्वरूप प्राप्त चार सहस्र पुस्तकों का महत्वपूर्ण संग्रह और जीवित साहित्याकारों के वृहदाकार चित्रों का नाम मुख्य है। इसके अतिरिक्त "राजर्षि टण्डन कक्ष", "रणवीर कक्ष", और सूरज सुभद्रा कक्ष"

में संग्रहीत एवं सुसज्जित लगभग साढ़े सात सहस्त्र हस्तलिखित ग्रंथ और ऐतिहासिक महत्व की विविध संस्मारक सामग्री का विशेष महत्व है । संग्रहालयों में उक्त तीनों दर्शनीय कक्षों में विभिन्न सामग्री सुसज्जित एवं व्यवस्थित है । ग्वालियर निवासी श्री सूरजराज धारीवाल ने १९६३ई० में सम्मेलन को हस्तलिखित ग्रंथों का वृहत्त संग्रह भेंट स्वरूप प्रदान किया । इस संग्रह में लगभग २००० सहस्त्र हस्तलिखित ग्रंथ हैं जो प्राकृत,अपभ्रंश, और हिन्दी आदि अनेक भाषाओं के हैं ।

इस प्रकार सम्मेलन अपनी दुर्लभ एवं महत्वपूर्ण सामग्री के कारण भारत के प्रमुख संस्थाओं में अपना एक विशिष्ट स्थान रखता है ।

द्वितीय खंड

प्राप्त पदों का वर्गीकरण

अध्याय ३

वर्ण्य वस्तु का अध्ययन

आलोच्य पद साहित्य विषय की दृष्टि से विविध रूप संपन्न हैं । सगुण और निर्गुण दोनों ही भक्ति धाराओं से संबंधित पद मध्यदेश से गुजरात पहुंचे, किन्तु निर्गुण की अपेक्षा सगुण भक्ति का पद काव्य गुजरात में अधिक लोकप्रिय हुआ । राम और कृष्ण की लीलाओं ने गुजरात के लोकमानस को भक्ति-भावना से अनुप्राणित किया । अतएव कालक्रम की दृष्टि से परवर्ती होने पर भी सगुण-भक्ति-मूलक पद-काव्य को प्राथमिकता देते हुए उसका व्यापक विश्लेषण किया गया है । इन पदों में हिन्दी-भक्ति-काव्य के ही विषय प्रमुख रहे हैं । सामान्य रूप से आलोच्य पदों की वर्ण्य-वस्तु को दृष्टि में रखते हुए उनको निम्नप्रकार से वर्गीकृत किया जा सकता है :

क - सगुण-भक्ति-मूलक पद

१- कृष्ण चरित विषयक पद
२- राम चरित विषयक पद
३- वल्लभाचार्य एवं उनके वंश से संबंधित पद
४- माहात्म्य वर्णन संबंधित पद
५- विनय (कृष्ण और राम के प्रति)
६- पर्व और उत्सव
७- विविध

ख - निर्गुण-भक्ति-मूलक पद

१- चेतावनी
२- भक्ति तथा गुरु महिमा
३- विविध

उपर्युक्त शीर्षकों पर दृष्टिपात करने से ज्ञात होता है कि निर्गुण की अपेक्षा सगुण-पद-काव्य अधिक लोकप्रिय हुआ । परिणामत: उसमें अधिक विषयों का समावेश मिलता है । निर्गुण-भक्ति-परक पदों में भक्ति का सामान्य उद्बोधन ही प्रधान रहा है । आगे आलोच्य पदों में अभिव्यक्ति वर्ण्य-वस्तु का उपर्युक्त क्रमानुसार अध्ययन प्रस्तुत किया जा रहा है :

सगुण-भक्ति-मूलक पद

कृष्ण चरित - इन पदों में कृष्ण लीला के स्फुट प्रसंग ही वर्णित हुए हैं, कृष्ण-चरित की क्रमबद्ध अभिव्यक्ति नहीं मिलती जो पद-काव्य की मुक्तक प्रकृति के पूर्ण अनुरूप है।

कृष्ण-जन्म - अष्टछाप के भक्त कवियों द्वारा रचित कृष्ण-जन्म तथा बधाई के पद यथेष्ट मात्रा में प्राप्त होते हैं। चतुर्भुजदास ने कृष्ण-जन्म का समय वदि भादों, अर्ध-रात्रि, दिन बुधवार[1] और श्री विट्ठल गिरिधरन ने 'भादों कृष्ण पक्ष आठें'[2] का उल्लेख किया है। अधिकांश बधाई तथा जन्मोत्सव के पदों की विषय-वस्तु लगभग समान ही है। कृष्ण-जन्म का समाचार सुनते ही समस्त ब्रज में आनन्द छा जाता है। सभी ग्वाल-बाल विभिन्न प्रकार के आभूषण और वस्त्रादि पहन कर नृत्य तथा मंगल गान करते हुए नंद और यशोदा को बधाई देने जाते हैं[3]। घर-घर मंगल कलश, तोरण सजाये जाते हैं। मोतियों से चौक पूर कर विभिन्न प्रकार के मंगल गीतों का गान करते हैं, जिनमें यशोदा के भाग्य की सराहना की जाती है। इस मंगलमय अवसर पर वेद-पाठ भी होता है और नंद प्रसन्नचित होकर सभी को विभिन्न प्रकार की बहुमूल्य भेंट उपहार में देते हैं।[4]

विषय की दृष्टि से चैतन्य मत के कवि गदाधर का एक पद पर्याप्त महत्वपूर्ण है, जिसमें कृष्ण-जन्मोत्सव का वर्णन वर्षा रितु के आगमन के रूपक के रूप में हुआ है।

कंस के कारागृह में कृष्ण-जन्म के समय की परिस्थिति का चित्रण करते हुए कवि गोविन्द दास ने कृष्ण के प्रकट होने के पश्चात उन्हें चतुर्भुज रूप में चित्रित किया

१- वदि भादों आगे जु गयो हो अर्धरात्र बुधवार ।। ह०प्र०सं० ६-१५ डा० ।।
२- भादों कृष्ण पक्ष शुभ आठें, जन्म लीयो हरराई।। ह०प्र०सं० ८०१ गु० ।।
३- ब्रजजन आये नंद बधायें जहाँ नंद दातार ।। कृष्णदास, ह०प्र०सं० ७-२डा०।।
४- दान दिये बहु नंदराय जु सब के दरिद्र टरें।। कृष्णदास, ह०प्र०सं० १२-६ डा० ।।
५- आज कहूं ते या गोकुल में, अद्भुत बरखा आई हो ।। ह०प्र०सं० ८०१ गु०।।

है। देवकी स्वंय इस रूप के दर्शन के लिए नंद से आग्रह करती हैं।[1] एक पद में कृष्ण को गोकुल ले जाते हुए यमुना स्वयं मार्ग देती हैं,जबकि एक दूसरे पद में कृष्ण के हुंकारने पर यमुना मार्ग देती हैं। इस पद में भाव की दृष्टि से एक बात विशेष उल्लेखनीय है कि वसुदेव कृष्ण का इस प्रकार का प्रभाव देखकर बहुत प्रभावित होते हैं और उन्हें विश्वास होता है कि निश्चय ही यह बालक ईश्वर का अवतार है।

कृष्ण के संस्कार

आलोच्य पदों में कृष्ण के प्रायः ब्रजप्रदेश में प्रचलित संस्कार ही वर्णित हुए हैं। उनमें से निम्नलिखित प्रमुख हैं -

नामकरण- कृष्ण के नामकरण संस्कार से संबंधित कवि कटहरिया का एक पद प्राप्त हुआ है,जिसमें कृष्ण के नामकरण संस्कार का बड़ा ही रोचक वर्णन मिलता है। गर्ग मुनि कृष्ण का नामकरण करते हैं और गोप-ग्वाल आनन्द मनाते हैं।[2]

छठी - ह०प्र० सं० १५८१गु में छठी से संबंधित कुछ पद प्राप्त हुए हैं। छठी के दिन स्वंय विधाता आकर कृष्ण का भाग्य लिखते हैं और वेद-मंत्रों का उच्चारण करते हैं।[3] समस्त गोपियां आनंदित होकर मंगलमय गीतों का गान करती हैं।

वर्ष-गांठ - जब कृष्ण एक वर्ष के हो जाते हैं,तब उनकी वर्षगांठ सारे ब्रज-मण्डल में बड़े ही आनन्द के साथ मनाई जाती है।[4] कृष्ण के द्वारा बड़े देव की पूजा कराई जाती है। समस्त गोपियां वधाई के गीत गाती हैं और यशोदा के भाग्य की सराहना करती हैं। इस शुभ अवसर पर यशोदा की गोद मेवों से भरी जाती है। किसी की नज़र न लगे, इसलिए कृष्ण का राई-लौन उतारा जाता है, और फिर उन्हें वहां उपस्थित गोपों तथा गोपियों की गोदियों में बैठाया जाता है।

१- 'हरि मुख देखियो वसुदेव' ।। सूरदास : ह०प्र०सं० ८०१ गु० ।।

२- 'नामकरन जब कियो गर्गमुनि नंद देत बहु दानें'।। [illegible] : ह०प्र०सं० ८०१गु०।।

३- 'छठी मंगल आज लाल की' ।। कृष्णदास ।।

४- वरषगांठि गिरिधरन लाल की,गोपन न्यौत बुलाय जु ।। व्रजपति : ह०प्र०सं०८०१गु०।।

बाल-लीला

कृष्ण का प्रात: जागरण - इस विषय से संबंधित प्राप्त पदों की विषय-वस्तु लगभग एक समान ही है। प्रात:काल होने पर कृष्ण को यशोदा जगातीं हैं तथा कृष्ण के अन्य सखाओं के आने की सूचना उन्हें देती हैं। एक अन्य पद में नंदराय स्वंय कृष्ण-बलराम का नाम ले लेकर उन्हें जगाते हैं। इस विषय के आलोच्य पदों की एक विशेषता है कि जहां कवि कृष्ण को जगाना चाहता है,वहीं उसने ब्रज-प्रकृति का भी सुन्दर और मनोहारी चित्रण किया है।[१]

पालना- यशोदा कृष्ण को पालने में झुलाती हैं। कृष्ण के पालने में झूलने के दृश्य का अवलोकन करने के लिए समस्त देवता-गण भी आकाश में अपने-अपने विमानों पें बैठे हैं। भाव की दृष्टि से कवि परमानंद का एक पद महत्वपूर्ण है जिसमें कृष्ण पालने में झूल रहे हैं। झूलते-झूलते जब कृष्ण अपने पैर के बाम अंगूठ को चूसने लगते हैं तब उसमें अपना प्रतिविंब देख-देख कर बहुत ही हर्षित होते हैं,और मुसकराने लगते हैं।[२] एक अन्य पद में यशोदा बढ़ई से एक सुन्दर पालना बना लाने के लिए कहती हैं।[३]

कलेऊ- यशोदा कृष्ण और बलराम को कलेऊ कराती हैं। कलेऊ में माखन,मिश्री,दूध आदि नाना प्रकार के खाद्य पदार्थ हैं। यशोदा आग्रह करती हैं कि," हे कृष्ण,तुम यह धौरी गाय का उटा हुआ दूध है,पीलो। सात घूंट पीकर देखो,इससे तुम्हारी चोटी बढ़ जायेगी।[४] यह भाव मूलत: सूर का है जिससे प्रस्तुत कवि प्रभावित लगता है। एक अन्य ह० प्र० में कृष्णादास और परमानंददास के दो पद प्राप्त होते हैं जिसमें कृष्ण कलेऊ करने के उपरांत होली खेलने का विचार करते हैं।[५]

१-जागिये व्रजराज कुंवर कमल कोश फूले,कुमुदिनी जिय सकुचि रही भ्रंगलता फूले।
तमचर खग रोर करत बोलत बनराई ,रांभत गऊ मधुर नाद वच्छन हित धाई ।।
।।सूरदास : ह०प्र०सं०१११फ१०।

२-अंगुठा गहि कमल-पानि मेलत मुख मांही।।परमानंददास : ह०प्र०सं० ६१२गु०।।

३-पालनो अति परम सुंदर घड़ लाव रे वीर वढ़ैया ।। जनहरिया : ह०प्र०सं० १ आ० ।।

४- बेनी बढ़े सुनो मनमोहन मेरो कह्यो जु पतीजो ।। गोविंददास : ह०प्र०सं०८७६गु० ।।

५- कियो विचार फाग खेलन को परमानंद प्रभु नयन विसाल ।।
करहिं बात फाग खेलन की कृष्णादास मनमोहन लाल ।। ह०प्र० सं०२७०३गु०।।

जेवुन (भोग)- पदों में कृष्ण और बलराम का एक साथ भोजन करने का वर्णन मिलता है। भोजन में विभिन्न प्रकार के मिष्ठान,व्यंजन आदि हैं। कृष्ण यशोदा से मांग-मांग कर खाते हैं। यशोदा हंसते-हंसते उन्हें भोजन बड़े ही प्रेम से परोसती हैं और बाल-केलि का आनन्द लेती हैं।[1] जब कृष्ण भोजन करके उठते हैं तो माता यशोदा उनकी आरती उतारतो हैं और उनकी बलैया लेती हैं।

घुटनो चलना - कृष्ण जब कुछ बड़े हो जाते हैं तो घुटनों के बल चलते हैं। कृष्ण लाल-पीले वस्त्र पहने हुए हैं और आंगन में घुटनों-घुटनों चलते हैं। कभी-कभी उठने का प्रयास करते हैं तो गिर जाते हैं।[2]

आंगन में नृत्य- कृष्ण और बलराम नंद के मणिमय आंगन में पैरों में नूपुर और पैंजनी पहने हुए खेल रहे हैं।[3]यशोदा और रोहिणी दोनों ही उन्हें चुटकी दे-देकर नचा रही हैं।

सौन्दर्य-वर्णन - कृष्ण के रूप तथा विभिन्न अंगो की शोभा का वर्णन विभिन्न कवियों ने विविध प्रकार से किया है। किसी ने यदि उनके मुख की शोभा का वर्णन किया है तो किसी ने उनके नेत्रों का। इसीप्रकार उनके द्वारा पहने हुए वस्त्राभूषणों के सौन्दर्य का भी मनोहारी चित्रण हुआ है। एक ब्रज की गोपी कृष्ण का मुख-दर्शन के लिए आई, कारण यह है कि जब कल वह कृष्ण का मुख देखकर हाट गई तो उसका सारा दही बिक गया[4] और घर लौटने पर उसने देखा कि उसकी गाय ने एक सुन्दर सी बछिया को जन्म दिया है। एक कवि प्रातः होते ही कृष्ण-दर्शन की लालसा करता है[5]क्योंकि वह रात भर बिना दर्शन के रहा है और अब उससे एक पल भी नहीं रहा जाता। उसे कृष्ण की तोतली वाणी भी अच्छी लगती है। कृष्ण का दर्शन सारे सुखों का मूल तथा तीनों पापों का समूल नाश करने वाला है।

१-हंसत लसत अरु जसोमती परसत,बाल कैल रसभीनो ।। परमानंद : ह०प्र०सं०४७५ गु० ।
२-गिर गिर उठत घुटुरुवन टेकत,किलक किलक जननी उर लगना।। दास : ह०प्र०सं०१०३६गा
३- मनिमै आंगन नंद के खेलत दोउ भैया ।। परमानंददास : ह०प्र०सं०२८४गु० ।।
४-कालि मुख देखि गईं दधि-बेचन जात्तहिं गयो बिकाईं ।।परमानंददास : ह०प्र०सं०७-२डां०
५- भोर भयो नीको मुख हंसते दिखाइये ।। छीतस्वामी : ह०प्र०सं० ३२६६खिं०।।

माखन-चोरी - कृष्ण जैसे-जैसे बड़े होने लगते हैं उनके कार्य-व्यापार भी वैसे-वैसे फैलते जाते हैं। उन्होंने अब माखन चोरी भी करना शुरु कर दी है। जिससे समस्त ब्रज की बालायें अधिक चिंतित हो उठी हैं। आलोच्य पदों में कृष्ण द्वारा माखन चुराये जाने का कोई पद नहीं प्राप्त होता है, किन्तु गोपियों के ~~अनेक~~ उलाहने के अनेक पद मिलते हैं। जिनकी विषय-वस्तु लगभग एक समान ही है। गोपियां प्रारम्भ में तो आपस में ही कृष्ण की करतूतों का वर्णन करती हैं। किन्तु अंत में वे यशोदा को उलाहना देने पहुंचती हैं। वे कहती हैं, कि हे यशोदा तेरे लाल ने मेरा माखन खाया है।[1] अपनी शिकायत सुनने पर कृष्ण माता यशोदा से कहते हैं कि मैंने माखन नहीं खाया है। यह गोपियां अकारण ही परेशान करती हैं। मुझे कभी नाचने के विवश करती हैं तो कभी मुरली बजाने के लिए। कोई मेरी काली कामरी ही चुरा लेती है, तो कोई मुझसे अपने घर का सारा कार्य करवाती है।[2] यशोदा कृष्ण की इन बातों पर विश्वास कर लेती हैं और गोपियों से कहती हैं कि मेरा कृष्ण तो इतना छोटा है कि वह कभी चोरी नहीं कर सकता। पहले तो तुम उसे अपने भवन में बुलाती हो और फिर मुझे उलाहना देने आती हो।[3]

गोवर्धन-लीला - इससे संबंधित जितने पद प्राप्त हुए हैं, विषयानुसार उनके तीन रूप हैं। प्रथम में, कृष्ण नंद से इन्द्र की पूजा के स्थान पर गोवर्धन-पर्वत पूजने का आग्रह करते हैं। अपने औचित्य को सिद्ध करने के लिए वे कुछ कारण भी देते हैं।[4] दूसरे पक्ष में, नंद कृष्ण का प्रस्ताव स्वीकार कर गोवर्धन-पर्वत की पूजा करते हैं। विभिन्न प्रकार के मिष्ठान्न और पकवान का भोग लगाया जाता है और तीसरे पक्ष में इन्द्र कुपित होकर ब्रज के ऊपर मुसलाधार जल बरसाता है। कारण कि उसके स्थान पर गोवर्धन की पूजा की गई है। बादलों को देखकर समस्त गोप-ग्वाल कृष्ण से कहते हैं, कि हे माधो हमें अपनी छाया में रखो।[5] देखो तो पर्वत के ऊपर ये काले-काले मेघ छाये जा रहे हैं।

१- तेरो लाल मेरो माखन खायो ।। परमानंददास : ह०प्र०सं० ११६८गु०।।
२-मैया मैं नहीं माखन खायो ।।सूरदास : ह०प्र०सं० १०३६गु० ।।
३-झूटे ही दोस देति मेरे सुत कौं दई ये क्यों न डरानि ।। परमानंददास : ह०प्र०सं०१म०
४- हमारे देव गोवर्धन पर्वत, गोधन जहां सुखारे ।। मेहा :ह०प्र०सं०६१२गु०।।
५- माधो राखो अपनी ओट ।।परमानंददास : ह०प्र०सं०६१२गु०।।

कृष्ण गोवर्धन को अपनी उंगली पर सात दिनों तक उठाये रखते हैं। अंत में इन्द्र पराजित होकर कृष्ण की शरण में आता है। सभी गोप-ग्वाल नंदादि सहित प्रसन्न होकर कृष्ण की प्रशंसा करते हैं।[1]

गोचारण - आज सभी गोप-ग्वाल प्रसन्नचित हैं क्योंकि नंद ने कृष्ण को वन में गाय चराने की आज्ञा प्रदान करदी है।[2] कृष्ण सभी ग्वालों से पूछते हैं कि भइया, आज किस वन को चलोगे। भाव की दृष्टि से परमानंददास का एक पद महत्वपूर्ण है, जिसमें कृष्ण गोपों के मध्य में कंधे पर छीका रखकर चल रहे हैं। बछरों को उन्होंने आगे हांक दिया है उस समय ऐसा प्रतीत होता है कि मानो कमल का सरोवर तज कर भौंरा यहां आ गया है। कृष्ण वन में गौओं को चरा रहे हैं। वंशी के मधुर स्वरों में बछरों का नाम ले लेकर पुकारते हैं। सांझ होते ही कृष्ण सभी ग्वालों के साथ वन से लौटते हैं। मार्ग में सभी गोपियां उनके दर्शन के लिए खड़ी हैं और आपस में कहती हैं कि, 'हे सखि कृष्ण अब लौट रहे हैं।[3] आगे-आगे उनके गइयां हैं और पीछे कृष्ण मुरली बजाते हुए चले आ रहे हैं। घर पहुंचने पर यशोदा उन्हें विश्राम के लिए कहती हैं।

चीर हरण - इस लीला के कुछ ही पद प्राप्त हुए हैं, जिनमें गोपियां कृष्ण से अपने वस्त्र मांगती हैं।[4]

राधा प्रधान कृष्ण लीलायें

राधा-जन्म - राधा के जन्म से संबंधित अनेक पद रामदास, परमानंददास, कुंभनदास, आदि कवियों द्वारा रचित मिलते हैं। इन कवियों ने जन्म के साथ ही बधाईयों के भी पद रचे हैं। जिनकी विषय-वस्तु एक समान ही है। वृषभान के घर राधा का जन्म होता है।[1] यह समाचार ज्ञात होते ही सारे व्रज में आनंद छा जाता है। सभी गोपियां वृषभान के

१-बलिहारी गोपाल की गोवरधन धार्यो ।।परमानंददास : ह०प्र०सं० १म०।।
२-आज कान्ह गमन गोचारन,आज्ञा दीनी तात।।रामदास : ह०प्र०सं०६१सु०।।
३-आवे माई व्रज ललनां दु:ख मोचन ।। कृष्णदास : ह०प्र०सं०१७७६ ।।
४- अंबर देहो मुरारी ।। सूरदास : ह०प्र०सं०१११फा०।।

यहां मंगल गीत गाती हुई पहुंचती हैं और विभिन्न प्रकार की बधाइयां गाती हैं। इस समय राधा की शोभा अद्वितीय है। वृषभान याचकजनों को आभूषण और वस्त्रादि दान में देते हैं।[1]

पालना - पालना वृषभान के रंगमहल में पड़ा हुआ है जिसमें राधा झूल रही हैं। इस पालने का निर्माण स्वंय विधाता ने परम रुचि से किया है।[2]

राधा सगाई - एक दिन राधा अपने घर कुछ विलम्ब से लौटती है। इसपर राधा की मां उनसे पूछती हैंकि तू इतनी देर तक कहां थी। तेरी मांग मोतियों से किसने भरी है। राधा उत्तर देती हैं, " मैं आज यशोदा के यहां गई थी और उन्होंने ही मेरी मांग और मेरी गोद मेवों से भर दी है।[3]

पनघट लीला - इन पदों में कृष्ण द्वारा गोपियों को पनघट पर तथा वहां से जलभर कर लौटने पर मार्ग रोकने तथा गगरी आदि के फोड़ने की कथा ही वर्णित हुई है।[4]

संभोग वर्णन - संभोग वर्णन के जो पद प्राप्त हुए हैं उनके दो रूप हैं। प्रथम में गोपियां कृष्ण के प्रति अनुरक्ति रखती हैं। बिना उनके एक पल भी व्यतीत करना उन्हें अच्छा नहीं लगता। एक गोपी अपनी एक सखी से कहती, " जब से मैंने स्यामसुन्दर से प्रीति की है, मेरे नेत्रों ने नींद ही नहीं ली।[5] जिस प्रकार गूंगा व्यक्ति अपने मन की व्यथा अपने मन में ही रखता है, उसी प्रकार प्रेम की पीर को भी रखना चाहिए। एक दूसरी सखी अपनी एक सहेली से कहती है, चाहे मैं व्यभिचारी हूं या पतिव्रता। मैंने अपना यह शरीर स्याम सुन्दर को ही अर्पित कर दिया है।[6] एक गोपी कृष्ण से मिलने के लिए बहुत ही व्याकुल है। इसलिए वह अन्य गोपियों से कृष्ण का पता पूछती है कि वे कहां हैं। कृष्ण एक गोपी की अपेक्षा दूसरी से कम प्रीति रखते हैं, इसका उस सखी को दुख है।[7] दूसरे प्रकार के पदों में कृष्ण के संभोग का वर्णन है। श्रीकृष्ण अपनी प्रिया जिसके नाम का

१-देत दान वृषभान भवन में जाचक नवनिध पाई।।गोविंदस्वामी : ह०प्र०सं०१०३६गु०।।
२-रंगमहल रुचि रच्यौ विधाता, निरख निरख मन फूले।।कृष्णदास :ह०प्र०सं० वही ।।
३-बूझत जननि कहां हुती प्यारी ।। सूरदास : ह०प्र०सं०१म०।।
४- मटुकी फोरत नौसरि तोरत बहुरि देत है गारी।।परमानंददास : ह०प्र०सं०११६७गु०।।
५-ता दिन तें मेरे इन नैननि नेकहूं नींद न लीनी ।। परमानंददास: ह०प्र०सं०१आ०प्र०
६- जो पतिव्रत तौ या ढोटा सौं इनहिं समर्प्यौ देह।। वही ।।
७- लाल मोसु मुखहु न बोले ।। सूरदास : ह०प्र०सं० ७७२ गु०।।

उल्लेख नहीं मिलता,के साथ निकुंज में "पौढ़े" हुए हैं ।[1] कृष्ण के पास रात्रि का तीन पहर व्यतीत करने के पश्चात जब वह अपने घर जाने लगती है तो कृष्ण उसका हाथ पकड़ लेते हैं और जाने से रोकते हैं । इसपर वह कृष्ण से कहती है , " स्याम मेरी बांह छोड़ दो । मैंने तुम्हारे साथ तीन पहर रात्रि व्यतीत की किन्तु तब भी तुम्हें पूर्ण तृप्ति नहीं हुई । एक बार कृष्ण ने किसी गोपी से मिलने का निश्चय कर लिया था किन्तु वे निश्चित समय पर न पहुंच कर कुछ विलम्ब से पहुंचते हैं । क्योंकि कृष्ण किसी अन्य गोपी के पास विहार करते रहे । जब उन्हें पूर्व निश्चय की बात का स्मरण हो आया तो शीघ्र ही वहां से चल दिए । शीघ्रता में असावधानीवश वे अपना पीत वस्त्र वहीं छोड़ देते हैं , और उसकी नीली ओढ़नी ओढ़ कर चले जाते हैं ।[2] जब कृष्ण निश्चित स्थान पर पहुंचते हैं तो वह गोपी, जो कृष्ण की प्रतीक्षा बड़ी अधीरता के साथ कर रही थी,कृष्ण को नीला वस्त्र पहने देखकर स्थिति का सही अनुमान लगा लेती है । एक अन्य पद में स्याम - स्यामा दोनों के " पौढ़ने " का वर्णन मिलता है । प्रात: होने पर ललिता उन्हें वीणा बजाकर जगाती है ।[3]

<u>वसंत - क्रीड़ा</u> - कृष्ण और राधा की वसंत रितु की लीलाओं के पद विभिन्न प्रतियों में मिलते हैं । किन्हीं-किन्हीं प्रतियों में तो ये पद इतने अधिक परिमाण में मिलते हैं कि जिससे यह प्रतीत होता है कि वे प्रतियां संभवत: वसंत,धमार आदि के संकलन के लिए ही लिपिबद्ध की गई होंगी ।

वसंत के आगमन के कारण समस्त ब्रज ने नवीनता धारण कर ली है । कृष्ण,राधा और अन्य गोपियों के साथ वसंत में विभिन्न क्रीड़ायें करते हैं ।[4] एक पद में वसंत-पंचमी के उत्सव का वर्णन मिलता है । ब्रज में मदन-महोत्सव मनाया जा रहा है । गोपियां सुसज्जित होकर वसंत पूजा के लिए चली हैं । स्थान-स्थान पर स्वर्ण-कलश सुशोभित हैं। अनेक वाद्य-यंत्रों से राग वसंत मधुर ध्वनि में गाया जा रहा है ।[5] वसंत के ऐसे सुन्दर शोभा-

---

१-रसिक प्रीतम पीया प्यारी पौढ़े,नव निकुंज सुख सैन।।हरिराय : ह०प्र०सं०२७०३गु०।।
२-आतुर होय नील पट ओढ़े,पीत वसन बिसारे ।। कुंभनदास : ह०प्र०सं० २८४गु०।।
३-भोर भयो नव कुंज द्वार ह्वै ललिता जु ललित बजायो बीना।। कृष्णदास:ह०प्र०सं०३२६६सिं
४- नवल वसंत नवल वृन्दावन,खेलत नवल गोवर्धनधारी।।वही,ह०प्र०सं०२७०२गु०।।
५-राग वसंत मधुर स्वर गावत उपजत तान तरंग ।।हरिजीवन : ह०प्र०सं०१५०३गु०।।

-यमान समय में गोपियां मान कर बैठी हैं । कामदेव ने उनके मान को दूर करने के लिए अबंपात पर कामवाण से लिखकर एक पत्र भेजा है, जिसमें निवेदन किया गया है कि वे अपना मान तज दें ।[१]

<u>होली</u> - होली से संबंधित जितने भी पद प्राप्त हुए हैं, विषय-वस्तु की दृष्टि से उनके नीचे निर्दिष्ट तीन रूप हैं -

क - होली फाग-क्रीड़ा, अबीर गुलाल, आदि डालना, पिचकारी मारना [२]

ख - नृत्य गीत, होली-धमार, चंग, डफ, मृदंग, फांफ, आदि का वादन [३]

ग - कृष्ण के साथ गोपाल-मण्डली तथा राधा के साथ गोपी समूह की प्रतिद्वंद्विता [४]

इसके साथ ही कुछ ऐसे भी प्रसंग मिलते हैं, जो महत्वपूर्ण हैं :

क - सखियों में चन्द्रावली, चंद्रभागा और ललिता का वर्णन -

" चंद्रभागा चन्द्रावली मध्य नायक राजत राधा हैं " [५]

" अबीर चढ़े गुलाल उड़ावत ललितादिक भरि भरि फोरी " [६]

ख - होली में हलधर की उपस्थिति -

" इत कामिनी समाज विराजत, उत मोहन हलधर जोरी " [७]

<u>वर्षा-हिंडोला</u> - इससे संबंधित सारे पदों में वर्षा-विहार एवं हिंडोला फूलने का वर्णन मिलता है । वर्षा-विहार के अन्तर्गत निम्नलिखित बातें पाई जाती हैं -

क - वर्षा रितु का वर्णन

ख - वर्षा संबंधी अन्य प्रसंग

ग - हिंडोले का वर्णन

घ - हिंडोले पर राधा-कृष्ण के फूलने-फुलाने का वर्णन

१- ऐसो पत्र लिखि पठ्यो नृप वसंत ।। सूरदास : ह०प्र०सं० १५०३ गु०।।

२-केसर कस्तूरी मलयागर भाजन भरि भरि लाईं,
अबीर गुलाल फेंट भरि, भामिनि करन कनक पिचकाईं ।। हृषीकेश : ह०प्र०सं०१०००गु०।

३- ताल मृदंग फांफ बांसुरी डफ बाजत गावत गीत ।।सूरदास : ह०प्र०सं०६१२गु० ।।

४- इततें श्री हरि सकल सखा संग आए, जमुना तीर,
उततें श्री राधा जु आई, नव जुवतिनि की भीर।। गोविंदस्वामी : ह०प्र०सं०१५०७गु०।

५- चतुर्भुजदास : ह०प्र० सं० १२० गु० ।। ६- ह०प्र०सं० १२४८ ।। ७-ह०प्र०सं०६१२गु० ।

वर्षा रितु वर्णन - स्वतन्त्र रूप से वर्षा के वर्णन का कोई पद नहीं प्राप्त होता है। केवल एक पद में रितु पति के आगमन का वर्णन मिलता है।[1]

वर्षा संबंधी अन्य प्रसंग - एक पद में एक सखी वर्षा में भीग जाने के कारण अपनी असमर्थता का वर्णन इस प्रकार करती है -

" बुंदन भीजि मेरी सारी, मैं कैसे आऊं
एक घन बरसै दूजे पवन भकोरे तिगरेलाल देवै गारी [2]

हिंडोला वर्णन - कृष्ण और राधा जिस हिंडोले पर झूल रहे हैं, उसका निर्माण स्वयं विश्वकर्मा ने किया है। हिंडोला मरकत की तथा पटली रत्नों से जड़ी हुई है।[3]

सखियों के साथ झूलना तथा झुलाना- कृष्ण गोपियों के साथ हिंडोला झूल रहे हैं। उनके इस झूलने को देखकर कामदेव लज्जित है[4] और सुर-बालाएं उनपर मुग्ध हो जाती हैं। कृष्ण का हिंडोला झुलाने में ललिता, विसाखा, चंपकलता का विशेष उल्लेख मिलता है -

" ललिता विसाखा देति भकोटा रिक अंग न मात " [5]
" ललिता चंपकलता विशाखा देती हैं प्रेम भकोरे " [6]

कृष्ण स्वयं राधा को झुलाते हैं -

" गोपाल लाल झुलावत थोरे थोरे,
झूले मेरी प्यारी हिंडोरे । [7]

दान लीला - दान लीला के जो पद प्राप्त हुए हैं उनमें राधा या किसी अन्य विशेष गोपी का उल्लेख न होकर समस्त गोपी समूह का ही वर्णन है। कृष्ण द्वारा गोपियां पर्वत की घाटी में घेर ली जाती हैं। वे उनका मार्ग रोकते हैं और उन्हें दधि बेचने नहीं जाने देते। कृष्ण सखाओं के साथ गोपियों से दधि छीनते हैं। दधि की इस छीना-झपटी में गोपियों के आभूषण आदि टूट जाते हैं।[8] जब गोपियां दधि देने से मना करती हैं

१-आयो रितुपति पैन आयो प्रान पति री ।। ह०प्र०सं० २७० गु०।।

२- सूरदास : ह०प्र०सं० १ म०।।

३- कंचन खंभ सुजड़ित पटली डंडी चार संभारी
कुंभनदास : ह०प्र०स०३४फा०

४- ललितादिक देख रती पति गयो है लजाई ।। कुंभनदास : ह०प्र०स०१३४फा०।।

५- कृष्णदास : ह०प्र०सं०१४७०गु०।।

६-कुंभनदास : ह०प्र०सं०४७५ गु० ।।

७-सूरदास : ह०प्र०सं० २१० फा०।।

८- कहां तेरो हार कहां नक बेसर,
कहां मोतिन की लर टूटी री।।
सूरदास :ह०प्र०स०११६गु० ।।

तो कृष्ण के सखा उनसे कहते हैं कि नंदनंदन के बिना तुम्हारा दही कोई नहीं लेगा।[१] उनके विरोध करने के फलस्वरूप भी गोप उनके सिर से मटकी छीन लेते हैं। अंत में जब गोपियां निराश हो जाती हैं तो वे कृष्ण से अपनी मटकी को मांगने लगती हैं।[२] किन्तु जब कृष्ण उन्हें उनकी प्यारी मटकी भी नहीं लौटाते तो गोपियां कंस के यहां कृष्ण की शिकायत करने की धमकी देती हैं।

<u>मान लीला</u> - राधा ने किसी कारण से कृष्ण से रूठ कर मान कर लिया है। राधा के इस मान की सूचना राधा की एक सखी कृष्ण को जा कर देती है।[३] कृष्ण एक गोपी को राधा का मान हरने के लिए भेजते हैं। वह गोपी राधा से कृष्ण की प्रशंसा करती है और उसके भाग्य की सराहना करती हुई कहती है, " यह तुम्हारा बड़ा भाग्य है कि तुम्हें कृष्ण स्मरण कर रहे हैं। यह यौवन अंजुली के जल के समान है जो प्रतिक्षण घटता ही जाता है। अत: हे माननी इतना अधिक मान मत करो।[४]

<u>रास लीला</u> - रास रचाने के हेतु कृष्ण एक रात को बांसुरी बजाकर सभी गोपियों को बुलाते हैं। गोपियां मुरली की ध्वनि सुनकर अपने भवनों को छोड़कर कृष्ण के पास आ जाती हैं। किन्तु गोपियों के आ जाने पर कृष्ण उन्हें लौट जाने के लिए कहते हैं। इस पर गोपियां बहुत ही अधीर होकर कहती हैं कि जब तुमने हमें मुरली बजाकर बुलाया है तो अब क्यों वापस भेज रहे हो।[५]

अंत में कृष्ण गोपियों के साथ रास रचाते हैं। हित हरिवंश के एक पद में रास के शरद रात्रि में रचाये जाने का वर्णन मिलता है।[६] रास के समय कृष्ण तथा गोपियां सुन्दर-सुन्दर आभूषण पहने हुए हैं और कृष्ण गोपियों के मध्य बड़े ही सुन्दर प्रतीत हो रहे हैं। नाना प्रकार के वाद्य भी बज रहे हैं।[७] रास करते-करते कृष्ण एकाएक अन्तर्धान हो जाते हैं। गोपियां कृष्ण को अपने मध्य न पाकर अति ही व्याकुल हो उठती हैं और

१-नंदनंदन बिन कोऊ न लैहै काहे कु मथुरा जात ।। परमानंददास : ह०प्र०सं०२८४गु०।।
२-मटकिया मेरी मोहन दीजे ।। चतुर्भुजदास : ह०प्र०सं०६-१५डा०।।
३-माननी बैठी यौं हो रहै ।। परमानंददास : ह०प्र०सं० १ प०।।
४- माननी ऐतो मान न कीजे।। वही,ह०प्र०सं० ४७५ गु०।।
५-जब तुम बैन बजाए बोलाई अब कैसे निठुराये ।।सूरदास : ह०प्र०सं० वही ।।
६-खेलत शरद विमल नभ चंद विराजित ।। वही ।।
७- बाजत डफ ताल मृदंग मुरली अभिरामनी ।। परमानंदास : ह०प्र०सं० २७०गु०।।

विनय करने लगती हैं ।[१] अंत में कृष्ण प्रकट हो जाते हैं ।

महारास - कृष्ण के अन्तर्धान के बाद प्रकट होने पर जो रास लीला प्रारम्भ होती है उसे महारास की संज्ञा दी गई है । इस महारास में कृष्ण ने अनेक रूप धारण कर लिए हैं ।[२] मीरां के एक पद में सहस्र गोपियों के मध्य एक कृष्ण का उल्लेख मिलता है ।[३] कृष्ण के इस रास में गोपियों के कंठ की माला ही टूट कर गिर पड़ी । आकाश से इस महारास को देखकर देव-मुनियों ने जै-जै घोष किया और उनपर फूलों की वर्षा की । चन्द्रमा भी इस रास को देखने के लिए रुक गया । चन्द्रमा के रुक जाने से रात्रि इतनी दीर्घ हो गई कि प्रातः भी होना असंभव सा प्रतीत होने लगा ।[४] रास किस स्थान पर हुआ, इससे संबंधित धना जाट का एक पद मिलता है जिसमें वृंदावन का उल्लेख किया गया है।[५] हित हरिवंश ने रास रचाने का स्थान कल्पतरु[६] बतलाया है और सूरदास ने वंसीवट का वर्णन किया है ।[७]

जल-क्रीड़ा - रास के अंत में यमुना में कृष्ण गोपियों के साथ जल-क्रीड़ा का आनन्द लेते हैं । यमुना में जल-विहार करने से किसी गोपी की कंचुकी के बंध ही छूट गए और किसी के गले का हार ही टूट गया । कृष्ण की जल-क्रीड़ा को देखकर सुर, असुर सभी थक गए ।[८]

मथुरा लीला

कृष्ण के मथुरा गमन, वहां कंसादि दैत्यों के वध से संबंधित कोई पद नहीं प्राप्त होता है । केवल ऐसे दो पद प्राप्त हुए हैं जिनमें गोपियों के विरह आदि का मार्मिक वर्णन प्रस्तुत किया गया है ।

१- हा हा नाथ अनाथ करी जन बोलत बांह पसारी ।।सूरदास :ह०प्र०सं० १ म०।।
२-बिच बिच गोपी बिच बिच स्याम,देखत मोहे कोटिक काम।।रामदास :ह०प्र०सं०२७०गु०।
३- व्रन्दावन में रास रच्यो है,सहस्र गोपी एक कहान।। ह०प्र०सं०१३२गु०।।
४-रथ टेक सखी हार रहो सिर पर होत नहीं प्रभात हो।।परमानंददास : ह०प्र०सं०४७गु०।
५-ललनां रास रच्यो व्रन्दावन ।।ह०प्र०सं०१२०गु०।।
६-आज गोपाल रास रस खेलत पुलिन कलपतरु तीर रे ।।ह०प्र०सं०७७गु०।।
७-रास विलास रच्यो वंसीवट संग सुंदरी व्रजबाल ।। ह०प्र०सं० १ म० ।।
८- सुर असुर नर असुर थकित भए देखत ।। परमानंददास : ह०प्र०सं०६१२ गु०।।

विरह - गोपियों कृष्ण के मथुरा चले जाने से अति व्याकुल हैं । उनकी दशा अत्यन्त ही शोचनीय है । वे सदैव कृष्ण की लीलाओं का स्मरण करती रहती हैं । सांझ का समय है , कृष्ण इस समय वन से गाय चराकर लौटते थे । इस बात का स्मरण करती हुई एक विरह की मारी गोपी दूसरी गोपी से कहती है कि हे सखि इस समय कृष्ण वन से लौटते थे । दूर से ही उनकी बांसुरी की आवाज सुनाई देने लगती थी।[१] गोपियां विरह में व्याकुल होकर वृन्दावन के वृक्षों के पात-पात में स्याम को ढूढ़ती है कि कहीं स्याम इन वृक्षों के पत्तों में हो न छुप गये हों ।

गोपी उद्धव संवाद -- मथुरा से कृष्ण गोपियों को सांत्वना देने के लिए अपने प्रिय सखा उद्धव को ब्रज भेजते हैं । उद्धव जब ब्रज के लिए प्रस्थान करने लगते हैं तो गोपियों को स्वत: यह आभास हो जाता है कि आज कोई न कोई अवश्य शुभ संदेश लेकर आयेगा ।[२] उद्धव जब व्रज में आकर गोपियों को ज्ञान का उपदेश देते हैं और नानना प्रकार से उन्हें यह समझाने का प्रयत्न करते हैं कि वे कृष्ण को पूर्ण ईश्वर समझ कर उनकी आराधना करें । किन्तु गोपियां उद्धव के ज्ञान की हंसी उड़ाती हैं। उनके योग,ध्यान आदि का खण्डन करती हुई अपनी प्रेमाभक्ति की श्रेष्ठता सिद्ध करती हैं । वे उद्धव से निवेदन करती हैं कि हे उद्धव हमें भी वहीं ले चलो जहां हमारे कृष्ण हैं ।[३] उद्धव से वार्तालाप करती हुई भी गोपियां कुब्जा को नहीं भूलती । अपने मन को सांत्वना देती हुई कहती हैं कि कृष्ण चाहे कितनी ही कुब्जाओं के साथ रहें पर अंत में कृष्ण हमारे ही रहेंगे । उद्धव अपने ज्ञान का अभिमान भुलाकर जब ब्रज से लौटने लगते हैं तो नंद यशोदा कृष्ण को आशीर्वाद देते हुए , कहते हैं कि हे कृष्ण तुम जहां भी रहो , कोटि वर्षों तक जीवित रहो ।[४]

१- दूर ही तें वरबेनु अधर धर वारंवार बजावते ।। सूरदास : ह०प्र०सं० ८२ फा०|||
२- आज कोई नीकी बात सुनावे ।। वही : ह०प्र०सं०१००० गु०।।
३- उद्धव ले चल रे जहां सुन्दर स्याम बिहारी ।। वही
४- कहियो जसोदा की आसीस ।। परमानंददास : हं०प्रं०सं० ६-८डा०

२- राम-चरित विषयक पद

प्राप्त पदों में जहां अधिकांश पदों की विषय-वस्तु कृष्ण-चरित है, वहीं ऐसे भी पद यथेष्ट संख्या में प्राप्त हुए हैं, जिनमें राम-चरित वर्णित हुआ है। जिस प्रकार कृष्ण-चरित पदों की रचना में राम-भक्त कवियों ने की है। उसीप्रकार राम-चरित विषयक पदों की रचना में कृष्ण-भक्त कवियों का भी महत्वपूर्ण योगदान है।

राम-जन्म - कवि परमानंददास के एक पद में राम-जन्म का वर्णन मिलता है।[१] राम के जन्म लेते ही सारी अयोध्या सजा दी जाती है। स्थान-स्थान पर मोतियों से चौक बनाये गये और द्वार-द्वार पर मंगल कलश रक्खे गये। राम-जन्म के इस पवित्र अवसर पर अयोध्या की स्त्रियां मंगल गीत गा रही हैं।[२] राम-जन्म का समाचार जैसे ही सारे अयोध्या में फैला वैसे ही सारे नरनारी आनंदित हो उठे। आपस में ही एक दूसरे को बधाईयां देने लगे, मानों उन्हीं के पुत्र उत्पन्न हुआ हो।[3] महाराज दशरथ ने इस समय अपार धन ब्राह्मणों को दान में दिया। सारे बंदी जन छोड़ दिये गये। कौशल्या राम का मुख बार-बार देखती हैं और सोचती हैं कि मैंने ऐसा कौन सा पुण्य किया था, जिसका फल विधाता ने मुझे राम के रूप में दिया है।

पालना - दशरथ ने राम के झूलने के लिए एक रत्नजड़ित पालना बनवाया है। जिसमें राम झूल रहे हैं। कौशल्या उनके गुन-~~गुन~~- गा-गाकर उन्हें झुला रही हैं।[४]

जगाना - प्रात:काल होने पर कौशल्या रामको जगाती हैं।[५]

खेल - राम अपने तीनों भाइयों के साथ सरयू तट पर, हाथ में छोटे-छोटे धनुष लिए हुए और पैरों में छोटी-छोटी खड़ाऊं पहने हुए खेल रहे हैं। इसी समय एक स्त्री सरयू तट पर जल भरने के लिए आई। किन्तु जल भरना भूलकर वह राम की ओर ही देखती रह जाती है और इसका उसे किंचित भी ध्यान नहीं रहता कि जल किधर बह रहा है और

१- प्रगट भये श्री राम माई प्रगट भये श्रीराम ।।ह०प्र०सं० १ म० ।।

२- मिल गावे नार अयोध्या पुर की ।। सूरदास : ह०प्र०सं० ७७गु०।।

३- नाचत गावत देत बधाई ।। सूरदास : ह०प्र०सं० ६१२ गु० ।।

४- सुंदर राम पालने झूले कौशल्या गुन गावे ।। परमानंददास : वही ।।

५- प्रात समय रघुवीर जगावें कौशल्या महतारी ।। माधवदास : ह०प्र०सं० ५७७गु०।।

उसकी गगरी किधर पड़ी है ।[१]

आखेट - राम चतुरंगी सेना के सहित उपवन के मध्य आखेट खेलकर अश्व पर चढ़े हुए लौट रहे हैं । नाना प्रकार के वाद्य आदि बज रहे हैं । वंदी जन, गन्धर्व आदि राम के गुणों का गान कर रहे हैं । राम को आखेट खेलकर लौटते हुए अवधपुर की नारियां भी देख रही हैं । राम के भवन पहुंचने पर कौशल्या उनकी आरती उतारती हैं ।[२]

मिथिला-गमन - राम विश्वामित्र के साथ जनकपुर धनुषयज्ञ देखने के लिए आये हैं । जनकपुर में आज महामंगल है । बड़े-बड़े राजा, यहां तक कि लंका का राजा रावण भी उत्सव में सम्मिलित होने के लिए आया है ।[३]

धनुष-भंग - इस धनुष यज्ञ में राम धनुष को तोड़ डालते हैं । राम के धनुष तोड़ते ही सारी मिथिला में आनंद छा जाता है किन्तु रावण इस से प्रसन्न नहीं होता । उसका हृदय दुख से भर जाता है ।[४]

विवाह - राम सीता सहित जनक भवन में सुशोभित हो रहे हैं ।[५] इस अवसर पर सीता ने चुंदरी पहनी है । राम जरकसी जामा पहने हुए हैं । राम और सीता कुंभ-कलश की भंवरी दे रहे हैं । इस मंगलमय विवाहोत्सव पर नई-नई सखियां कौशल्या का नाम लेकर गीत गा रही हैं । विवाहोपरांत राम सीता के हाथ का कंगन खोल रहे हैं । बार - बार प्रयत्न करने पर भी राम कंगन नहीं खोल पा रहे हैं । उनकी यह स्थिति देखकर सखियां आपस में आश्चर्य प्रकट करती हैं कि जब ये साधारण सा कंगन भी नहीं खोल पा रहे हैं तो इन्होंने किस प्रकार इतने भारी धनुष को तोड़ डाला,[६] इसका कारण क्या है ।

राम-वन-गमन - राम, लक्ष्मण और सीता के सहित पिता की आज्ञानुसार अयोध्या का परित्याग करके वन जा रहे हैं । रास्ते में व्यक्ति आपस में पूछते हैं कि ये बालक किसके हैं जो संग में सुन्दर सी नारी लिए हैं । । आगे चलने पर सीता से ग्राम की स्त्रियां

१- चितवत ही सुधी ना रही, पैरी कित गागर कित नीर।।नंददास : ह०प्र०सं०१३२५।।
२-आर स्याम पर फेरत आरती, राई लून उतारे ।।अग्रदास : ह०प्र०सं०१०००गु०।।
३- बड़े बड़े भूप जनकपुर आये, लंका के सरदार ।।अग्रदास : ह०प्र०सं०१७५ग्लु०।।
४- अग्रदास : ह०प्र०सं०१३०१गु०।।
५- जनक भवन में सोभै सीताराम ।। तुलसीदास : ह०प्र०सं०१७५ फा०।।
६- तोड़त धनुष देर नहीं लाकु, कंगन कहा बिचारी ।।वही :ह०प्र०सं०१०-३डा०।।

पूछती हैं कि तुम्हारे पति कौन हैं । सीता उन्हें इंगित कर बतलाती हैं कि ये गौर वर्ण के तो हमारे देवर हैं और यह स्याम वर्ण के पति ।[१] कुछ व्यक्ति राम से इस बात का आग्रह करते हैं कि वे आज हमारे यहाँ ही विश्राम करें । किन्तु राम उन्हें यह मना कर, कि मुझे पिता की आज्ञा का पालन करना है, आगे चल देते हैं ।

राम-केवट-संवाद - राम गंगा पार करना चाहते हैं, इसलिए उन्होंने केवट को बुलाया है । केवट राम के चरण धुलाए बिना अपनी नाव पर लेजाने के लिए तैयार नहीं होता।[२] वह जानता है कि इन्हीं पदों की रज से पाषाण की शिला भी तर गयी थी, तो उसकी नाव तो काठ की है ।

भरत पश्चाताप - राम के वन जाने के पश्चात जब भरत अपने ननिहाल से अयोध्या लौटते हैं तो राम, सीता और लक्ष्मण को न पाकर उन्हें अत्यधिक दुख होता है । राम के वन जाने का कारण वह स्वयं अपने को ही ठहराते हैं । अब बिना राम के भरत का जीना निरर्थक है । वह राम से मिलने चित्रकूट जा पहुंचते हैं । भरत राम से अयोध्या वापस चलने के लिए आग्रह, विनय, सभी कुछ करते हैं किन्तु राम वापस नहीं लौटते । राम भरत को समझा बुझाकर अयोध्या वापस भेज देते हैं ।[३]

हनुमान-लंका-गमन - सूरदास के एक पद में हनुमान का लंका में अपने शौर्य तथा पराक्रम का दिखलाना और रावण के पुत्र अक्षयकुमार के वध का वर्णन मिलता है ।[४]

हनुमान-सीता-संवाद- हनुमान सीता की खोज लगाते हुए सीता के निकट जा पहुंचते हैं । उनसे विनय करते हुए कहते हैं कि हे माता मैं रघुवीर का सेवक हूं ।[५] सीता हनुमान के इन वचनों पर तभी विश्वास करती हैं जब वे राम की दी हुई मुंद्रिका सीता को देते हैं । हनुमान जब सीता से विदा होने लगते हैं, तब सीता उनसे कहती हैं कि हे कपि राम से जाकर मेरी यह विनती कहना ।[६] मैं यहां दारुण्य दुख भोग रही हूं । इस संकट से आप

१- राजिवनैन मैन की मूरति सैननि दियो बताइ।।सूरदास :ह०प्र०सं०१०००गु०।।

२- तुलसी के ईस राम, रावरे सों सांची कहौं,
बिना पग धोएं नाथ, नाव ना चढ़ाइहौं ।। तुलसीदास : ह०प्र०सं०७७२गु०।।

३- सूरदास प्रभु पावँरी सीस धर भरत चले बनलाई।।सूरदास :ह०प्र०सं०१०००गु०।।

४- ह०प्र०सं० ६१२गु०।।

५- मं रघुवर को चेरौ जानकी मैं रघुवर को चेरो ।। तुलसीदास : ह०प्र०सं०७७२गु०।।

६- कपि जाय कहियो विनती मोरी ।। सूरदास : ह०प्र०सं० १०००गु० ।।

मुझे शीघ्र ही उबारिये । आज फिर आप उस भुजा को क्यों नहीं संभालते जिसकी परिक्षा परशुराम ने ली थी ।

विभीषण-शरणागत - लंका की भरी सभा में रावण द्वारा लात का प्रहार खाने के पश्चात विभीषण राम की शरण में आया है । वह राम से निवेदन करता है कि मैं अपना परिवार और स्वर्ण की लंका को छोड़कर आपकी शरण में आया हूं । आप अनाथों के नाथ हैं । मुझे अपनी शरण में लीजिए ।[1]

राम-प्रतिज्ञा - लंका पर चढ़ाई करने से पूर्व राम शिव की पूजा करते हैं । पूजन के समय वे सुग्रीव से प्रतिज्ञा करते हैं कि हे सुग्रीव इस शिव पूजन का प्रताप मैं तुम्हें दिखलाऊंगा, मैं प्रतिज्ञा करता हूं कि एक ही बाण से सारे असुरों का संहार करूंगा ।[2]

रावण-मंदोदरी संवाद - मंदोदरी अपने पति रावण को यह समझाने का भरसक प्रयत्न करती है कि वे राम से सन्धि कर लें । इसी में उसका हित सुरक्षित है । वह रावण से कहती है कि जब राम धनुष-बाण संभालेंगे तब तुम्हारी यह स्वर्णिम लंका क्षणभर में नष्ट हो जायेगी । तुम्हें जो अपने कुंभकरण और मेघनाद पर अभिमान है वह बिल्कुल असत्य सिद्ध होगा । लक्ष्मण, अंगद, हनुमान जैसे वीरों के साथ तुम संघर्ष मत ठानो । तुम्हारे दस सिर और बीस भुजा एक ही बाण में गिर पड़ेंगे ।[3]

रावण-अंगद-संवाद - अंगद राम का दूत बनकर रावण के पास जाता है, और रावण को समझाने का प्रयास करता है कि वह राम से संधि करले और सीता को वापस करदे ।

वसंत - राम अपने अनुजों के साथ वसंत खेल रहे हैं । अयोध्या की स्त्रियां आपस में एक दूसरे से कहती हैं कि, ' हे सखि चलो वसंत का बधावा दे आएं'[4] जहां राम सिंहासन पर विराजमान हैं । उनके साथ विश्वामित्र आदि देवतागण भी हैं । स्त्रियां श्रृंगार करके बधावा देने राजद्वार जा रही हैं ।[5] वसंत राग गाते हुए, हाथ में कंचन कलश लिए हुई हैं ।

१- सरण विचारि मैं आयौ ।। तुलसीदास : ह०प्र०सं०१३२५ गु०।।

२- सुनि सुग्रीव प्रतिज्ञा मेरी, एकहिं बान असुर सब हैं हौं।। सूरदास : ह०प्र०सं०१००० गु०।।

३- कनक भुवन रत्न मणि मंडप, बरछन घरन परैंगे ।।अग्रदास : ह०प्र०सं०१३२५ ।।

४- वसंत बधावा चालो, अवध धाम ।। अग्रदास : ह०प्र०सं०१५०३ गु०।।

५- सखि अवध नारि री कर सिंगार, चलि वसंत बधावन राज्यद्वार।।विष्णुदास ।।
।।ह०प्र०सं०१५०३गु०।।

जिन पर आम्रपात्र सुशोभित हैं । जिसप्रकार आकाश में विद्युत सुशोभित होती है,उसी प्रकार इस समय राम के वाम भाग में जानकी भी सुशोभित हो रही हैं । रामचन्द्र कांति काम के स्वरूप हैं ।

होली - राम सिया सहित अयोध्या में फाग खेल रहे हैं । उनकी पिचकारियां रत्नजड़ित हैं । अयोध्या की युवतियां किसी की गांठ किसी से जोड़कर अच्छा हास्य उत्पन्न कर रही हैं । राम मुट्ठी में भर-भर कर रंग उड़ा रहे हैं । उनके हाथ में तथा फेंट में गुलाल भरा हुआ है । आज सारी अयोध्या में फाग मचा हुआ है ।

३- वल्लभाचार्य एवं उनके वंश से संबंधित पद

सभी पुष्टिमार्गीय भक्त कवियों ने अपने इष्ट श्री कृष्ण की लीलाओं के वर्णन के साथ ही अपने गुरु वल्लभाचार्य एवं उनके पुत्र गो० विट्ठलनाथ और गोपीनाथ के सम्बन्ध में भी पद रचे हैं । वल्लभाचार्य और विट्ठलनाथ के भक्तों ने इन दोनों की जो वंदना या स्तुति की है वह उन्हीं के द्वारा की गई कृष्ण और राम की वन्दनाओं से भावना और भक्ति के उच्छ्वास में समान ही है ।

वल्लभाचार्य -- महाप्रभु वल्लभाचार्य के इस संसार में जन्म लेने का मुख्य कारण पतितों का उद्धार करना ही है ।[१] उन्होंने द्विज-रूप धारण करके कलियुग के सभी जीवों का उद्धार किया है । उन्होंने मायावाद मत का खण्डन करके भक्तिमार्ग को दृढ़ किया है । श्रीवल्लभ परमानंद स्वरूप हैं, कृपा के सागर हैं और सब को सुख देने वाले हैं ।

भक्त कवि उनकी महिमा का वर्णन करते हुए कहता है कि , " आपके गुण अगणित हैं । जिनकी गणना नहीं हो सकती है ।[२] अंत में भक्त कवि उनके चरणों में प्रणाम करते हुए कहता है कि , " हे स्वामी मेरे लिए तो आप ही हैं ।[३] तुम्हारे समान कोई दीन-दयाल और मेरे समान कोई कुटिल कामी नहीं है । प्रभु मैं बार-बार शीश नवाकर विनती करता हूं । मैंने जब से आपको देखा है मेरे सारे दुख भाग गये हैं।[४]

१- सकल पतीत उधारण कारण प्रगट लीयो अवतार ।। हरिराय :ह०प्र०सं०१०६१गु०।।

२- गो वल्लभ गोवर्धन वल्लभ, श्रीवल्लभ गुन गने न जाईं।।छीतस्वामी:,,१६७९गु०।।

३- मेरे तुम हो श्रीवल्लभ स्वामी ।। हरिराय : ह०प्र०सं० १०६१गु० ।।

४- सब दुख दूर गये जब देखो सुख को पार न पायो ।। वही

गो० विट्ठलनाथ - अष्टछाप के संस्थापक गो०विट्ठलनाथ से संबंधित कुछ पद प्राप्त हुए हैं जिनमें उनके जन्म, मायावाद का खंडन, पुष्टिमार्ग का प्रसार, आदि का वर्णन प्राप्त होता है। विट्ठलनाथ कृष्ण के ही दूसरे रूप हैं।[१] जिन्होंने उस जन्म में वसुदेव के यहाँ प्रकट होकर कंस आदि दैत्यों का संहार किया था। इस जन्म में वल्लभ के यहाँ प्रकट होकर मायावाद का निवारण किया है। इस कलियुग में ऐसा कौन कवि हैं जो उनके गुणों का वर्णन कर सके। वे पुरुषोत्तम हैं। वेदों में उन्हें पूर्ण पुरुषोत्तम ही कहा गया है। उनकी महिमा का वर्णन स्वयं शेष भी सहस्र फणों से भी नहीं कर सकते।[२] इसीलिए प्रातः उठते ही उनका नाम लेना चाहिए।[३] वे दीन दयाल हैं। जिसके हृदय में वे निवास करते हैं उसकी छवि बड़ी ही न्यारी लगने लगती है।[४] उसके नेत्रों में तो स्वयं गिरधारी ही झलकने लगते हैं। हे रसना तू निरंतन विट्ठलनाथ रूप रस अमृत का पान कर। यदि तू अपना भला चाहे तो इसी मार्ग का अनुसरण कर। कुछ पदों में उनके जन्म का भी बड़ा रोचक वर्णन मिलता है। एक पद की प्रारंभिक दो पंक्तियाँ इस प्रकार हैं -

आज मारे आनन्द उर न समाये रे,
प्रगटे श्रीवर वल्लभेश कुमार जी, ।।[५]

कुछ पद जिनमें विट्ठलनाथ के पवित्रां धारण करने का वर्णन हुआ है, भी मिलते हैं। रसिकराय श्री विट्ठल पवित्रां पहन कर सिंहासन पर बैठे हैं। पवित्रां पचरंग है और उसके फुंदनों में भक्तों का मन ही उलझ जाता है। नाना प्रकार के ताल मृदंग भी बज रहे हैं। आज की शोभा अकथनीय है। कोटि कामों से भी अधिक उनकी सुंदरता है।[६] उन व्यक्तियों को जो गो० विट्ठलनाथ की शरण में नहीं आये हैं, चेतावनी देता हुआ भक्त कवि कहता है कि जो श्री विट्ठल की शरण में नहीं आया उसने अपना यह जीवन अकारथ ही खो दिया।[७]

१- बहुर कृस्न फिर गोकुल प्रगटे श्री विट्ठलनाथ हमारे।।माणकचंद : ह०प्र०सं०१६७६अ।
२- निसदिन रटत पार नहीं पावत शेष सहस्र फणी।। छीतस्वामी : ह०प्र०सं० २०६२गु०।।
३- प्रात समय श्री वल्लभ सुत को उठत ही रसना लीजे नाम।। नंददास :ह०प्र०सं०८७६प्रा०।।
४- श्रीविट्ठलनाथ वशत जिय जाके,ताकी रीत पीत छबि न्यारी।।छीत० :ह०प्र०सं०११८गु०।।
५- हरिराय : ह०प्र०सं०१३६फा०।। ६-पवित्रां पहरै गिरिधर लाला।।कृष्णदास: ह०प्र०सं० १३२६ गु०।। ७- श्रीविट्ठल की सरण न आयो जनम आपुनो खोओ हो ।। ।।मेहा : ह०प्र०सं० १६७६ गु०।।

गो० गोपीनाथ -- महाप्रभु वल्लभाचार्य के प्रथम पुत्र गो० गोपीनाथ के जन्म से संबंधित पद भी प्राप्त हुए हैं , जिनमें उन्हें अक्षरब्रह्म कहा गया है । योग,ज्ञान कर्म का मार्ग स्थापित करने के लिए ही उन्होंने द्विज रूप धारण किया है । उनकी महिमा का वर्णन चारों वेद करते हैं , फिर भी पार नहीं पाते । पुष्टि पंथ के चलाने के लिए ही उन्होंने जन्म धारण किया है । उनके जन्म के अवसर पर सारे व्रजजन मिलकर बधाई गा रहे हैं ।

कुछ भक्त कवियों ने विट्ठलनाथ के पुत्रों की भी बधाईयां गाई हैं । ऐसे ही एक पद में , जिसमें गो० विट्ठलनाथ का अपने पुत्रों एवं अष्टछाप के कवियों के साथ होली खेलने का वर्णन मिलता है । [१]

४- माहात्म्य वर्णन सम्बन्धी पद

आलोच्य पदों में कुछ पद ऐसे भी हैं जिनमें श्रीयमुना, व्रन्दावन और गोकुल की महिमा का वर्णन किया गया है ।

श्री यमुना -- यमुना श्रीकृष्ण को अति प्रिय है । इसीलिए जो व्यक्ति उनकी शरण में आता है उसके सारे पाप नष्ट हो जाते हैं । यमराज भी उसका किसी प्रकार का अनिष्ट नहीं कर पाता ।[२] इसीकारण भक्त निरंतर यमुना के सन्निकट ही वास करने की आकांक्षा करता है ।[३]

व्रन्दावन - कृष्ण की विभिन्न लीलाओं के साथ ही भक्त कवियों ने कृष्ण की लीलास्थली व्रन्दावन और गोकुल का भी वर्णन किया है । कृष्ण के व्रन्दावन में निवास करने से उसकी महत्ता और भी बढ़ गई । उसकी धूर भी भक्त को अत्यधिक प्यारी है ।[४] व्रन्दावन में एक पल को भी निवास करने से जन्म-जन्म के पाप नष्ट हो जाते हैं ।[५] इसीलिए जीव को व्रन्दावन से ही प्रीत करनी चाहिए[६], क्योंकि इसमें उसका

१- खेलत वसंत विठलेसराय, निज सेवक सुख देत हैं आय ।। कृष्णदास : ह०प्र०सं० २७० गु०।

२- जमुना जमुना नाम उचारे धर्मराज ताकी न चलावै ।। परमानंददास: ह०प्र०सं० १०६७ गु०

३- तिहारे निकट बसुं निस बासर राम कृष्ण गुन गाऊं।। वही : ह०प्र०सं० १२-६ डा।

४- प्यारी श्री व्रन्दावन की धूर ।। सूरदास : ह०प्र०सं० १५६१ गु० ।।

५- एक पल कु जो रहिये व्रन्दावन।। ~~[illegible]~~: ह०प्र०सं० १०६१ गु०।।

ही कल्याण है ।

गोकुल - वृन्दावन के समान ही गोकुल की भी महिमा का वर्णन मिलता है ।

* श्री गोकुल रस चाखे

जे कोई गोकुल रस चाखे ।।[1]

* धनि गोकुल जहाँ गोविंद आये ।।[2]

५- विनय (राम-कृष्ण के प्रति)

भक्त कवियों ने अपने इष्ट कृष्ण और राम की लीलाओं के वर्णन के साथ ही उनकी वंदना भी की है । अपने पदों में बार-बार उनसे विनय की है कि इस भवसागर से उनका उद्धार कर दे । इस विषय से संबंधित जितने पद प्राप्त हुए हैं,उनकी विषय - वस्तु के निम्न रूप हैं -

क- नाम स्मरण

ख- दैन्य वर्णन

ग- इष्टदेव की महत्ता

घ- पश्चाताप

ङ-भय प्रदर्शन

च- उद्धार की प्रार्थना

छ- वंदना

ज- आश्वासन

नाम स्मरण - भक्त अपने आराध्य की वंदना नाम स्मरण से करता है । इस संसार में जन्म लेने का मुख्य प्रयोजन परमेश्वर का नाम स्मरण करना ही है , किन्तु इस जगत में माया के वशीभूत होकर वह ईश्वर को भूल जाता है । ईश्वर की ओर भक्त को उन्मुख होने के लिए उनका नाम स्मरण अत्यावश्यक है । इसीलिए एक पद में कवि कहता है , * हे बावरे राम को भज ![3] बिना राम के भजन के तेरा जन्म अकारथ ही बीता जा र

१- हरिराय : ह०प्र०सं० ११८ गु०।।

२- सूरदास : ह०प्र०सं० ८०१ गु०।।

३- राम भज राम भज राम भज बावरे ।। मलूक दास : ह०प्र०सं०६८३ गु०।।

है । राम से प्रेम कर । यदि तूने अपने खेत के चारों ओर राम नाम की बाड़ करली तो निश्चित ही तेरा खेत अच्छी तरह उगेगा ।[१] राम भजन के बिना जितना भी समय व्यतीत होता है उसे यमराज लिख लेता है । तू अभी तक अचेत क्यों है ? एक-एक पल तेरा बड़ा मूल्यवान है ।[२] बिना राम के भजन के उसे निरर्थक मत जाने दे । निरंतर राम को भज । राम में ही तेरा निस्तार है । हे मन तू गोविन्द को भज । उनका नाम स्मरण कर । उनके नाम के भी बड़े प्रताप हैं । उनका नाम ही जपते-जपते अनेकों पतितों का इस भव-सागर से उद्धार हो गया । गिरधारी, जो गोपियों के मन को भी हरने वाले हैं, उनका नाम जप । नंदनंदन का नाम कल्पतरु है ।

दैन्य वर्णन - भक्त को जब अपने दोष व्यापक रूप में दिखाई देने लगते हैं तो वह उनका उद्घाटन अपने आराध्य के सम्मुख करता है । यह जानकर कि उसके पाप तो इतने अधिक हैं कि बिना उनकी कृपा के उसका उद्धार होना ही असंभव है, तब भक्त अपनी तुच्छता का अनुभव करते हुए अत्यन्त दीन स्वरों में निवेदन करता है, " हे हरि मैं तो सब पतितों का टीका हूं । सभी पतितों में शिरोमणि हूं । सारे पतित तो केवल चार दिनों के हो हैं मैं तो जन्म-जन्म का हूं ।[3] हे माधो, मुझसे अधिक पापी इस संसार में तुम्हें कोई नहीं मिलेगा । हे प्रभु, मैं सब पतितों का राजा हूं । इस संबंध में मेरी कौन समता कर सकता है । मेरा नाम सुनते ही जम के हाथ में से फांस भी गिर पड़ती है ।[४] हे पतित निवाज तुम्हारे बिना मेरा अन्यत्र कहीं ठौर नहीं है ।

इष्टदेव की महत्ता - कुछ पदों में भक्तों ने अपने इष्ट की महत्ता का भी वर्णन किया है । कृष्ण बड़े दयालु हैं । वे भक्तों पर विशेष कृपा करते हैं । उनके लिये असंभव को भी संभव बना डालते हैं । भक्तों की रक्षा के लिए वे अपनी प्रतिज्ञा भी तोड़ देते हैं । उन्होंने प्रह्लाद की रक्षा करके हिरनाकश्यपु का संहार किया । गज से ग्राह को छुड़ाया । द्रौपदी की लज्जा रक्खी । वे भक्तवत्सल हैं । भक्त निवेदन करता हुआ कहता है, " हे प्रभु मैं

१- राम नाम की बाड़ करले , उगै तेरो खेत रे ।। सूरदास : २ म०।।

२- पल पल राम राम भज ले ।। रामदास : ह०प्र०सं० ६८३ गु०।।

३- हरि हुं सब पतितन को टीको ।। सूरदास : ह०प्र०सं० २ म०।।

४- नाठो नरक सुणी नाम मेरो , छुटित जम की भाजा।।सूरदास : ह०प्र०सं० ५७७गु०।।

तुम्हारा असा आश्रय स्थल छोड़कर कहां जाऊं । मुझ जैसे दीन के लिए कहां स्थान है । मैं तो पतित हूं और तुम पतितों का उद्धार करने वाले हो । तुम दयालु हो । मैं दीन हूं। तुम दानी हो । मैं भिखारी हूं । मैं प्रसिद्ध पातकी हूं । तुम पापों का हरण करने वाले हो ।[१]

पश्चाताप - भक्त कवियों ने अपने बुरे कर्मों के लिए पश्चाताप भी किया है । वह कहता है कि उसने इस संसार में आकर रघुनाथ की शरण नहीं पकड़ी । जन्मों के अनेक समूह इसी प्रकार व्यतीत हो गये ।[२] रघुनाथ से प्रभु को तज कर मेरे ऐसे व्यक्ति दूसरों के चरणों का सेवन करते फिरते हैं । जो जड़ जीव हैं, कुटिल और खल हैं । जो कलयुग के मैल से सने हुए हैं । मन ऐसे ही व्यक्तियों की प्रशंसा करके प्रसन्न होता है । सुख की प्राप्ति के लिए मैंने कोटि उपाय किये । किन्तु उसमें चरण नहीं थकते और मन कीचड़ जैसा ही सना रहा। कितने दिन बिना हरि स्मरण के ही व्यतीत हो गये । दूसरों की निंदा में ही अनेकों जन्म बिता दिये ।[३] कृष्ण की कथा, कृष्ण के नाम और कृष्ण की भक्ति के बिना दिन यों ही बीते जाते हैं ।

भय प्रदर्शन - मन को इस संसार से विरक्त करके ईश्वर की ओर उन्मुख करने के लिए भक्त अपने मन को विभिन्न प्रकार के भय दिखलाता है । वह कहता है, " रे मन तू विषयों से अनुरक्ति मत कर । कृष्ण का भजन कर । यदि तुम हरि का ध्यान नहीं करोगे तो ऐसा कौन है जो अंत समय में तुम्हारी रक्षा करेगा । अंत समय में तो केवल घनश्याम ही रक्षा करते हैं । इस संसार में कोई अपना नहीं है । माता-पिता सभी तब तक के हैं, जब तक उनका निजी स्वार्थ है ।[४] इस संसार में हरि के बिना अपना कोई भी नहीं है ।

उद्धार की प्रार्थना - मन को संसार से विरक्त करके भक्त प्रभु से अपने उद्धार की प्रार्थना करता है । कहता है , " मैं तो अब आपकी शरण में ही आ गया हूं । हे राम तुम मुझे अपनी शरण में रख लो । मैं तीनों तापों से अत्यन्त दुखी हूं । मैं कहां जाऊं, किससे कहूं मेरा तो कहीं ठिकाना ही नहीं है । हे रघुनंदन मैं तुम्हारी शरण में हूं । इस परिवार

१- तू दयाल दीन हौं तू दानि हौं भिखारी ।।तुलसीदास : २आ० ।।

२- असे जनम समूह सिराने ।। वही ।।

३- केते दिन हरि सुमिरन बिन खोये ।। सूरदास : २ म०।।

४- अंत केदिन कौं हैं घनश्याम,
माता पिता बंधु सुत तौ लगि, जौ लगि जिहिं कौं काम ।।सूरदास : १ म०।।

में अपना कोई भी नहीं है ।[1] हे प्रभु, अन्य व्यक्तियों के लिए तो अनेकों आश्रय स्थल हैं किन्तु मेरे के लिए तो केवल आप ही हैं । मेरा इस संसार में तुम्हारे सिवा कोई नहीं है ।[2] मेरे दुख और दुर्दशा दिनप्रति दिन बढ़ते ही जायेंगे जब तक आप मेरी ओर नहीं देखोगे ।

वंदना - वंदना से संबंधित जितने भी पद प्राप्त हुए हैं उनकी विषय-वस्तु एक समान ही है । भगवान के माहात्म्य को हृदय में धारण कर उनकी स्तुति,नत मस्तक हो विनय करन एवं श्रद्धा से उन्हें प्रणाम करना है । माधव का नाम ही मंगल है । उनका मुख और हाथ सब मंगलमय हैं । भक्तों का संसार सदा मंगलमय में रहता है । वसुदेव के कुमार मंगलमय शरीर वाले हैं । उनका दर्शन,पूजा और भजन सब मंगलमय है ।[3]

आश्वासन - अपने आराध्य की वंदना कर लेने के पश्चात भक्त का हृदय इस आशा से भर जाता है कि अब करुणानिधान उसपर अवश्य दया करेंगे । इस भवसागर से उसका उद्धार अब शीघ्र हो जायेगा ।

६- पर्व और उत्सव

वर्ष भर में मनाये जाने वाले कुछ पर्वों और उत्सवों से संबंधित पद भी प्राप्त हुए हैं । इन पदों में प्राय: वस्तु-नियोजन सर्वत्र एक सा ही हुआ है । पर्व और उत्सव से संबंधित पदों की वर्ण्य-वस्तु दृष्टव्य है -

दीपावली - दीपावली ब्रज-मण्डल का एक महत्वपूर्ण उत्सव है । दीपावली के दिन सारे ब्रज में आनन्द छा जाता है । गोप-ग्वाल प्रसन्न हैं क्योंकि कल दीपावली है । दीपावली के एक दिन पूर्व माता यशोदा ने कृष्ण को अति सुगंधित जल से स्नान करवाया है । सारे ब्रज में दीपमालिका मनाई जा रही है । यशोदा ने सुन्दर-सुन्दर वस्त्राभूषण कृष्ण को पहना दिये हैं ।[4]

१- श्री रघुनंदन सरन तिहारो,
मात पिता भईया सुत दारा इया में नहीं जु कोऊ हमारो।।लालदास :ह०प्र०सं०१०००

२- प्रभु हुं आयौ सरन तिहारि,अब सुधि लीजे गिरधारी।।दास :ह०प्र०सं०१०००गु०।।

३- मंगल माधौ नाम उचार ।।परमानंददास : ह०प्र०सं० १ आ० ।।

४- आजु नाहु मैरे कुंवर कन्हैया,मानी काल दीवारी।।विष्णुदास :ह०प्र०सं०१०३६गु०।।

५- दीपमालिका को दिन आज ।। परमानंददास : ह०प्र०सं० १११फा०।।

रक्षा-बंधन - बहन सुभद्रा कंचन थाल सजाकर कृष्ण और बलराम को राखी बांध रहीं हैं। थाल में कुमकुम,अक्षत रखे हुए हैं। यशोदा ऐसे समय हीरा मानक आदि दान में देती हैं।[१]

पवित्रा - पवित्रा पहरने के दिन आ गये हैं।[२] इसलिए कृष्ण भी पवित्रा पहनकर अपने मंदिर में बैठे हुए हैं। ब्रज-वालाएं विविध प्रकार के वस्त्राभूषण पहने हुए हैं। नंद के घर जा जाकर नंद से बधाई मांग रहीं हैं।

चंदन धारण - अक्षय तृतीया के दिन कृष्ण के शरीर पर चंदन का प्रलेप किया गया है, और चंदन के प्रलेप पर केसर के सुन्दर से चित्र बने हुए हैं। कृष्ण चंपकली सी पाग पहने हुए हैं।[३] वे जिस सूथन को पहने हुए हैं, उसकी शोभा अकथनीय है। एक गोपी अपनी सखी को दिखाती हुई कहती है कि, " सखि देख,गोविंद के सांवरे अंग पर चंदन शोभित हो रहा है।[४] उनके कंठ में माला पड़ी हुई है। वे पीना उपरना पहने हैं। वे हाथों में कंगन पहने हैं। उनकी भृकुटी की छवि पर कोटि अनंग न्योछावर हैं।

रथ-यात्रा - कृष्ण विचित्र प्रकार के झीने-झीने वस्त्र पहनकर रथ में बैठे हैं।[५] उनका बदन सुन्दर है। बादल भी उनके चारों ओर गरज-गरज कर मधुर ध्वनि कर रहे हैं। देवतागण भी अपने-अपने विमानों से उनकी इस परम शोभा को देखकर आश्चर्यचकित होते हुए उनपर फूलों की वर्षा कर रहे हैं।

छटरी - ब्रज के सभी नर-नारी नंद के यहां एकत्रित हुए हैं। आज कृष्ण छटरी में बैठे हैं।[६] छटरी रत्न जड़ित है। जिसमें मोतियों की माला लटक रही है। यशोदा ने मिष्ठान्न से भरी अनेक थालियां सजा कर रक्खी हैं। ब्रज-सुन्दरियाँ कृष्ण का रूप देखने के लिए आई हुई हैं।

वामन जन्म - भगवान वामन का जन्म भादों मास में बतलाया गया है। उन्होंने चतुर्भुज रूप से जन्म लिया है। अदित और कश्यप को इससे अत्याधिक प्रसन्नता हुई और स्वयं

१- बहन सुभद्रा राखी बांधे,बल और श्री गुपाल के।।आसकरन :कृ०प्र०सं०२०६फा०।।

२- पवित्रा पहरन को दिन आयो ।।सूरदास :कृ०प्र०सं० १ आ०।।

३- चंपकली सी पाग बिराजत भाल तिलक नव वंदन को ।। परमानंददास :कृ०प्र०सं०६१२गु०।

४- देखि सखी गोविंद के चंदन सोभित सांवरे अंग।।चतुर्भुजदास :कृ०प्र०सं०६१२गु०।।

५- देखो माई रथ बैठे गोपाल।।परमानंददास : कृ०प्र०सं०१५०७ गु०।।

६- छटरी बैठे श्री गुपाल ।। गोविंददास : कृ०प्र०सं०१०३६गु०।।

ब्रह्मा ही मंगल गान के लिए उपस्थित हुए ।[1]

नृसिंह अवतार - हिरण्यकश्यपु के अत्याचारों से प्रह्लाद को बचाने हेतु भगवान नृसिंह के रूप में प्रकट हुए । उनका ऐसा भयानक स्वरूप पहले कभी भी नहीं दिखलाई दिया था । हिरण्यकश्यपु के वध के पश्चात नृसिंह प्रह्लाद को अपनी गोद में बैठाकर चाटने लगते हैं । वे प्रतिज्ञा करते हैं कि जब तक तेरे सिर पर छत्र न धरा दूं तब तक मैं बैकुंठ नहीं जाऊंगा।[2]

७- विविध

आलोच्य पदों में कुछ पद ऐसे भी हैं जिन्हें किसी निश्चित वर्ग में सम्मिलित नहीं किया जा सका । ऐसे सारे पदों की वर्ण्य-वस्तु उपर्युक्त शीर्षक के अन्तर्गत दी जा रही है -

आरती - आरती के पदों में भक्त कवि अपने इष्ट की आरती स्वर्णथाल में सजाकर उतारता है । आरती के साथ ही इन पदों में कृष्ण के सौन्दर्य का भी वर्णन किया गया है ।[3]

शिव द्वारा कृष्ण दर्शन - शिव कृष्ण का दर्शन करने के लिए कैलाश से व्रज में पधारे हैं । उन्होंने नंदराय के घर जाकर अलख जगाया है । उनकी आवाज सुनकर नंदरानी कंचन - थाल भर कर उन्हें देती हैं । शिव उसे लेने से मना कर देते हैं । वे कहते हैं, " हे माता, मैं इसका क्या करुंगा । मैं तो तेरे लाल का दर्शन करने के लिए आया हूं । तू तो मुझे अपने लाल का दर्शन ही करा दे । पहले तो यशोदा मना करती हैं किन्तु अंत में अपनेलाल का दर्शन शिव को करा देती हैं ।[4]

राम-कृष्ण की उभयमूलक भक्ति - कुछ पदों में राम और कृष्ण की सम्मिलित प्रार्थना और स्तुति की गई है तथा दोनों की वंदना के लिए कहा गया है ।[5]

१- प्रगटे श्री वामन पुरुष पुरान ।।   :ह०प्र०सं०६१२गु०।।

२- तब लगि मैं बैकुंठ न जाऊं ।। अग्रदास : ह०प्र०सं०११६० गु०।।

३- मंगल आरती कीजे भोर ।। भगवान : ह०प्र०सं० २२२ फा०।।

५- मदन गोपाल हमारे राम,
धनुष बान धरि विमल बेनुकर,पीतबसन अरु घन-तन-स्याम।।परमानंददास : १५३गु०।

४- तब बालक कृष्ण ले आई नंदरानी संकर सीस नवाया ।।सूरदास :ह०प्र०सं०२३६७गु०।।

ख- निर्गुण भक्ति-मूलक पद

गुजराती हस्तलिखित पदसंग्रहों में अधिकांश पद सगुण-भक्ति-भावना से ही संबंधित हैं किन्तु कुछ पद ऐसे भी प्राप्त हुए हैं जिनकी विषय-वस्तु निर्गुण विचारधारा की है। यद्यपि इन पदों के रचयिताओं में निर्गुण-धारा के कवि प्रमुख हैं तथापि चेतावनी आदि निर्गुण-भक्ति के कतिपय विषय सगुण-भक्ति-धारा के कवियों द्वारा भी वर्णित हुए हैं। समस्त पदों में निम्नलिखित विषय वर्णित हुए हैं -

१- चेतावनी

२- भक्ति तथा गुरु महिमा

३- विविध

चेतावनी - जीव का इस संसार में आने का कारण ईश्वर स्मरण कर उसकी प्राप्ति के लिए प्रयास करना है, किन्तु ईश्वर की प्राप्ति तो दूर रही, वह उसका एक पल भी स्मरण नहीं करता। संसार की माया, विषय-वासना में वह इतना लिप्त रहता है कि उसे अपने को ही सुध नहीं रहती है। सदैव अज्ञान की निद्रा में सोया रहता है। अपने इन्द्रिय सुख के कार्यों में वह इतना व्यस्त रहता है कि उसे अपने निर्माण-कर्ता का ही ध्यान नहीं आता। ऐसे ही एक व्यक्ति को चेतावनी देते हुए भक्त कवि कहता है, " अब तो जाग! सारा जीवन अंजुली के जल के समान घटता जा रहा है।[१] हे मूरख तू काहे को अभी तक अचेत बना पड़ा हुआ है। तेरा सारा जीवन यों ही बीता जा रहा है। यह मानव शरीर ईश्वर के भजन के लिए ही तुझे मिला है। ऐसा अवसर तू बार-बार नहीं पा सकेगा।[२] जीव इस संसार में आकर समझता है कि यह दुनियाँ मेरी है। घर, द्वार, माता, पिता, बन्धु, स्त्री, पुत्रादि सभी उसके हैं। नाना प्रकार के दुष्कर्म करके माया संग्रह करता है और सोचता है कि अंत समय में यह माया उसका साथ देगी।[३] परन्तु माया क्या उसका शरीर भी अंत में उसका साथ नहीं देगा। वह निरंतर संसारी वस्तुओं

१- हो जाग्य रे सारी रैण बिहाणी
   जायो जन्म अंजुली को पाणी ।। दादू : ह०प्र०सं० ५७७गु०।।

२- अवसर बेर बेर नही आवे,
   जो चाहे तो करले भलाई, जन्मो जन्म सुख पावे ।। वही ।।

३- नर काहे को माया जोड़ी ।। कबीर : ह०प्र०सं० ६८३गु०।।

को अपना ही कहता है किन्तु इस दुनिया में उसका कुछ भी नहीं है। हे जीव, जिस शरीर को तू हृष्ट-पुष्ट करने के लिए विभिन्न प्रकार के रुचिकर भोजन करता है, अंत में वही जंगल में रक्खा जाता है। जिस सिर पर तू सुन्दर सी पाग पहनता है, उसी पर एक दिन काग अपनी चोंच का प्रहार करता है।[2] जिस मुख में तू पान चबाता है उसी में एक दिन कीड़े-मकोड़े अपना घर बना लेते हैं। जिस शरीर पर नाना प्रकार के सुगंधित चंदनादि का प्रलेप कर बहुत आनन्द मनाता है, वही एक दिन काठ के संग जल जाता है। इसलिए तू उस पर अधिक अभिमान मत कर।[3] वह तेरा नहीं है। एक दिन तुझे उसे छोड़ना पड़ेगा। इस संसार में केवल परमात्मा से और कोई बड़ा नहीं है।[4] उसी का भजन कर। तभी तेरा उद्धार होगा। जो मनुष्य, बिना ईश्वर के जपे ही अपना जीवन बिता रहा है, उसका जीवन केवल श्वान और सूकर जैसा ही है। उसमें और श्वान में कोई अन्तर नहीं है।[5] इसलिए हे जीव तू हरि का स्मरण कर।

<u>भक्ति तथा गुरु महिमा</u> - कुछ पदों में हरि का भजन करने को कहा गया है क्योंकि हरि का भजन करने से ना जाने कितने पापियों का उद्धार हो गया है। हरि-भजन का परिणाम ही ऐसा है कि नीच व्यक्ति भी ऊंची पदवी प्राप्त कर लेता है।[6] इसलिए हे प्राणी तू भी हरि का भजन कर। जिस घर में हरि का भजन नहीं होता। वह श्मसान के सदृश है और वहां यमराज सदा अपना डेरा दिये रहता है।[7] भजन महिमा के साथ ही संत की महिमा का भी वर्णन किया गया है। संत का संग ही सारे पापों का नाश कर देता है। संत उस पारस के समान हैं जिसके जान या अजान में छू लेने से ही लोहा कंचन हो जाता है।[8]

१- का करै मेरा मेरा, इस दुनिया में नहीं कछु तेरा।।कबीर :ह०प्र०सं०६८३गु०।।

२-आ तन खीर खांड का भरिया, सोई तन जाइ जंगल में धरिया।।वही, ह०प्र०सं० ५७७गु०।।

३- आखरी तन खाक मिलेगा क्या फिरता मग रो से ।। वही।।

४- क्युं गफलत में पड़ा दिवाना, क्युं गफलत में पड़ा, हरि से कोई नहीं बड़ा ।।वही।।

५- अन्तर प्रीति नहीं पुरुषोत्तम स्वान सूकर जैसा।।सूरदास: वही ।।

६- नीच पावे ऊंच पदवी वाजते नीसान।।तुलसीदास : २ आ० ।।

७- ज्यां घर हरी कथा नहीं कीर्तन, संत नहीं मिजमाना,
ता घर जमरै डेरा दीना, सांझ पड़े समसमाना ।। कबीर : ह०प्र०सं० ५७७गु०।।

८- [illegible] ।।

कुछ पदों में कवियों ने अपने गुरु की महिमा का वर्णन किया है। गुरु में वह शक्ति है जिसके प्रताप से उसके शिष्य के सारे पापों का नाश हो जाता है। गुरु की कृपा से ही कल्याण होता है। जो शिष्य अपने गुरु पर पूर्ण विश्वास रखता है, उसके भवसागर से पार उतरने में कोई संदेह नहीं रहता। दादू के वचनों में गुरु की कृपा से ही अष्टसिद्धियाँ और नवनिधि सरलता से प्राप्त हो जाती है। शिष्य अमरलोक में जाकर निवास करता है।[१] सारे वेद गुरु की महिमा का यश गाते हैं। गुरु की महिमा वर्णन से परे है। गुरु ही शिष्य को मोह निद्रा से जगाता है। यदि गुरु न हो तो कौन जगायेगा।[२]

विविध - कुछ पद ऐसे भी प्राप्त हुए हैं जिनमें संतो। द्वारा आध्यात्मिक होली खेलने का वणान मिलता है। ऐसे ही एक पद में ज्ञान गली में होली का खेल हो रहा है।[३] प्रेम की कीच मची हुई है। अजित शब्द की ध्वनि को सुनकर काम, क्रोध दोनों भाग गये हैं। प्रेम और प्रीति की पिचकारी भर-भर कर साधू खेल रहे हैं। वहां करम धरम की पताका रोपी गई है। ऐसी होली का तमाशा ज्ञान और ध्यान देख रहे हैं। सद्‌गुरु फाग खेल रहे हैं।

आलोच्य पदों के विषयक्रमानुसार उपर्युक्त विश्लेषण से यह निष्कर्ष निकलता है कि उनके अन्तर्गत निर्गुण, सगुण, भक्ति के विविध विषयों को स्थान मिला है। मध्यदेश में भक्ति की जो दिव्य-चेतना भक्त कवियों की काव्य-साधना के द्वारा प्रसारित हुई, वह आलोच्य पदों के माध्यम से गुजरात में भी पहुंची। मध्यदेश के तीर्थ, रीति-नीति, पर्व, उत्सव, आदि आलोच्य पद साहित्य में वर्णित हुए हैं, जो गुजरात में भी समान रूप से लोकप्रिय हुए। अस्तु, गुजराती हस्तलिखित प्रतियों में प्राप्त पद वर्ण्य-वस्तु की दृष्टि से अपना सांस्कृतिक महत्व रखते हैं। उनमें दोनों प्रदेशों के भक्ति-प्रवण लोक-मानस की सुन्दर अभिव्यक्ति हुई है।

१- अष्टसिद्धि नवनिधि सहजहिं पावे, अमर अमे पद सुख में आवे ।।ह०प्र०सं० ५७७गु०।।

२- गुरु बिन कौन जगावे जगत में, गुर बिन कौन जगावे ।।कबीरदास :ह०प्र०सं०१३७७गु०।।

३- हारे मन क्यों होरी खेलिये,
ग्यान गली में होली खेले, मचो है प्रेम को कीच ।। कबीरदास : ह०प्र०सं०३-२डा०।।

अध्याय ४

रचयिता के अनुसार वर्गीकरण

आलोच्य पदों का रचयिताओं के अनुसार वर्गीकरण विभिन्न सम्प्रदायों के आधार पर करना उचित प्रतीत हुआ । अतएव जो भक्त कवि जिस सम्प्रदाय से सम्बद्ध है, उनका विवरण सम्प्रदाय विशेष के साथ दिया गया है । इस विभाजन के पश्चात भी कुछ कवि ऐसे शेष रहते हैं, जिनके विषय में निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता कि वे किस सम्प्रदाय से सम्बद्ध रहे हैं । अत: उन्हें स्फुट वर्ग में रखना उचित प्रतीत होता है । इस प्रकार आलोच्य पदकारों की निम्नलिखित श्रेणियां निर्धारित की जा सकती हैं --

१- कृष्ण भक्त कवि

   क- निम्बार्क सम्प्रदाय

   ख- वल्लभ सम्प्रदाय

   ग- चैतन्य सम्प्रदाय

   घ- राधावल्लभ सम्प्रदाय

   ङ- हरिदासी सम्प्रदाय

२- रामानंदी सम्प्रदाय

३- संत कवि

४- स्फुट कवि

५- हिन्दीतर भाषा-भाषी कवि

   क- मराठी

   ख- गुजराती

निम्बार्क सम्प्रदाय - प्राप्त पदों में निम्बार्क सम्प्रदायान्तर्गत केवल श्री भट्ट के ही पद प्राप्त हुए हैं। जिनका जीवन-क्रम इस प्रकार है -

श्री भट्ट- निम्बार्क सम्प्रदाय के सर्वप्रथम कवि माने जाते हैं। इनका प्रादुर्भाव मथुरा में ही आदि गौड़ ब्राह्मण कुल में हुआ था। निम्बार्क माधुरी[1] के अनुसार इनका कविता-काल तेरहवीं शताब्दी के मध्य से लेकर चौदहवीं के मध्य तक है। किन्तु अन्य आलोचक और इतिहासकार इनका समय १६ वीं शती मानते हैं।[2] इनकी रचना " युगल शतक " के नाम से विख्यात है। इसमें सम्प्रदाय के सिद्धान्त के अनुकूल वृंदावन पद्धति का युगल - भक्ति का रागानुग रूप प्रस्तुत किया गया है। सम्प्रदाय में इसे आदिवाणी कहा जाता है।

वल्लभ सम्प्रदाय - अन्य सभी सम्प्रदायों की अपेक्षा वल्लभ-सम्प्रदाय का गुजरात में अधिक प्रचार-प्रसार हुआ। जिसके परिणामस्वरूप गुजरात के विभिन्न भागों में वल्लभ-सम्प्रदाय के मंदिरों का निर्माण हुआ और नित्य पूजा के लिए पदों का संकलन किया गया। प्राप्त पदों में इसी कारण वल्लभ-सम्प्रदाय के कवियों की संख्या अधिक है।

सूरदास -- सूरदास का जन्म समय सं० १५३५ वैसाख सुदी पंचमी और गोलोकवास १६३९ वि० माना जाता है।[3] चौरासी वैष्णव की वार्तानुसार सूरदास रुनकुता में ही वल्लभाचार्य जी से मिले थे और १५६७वि० के लगभग महाप्रभु के शिष्य बने।[4] वार्ता के अनुसार इन्होंने लक्षावधि पद रचे। डा० दीनदयाल गुप्त ने इनकी २४ रचनाओं की

१- श्री निम्बार्क माधुरी, पृ० ७

२क-गुजराती और व्रजभाषा कृष्णकाव्य का तुलनात्मक अध्ययन, पृ० ७

ख-हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० १८८

ग- व्रजमाधुरी सार, पृ० १४८

३- अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय, पृ० २१२-२१६

४- ब्रजभारती, वर्ष २ अंक १०

सूची दी है किन्तु वे सूरसागर,सूरसारावली और साहित्यलहरी को ही प्रामाणिक मानते हैं।[1] इसके विपरीत डा० ब्रजेश्वर वर्मा एकमात्र सूरसागर को ही प्रामाणिक मानते हैं।[2] साहित्य लहरी और सूरसारावली को नहीं। विद्वानों के मतभेद के कारण सूरदास की रचनाएं अभी तक विवाद की विषय बनी हुई हैं। गुजराती हस्तलिखित पद-संग्रहों में सूरदास के पद अधिक संख्या में प्राप्त होते हैं।

परमानन्ददास - परमानन्ददास का जन्म सं० १५५० वि० को मार्गशीर्ष शु० ७ सोमवार को कन्नौज में हुआ था।[3] ये कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे। १५७६ वि० के लगभग ये वल्लभ सम्प्रदाय में प्रविष्ट हुए। दीक्षित होने से पूर्व भी ये कवि और गायक थे। दीक्षित होने के बाद ये कृष्णलीला के पदों की रचनाकरते रहे। इन्होंने गो० विट्ठलनाथ के सातों पुत्रों की बधाइयां गाई हैं। वैसे परमानन्ददास के कई ग्रंथ माने जाते हैं,जिनका क्रम इस प्रकार है -

दानलीला,ध्रुवचरित,परमानन्ददास के पद,उद्धव लीला,संस्कृत रत्नमाला, तथा परमानंदसागर।

किन्तु इन सब में केवल परमानन्दसागर ही परमानन्ददास की प्रामाणिक रचना है।[4] इनकी मृत्यु लगभग सं० १६४० वि० में हुई।[5]

कुंभनदास - अष्टछाप के तीसरे रत्न कुंभनदास का जन्म सं० १५२५ वि० में गोवर्धन के निकटवर्ती जमुनावती नामक ग्राम में हुआ था।[6] कुंभनदास गोरवा क्षत्रिय थे। आरंभ से ही काव्य रचना और संगीत की और इनकी रुचि थी। कुंभनदास १५५६ वि० के लगभग महाप्रभु जी के शरण में आये। सं० १६०२वि० में जब गो० विट्ठलनाथ ने अष्टछाप की

१- अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय,पृ० २६८

२- सूरदास , पृ० ६७

३- अष्टछाप परिचय, पृ० १७७

४- अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय, पृ० ३११

५- वहीं० पृ० २३०

६- अष्टछाप परिचय , पृ० ६६

स्थापना की और कुंभनदास को उसमें सम्मिलित किया । ये गायन में इतने कुशल थे कि एक बार सम्राट अकबर ने भी इनको अपने पास बुलाया था । कुंभनदास का निधन लगभग १६३६ वि० माना जाता है ।[1] कुंभनदास के पद कांकरौली से प्रकाशित हो चुके हैं, जिनमें उनके पदों की संख्या ४०१ है । इसके अतिरिक्त दानलीला का एक विस्तृत पद भी है, जो स्वतंत्र रूप से प्रकाशित है ।[2]

कृष्णदास -- कृष्णदास का जन्म लगभग सं० १५५२ तथा निधन सं० १६३२ से १६३८ वि० के मध्य हुआ था ।[3] ये जाति के शूद्र थे फिर भी कृष्ण-भक्ति के कारण वल्लभाचार्य जी द्वारा बहुत सम्मानित हुए और एक बार इन्होंने गो० विट्ठलनाथ को भी अपने अधिकार के द्वारा श्रीनाथ जी के मंदिर में प्रवेश नहीं करने दिया । कृष्णदास ब्रजभाषा साहित्य के आचार्य और सूरदास जी के बाद महाप्रभु वल्लभाचार्य जी ~~xxxx~~ के मंदिर के अधिकारी थे । ये भारतीय संगीत के परम्परागतमूलक गायक,काव्य-मर्मज्ञ, और पद-रचना में अग्रणी थे । कृष्णदास की निम्नलिखित रचनाएं मानी जाती हैं : भ्रमरगीत,प्रेम सत्व-निरुप,वैष्णव वंदन,प्रेम रस रास,कृष्णदास की बानी , जुगलमान चरित्र ,भक्तमाल टीका, भागवत भाषानुवाद, पद । इनमें से केवल पद-संग्रह को ही उनकी प्रामाणिक रचना विद्वानों ने माना है[4] अन्य को संदिग्ध और अप्रामाणिक । इनके पदों का प्रकाशन कांकरौली से हो चुका है ।

नंददास -- नंददास का जन्म लगभग १५९० वि० तथा निधन १६३९ वि० के लगभग माना जाता है ।[5] नंददास गो० विट्ठलनाथ द्वारा स्थापित अष्टछाप के प्रसिद्ध कवियों में थे । साहित्यिक महत्व के दृष्टिकोण से सूरदास के बाद इन्हीं का स्थान है ।

१- अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय, पृ० २४४

२- गुजराती और ब्रजभाषा कृष्णकाव्य का तुलनात्मक अध्ययन,पृ० २८

३- अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय, पृ० २५४-२५५

४- वही०, पृ० ३२४

५- वही०, पृ० २६१-६२

अष्टछाप के अन्य कवियों के समान ही नंददास ने कीर्तन के स्फुट पदों की रचना तो की ही, किन्तु इसके साथ ही उन्होंने अनेक ग्रंथो का निर्माण भी किया । उनकी प्रामाणिक रचनाएं इस प्रकार हैं[१] :
रास पंचाध्यायी, भंवरगीत, श्यामसगाई, गोवर्द्धन लीला, दशम-स्कन्ध भाषा, रुक्मिणी-मंगल, रूप मंजरी, विरह मंजरी, सुदामा चरित्र, मान मंजरी, अनेकार्थ मंजरी, रस मंजरी सिद्धान्त पंचाध्यायी, पदावली ।

चतुर्भुजदास -- चतुर्भुजदास का जन्म १५९७ वि० तथा निधन १६४२ वि० में हुआ ।[२] ये कुंभनदास के पुत्र थे तथा जन्म के कुछ समय उपरान्त ही इन्हें गों विट्ठलनाथ की शरण में दे दिया गया था । जन्म से मृत्यु पर्यंत चतुर्भुजदास का समस्त जीवन श्रीनाथजी की एकनिष्ट भाव से सेवा और उनका भजन कीर्तन करने में ही व्यतीत हुआ । कृष्ण-लीला का वर्णन ये सूरदास के समान ही करते थे । इनके पद अधिकतर कृष्ण के क्रिया-कलापों से ही सम्बन्धित हैं । खोज रिपोर्टों में चतुर्भुदास की रचना के रूप में, मधुमालती भक्ति प्रताप, द्वादस यश तथा हितुजु को मंगल, को माना गया है , जो वस्तुत: राधा-वल्लभी सम्प्रदाय के चतुर्भुदास की हैं ।[३] डा० दीनदयाल गुप्त ने दान लीला और पदों को ही कवि की प्रामाणिक रचना माना है । दानलीला कवि का एक लम्बा पद है ।[४] इनके पदों का प्रकाशन कांकरोली से हो चुका है ।

गोविंद स्वामी -- गोविन्द स्वामी का जन्म १५६२ वि० में भरतपुर के आंतरी ग्राम में हुआ था तथा गोलोकवास १६४२ वि० में हुआ ।[५] ये जाति के सनाढ्य ब्राह्मण थे । गृहस्थ त्याग के अनन्तर ब्रज में गोकुल के समीप महावन-ग्राम में ऊंचे टीले पर रहते

१- अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय, पृ० ३७४
२- वही०, पृ० २६५-६६
३- गुजराती और ब्रजभाषा कृष्णकाव्य का तुलनात्मक अध्ययन, पृ० ३४
४- अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय , पृ० ३८५
५- वही० पृ० २७२

थे । १५९२ वि० में गो० विट्ठलनाथ जी के अलौकिक चरित्र और उनकी भगवद्भक्ति से आकर्षित होकर गोविंदस्वामी गोकुल आये और गोसाईं जी के सेवक होकर पुष्टि-सम्प्रदाय में सम्मिलित हो गये ।[1] दीक्षित होने के बाद ये महावन से गोवर्धन चले गये और वहाँ पर स्थायी रूप से रहने लगे । गोवर्धन में श्रीनाथजी की भक्ति और कीर्तन सेवा करते हुए इन्होंने अपने जीवन को सार्थक किया । संगीत कला में ये इतने निपुण थे कि हरिदास स्वामी के शिष्य तानसेन प्रायः इनसे गाना सीखने आया करते थे । गोविंदस्वामी ने कोई ग्रंथ विशेष नहीं लिखा । स्फुट पद-रचना ही की है । जिनका प्रकाशन कांकरोली से हो चुका है जिसमें ५७४ पद संकलित हैं । इनके पद यद्यपि कृष्ण की अनेक लीलाओं से सम्बद्ध हैं फिर भी कुंज-लीला और किशोर-लीला के पद विशेष रूप से प्राप्त होते हैं ।

छीतस्वामी --- छीतस्वामी का जन्म लगभग १५६७ वि० तथा गोलोकवास १६४२वि० फाल्गुन कृष्ण ८ है ।[2] ये जाति के चतुर्वेद ब्राह्मण और मथुरा के निवासी थे । पुष्टि-मार्ग में दीक्षित होने से पूर्व ये पौरोहित्य वृत्ति से जीवन निर्वाह करते थे । बीरबलके ये पंडा थे । १५९२ वि० के लगभग छीतस्वामी का पुष्टि-मार्ग में प्रवेश माना जाता है ।[3] स्फुट पदों के अतिरिक्त छीतस्वामी की कोई सम्बद्ध रचना उपलब्ध नहीं होती कांकरोली से इनके पदों का प्रकाशन हुआ है जिसमें पदों की संख्या २०१ है । विषय की दृष्टि से इन पदों की स्थिति अष्टछाप के अन्य कवियों की पदावली के ही समान है । कृष्णलीला से संबंधित सभी विषयों पर पद प्राप्त होते हैं ।

कटहरिया --- २५२ वैष्णवों की वार्ता अनुसार[4] यह गुजरात(काठियावाड़) के क्षत्रिय थे । अपने जीवन के प्रारम्भ में यह डाकुओं के एक दल के नेता थे । एक बार जब गोँ० विट्ठलनाथ द्वारका यात्रा पर गये हुए थे, तभी इन्होंने महाप्रभु के दर्शन किए

१- अष्टछाप परिचय, पृ० २४३

२- अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय , पृ० २७८

३- छीतस्वामी, भूमिका पृ० १३

४- २५२ वैष्णव की वार्ता,तृतीय भाग, पृ० २४३

और उनकी शरण में आए । इनका समय ईसा की १७ वीं० शताब्दी है । इनके नाम के दो अंश हैं । कट, हरिया । कट शब्द कटिहारे क्षत्रिय का संक्षिप्त रूप है । इनके पद जनहरिया और कटहरिया दो छापों से प्राप्त होते हैं ।[१]

कान्हरदास -- यह अहमदाबाद के निवासी थे तथा गृहस्थ थे । सपरिवार सहित वैष्णवों का सत्कार किया करते थे । इनके कवि होने के विषय में तो कोई उल्लेख नहीं प्राप्त होता, किन्तु सम्प्रदाय में इनके पद प्रचलित हैं तथा कीर्तन-संग्रहों में प्राप्त[२] होते हैं । कान, कहान, अथवा कान्ह नामक एक अन्य कवि का उल्लेख मिलता है जो राधनपुर(गुजरात) के रहने वाले थे । दीन दरवेश से एक कुंडली की रचना पर इनका वि विवाद उल्लेखनीय है ।[3] अत: ऐसी स्थिति में यह कहना असंभव है कि खोज में प्राप्त पद किस कवि के हैं ।

जन-भगवान --- २५२ वैष्णव की वार्ता अनुसार ये दोनों भाई गोरखा क्षत्री थे तथा गोकुल में रहते थे ।[४] अपने बाल्यकाल में ही ये गोसाईं जी की शरण में आ चुके थे । गृहस्थ होते हुए भी यह विरक्त दशा में रहते थे । जन बड़े भाई तथा भगवानदास छोटे भाई थे । यह दोनों इसी संयुक्त नाम से काव्य-रचना करते थे ।

श्री काका वल्लभ जी -- ये गो० हरिराय जी के शिष्य थे । इनका समय १७०३ वि० है । हरिराय जी के प्रभाव से इनमें दास भाव की प्रधानता थी ।[५] इन्होंने श्रीवल्लभ, श्रीवल्लभदास, और दास[६] छाप या उपनाम से काव्य-रचना की है । एक अन्य द्वारका दास का उल्लेख मिलता है जो " दास " छाप से काव्य-रचना करते थे ।[७]

१- वार्ता साहित्य, पृ० २५६

२- वही०, पृ० २५६

३- पोद्दार अभिनन्दन ग्रंथ, पृ० ४३०

४- २५२ वैष्णव की वार्ता, द्वितीय, पृ० १२३

५- वार्ता साहित्य, पृ० १२२

६- पोद्दार अभिनन्दन ग्रंथ, पृ० ३६३

७- वही, पृ० ३६२

श्री द्वारिकेश जी -- गो० विट्ठलनाथ जी के तीसरे पुत्र श्री बालकृष्ण जी के यह प्रथम पुत्र थे। इनका जन्म १६२६ वि० वैशाख सुदी १४ को गोकुल में हुआ था। १६ वर्ष की अवस्था में यह श्री द्वारकाधीश की गद्दी पर बैठे। सेवा प्रकरण संबंधित एक ग्रंथ आपने लिखा जो " श्री द्वारिकेश जी नी भावना " नाम से प्रसिद्ध है। जिसमें ब्रजभाषा तथा गुजराती में धौल पद आदि हैं।[१]

श्री ब्रजोत्सव जी -- गो० विट्ठलनाथ के प्रपौत्र श्री रमणलाल जी के यहां १७१६वि० को आपका जन्म हुआ था। आपके पितामह श्री चाचा गोपेश्वर जी तथा पर पितामह श्री घनश्यामलाल जी थे। जो गो० विट्ठलनाथ के सातवें पुत्र थे। आपने गुजराती तथा ब्रजभाषा में धौल,कीर्तनों आदि की रचना की है। कीर्तनों में इनकी छाप " ब्रजजन " " ब्रजपति " आदि प्राप्त होती है।[२]

श्री चन्द्रप्रिया बेटी जी -- इनके विषय में अधिक विवरण नहीं प्राप्त होता है। आप काशी के गो० श्री १०८ श्री जीवनलाल महाराज की छोटी बेटी थीं। कीर्तनों में आपकी छाप " दासी " प्राप्त होती है।[3]

गो० श्री विट्ठलनाथ व गंगाबाई --- प्राप्त पदों में " श्री विट्ठल गिरिधरन " छाप से जो पद प्राप्त होते हैं उन्हें किसी एक व्यक्ति की रचना कहना असंभव है। क्योंकि इसी एक नाम से दो भिन्न कवियों ने काव्य रचना की है -
गो० विट्ठलनाथ - आपका जन्म १५७२ वि०(गुज०) मागसर वदी ६ को चुनार में हुआ था। १५८० वि० में काशी में श्री मधुसूदन सरस्वती के पास अध्ययन के लिए गए। श्री वल्लभाचार्य के लीला प्रवेश के बाद आप ही उनकी गद्दी पर कुछ समय के पश्चात बैठे। पुष्टिमार्ग के प्रसार तथा प्रचार के लिए आपने कई बार ब्रज और गुजरात की

१- श्री वल्लभ वंश पद वचनामृत, पृ० ४७
२- वही , पृ० २८०
३- वही , पृ० २८६
४-

यात्रा की । पुष्टि वैष्णवसमाज में आप साक्षात ईश्वर रूप ही समझे जाते हैं । कई स्थानों पर आपने अपनी बैठकें स्थापित कीं । ७० वर्ष और २८ दिन इस संसार में रहने के पश्चात १६४४ वि० में श्री गिरिराज की गुफा में प्रवेशकर भौतिकलीला समाप्त की । आपने गुजराती, ब्रज, और संस्कृत में काव्य रचनाएं की हैं । कीर्तनों में आपकी छाप ' श्री विट्ठल गिरिधरन ' प्राप्त होती है ।[१]

गंगाबाई :- वल्लभ सम्प्रदाय की कवियत्रियों में गंगाबाई का स्थान प्रमुख है । इनका जन्म १६२८ वि० में मथुरा के पास महावन में हुआ था । २५२ वैष्णवों की वार्तानुसार आप क्षत्राणी थीं । क्योंकि उसमें ' गंगाबाई क्षत्राणी ' ऐसा नाम देकर आपकी वार्ता लिखी हुई हैं । आपने गो० विट्ठलनाथ से दीक्षा ली थी । वार्तानुसार १७३६ वि० में श्री नाथ जी ने अपनी लीला में इन्हें अंगीकार कर लिया । आपने ब्रज, मेवाड़ी, और गुजराती भाषा में सैकड़ों पदों की रचना की है ।[२] कीर्तनों में आपकी छाप ' श्री विट्ठल गिरिधरन हो मिलती है ।

दयाल -- वार्ता के डाकोर संस्करण में इनका उल्लेख मिलता है । (८० वीं वार्ता) यह राजनगर के निवासी थे । माइला कोठारी के सत्संग से यहां गो० विट्ठलनाथ के शरण में आए । इनके पद सम्प्रदाय में प्रचलित हैं ।

मदन मोहन :-- वल्लभ सम्प्रदाय के आंठवीं पीढ़ी में लाल जी के प्रपौत्र मदन मोहन जी थे । इन्होंने दशमस्कंध, विरह के पद, तथा मांझ आदि लिखे हैं ।[३]

विष्णुदास-- ये आगरे के एक छीपा के यहां उत्पन्न हुए थे ।[४] इनका समय १५६७ से १६८० वि० माना जाता है । ये कपड़े बेचते थे किन्तु शरण में आने के बाद इन्होंने पौरिया की सेवा स्वीकार कर ली ।

१- श्री वल्लभ वंश पद्य वचनामृत, पृ० १२
२- वही, पृ० २७
३- ब्रज का इतिहास (द्वितीय खंड) पृ० २८८
४- वार्ता साहित्य, पृ० २४६

रामदास -- रामदास नामक विभिन्न व्यक्तियों के उल्लेख प्राप्त होते हैं। मिश्रबंधुओं ने रामदास नामक दो व्यक्तियों का उल्लेख किया है- रामदास और रामदासबबाबा[1]। भक्तमाल में भी दो रामदासों का उल्लेख मिलता है। एक का नाम छीतस्वामी, गदाधर,गोविंद आदि के साथ आया है।[2] एक रामदास रामसनेही पंथ के हैं जिनका रचनाकाल १८०६-१८२१ वि० है।[3] वार्ताओं में भी कई रामदास व्यक्तियों का उल्लेख है। एक रामदास बड़े का उल्लेख कृष्णदास अधिकारी की वार्ता में आया है। ये सांचोरा ब्राह्मण थे।[4] दूसरे रामदास खंभाइच के २५२ वैष्णव की वार्ता के ६५ वैष्णव हैं जो गुसाईं जी की जूठन का महाप्रसाद लेते थे। इनके कवि होने की संभावना है क्योंकि ये कीर्तन करते थे।[5] एक अन्य रामदास जो मेवाड़ के रहने वाले थे,तथा डाकोर में महाप्रभु जी की शरण आए थे। यह मीरां के समकालीन थे। अतः इनका समय १५५५-१६०० वि० के आसपास तक ठहरता है।[6] पदों में रामदास नाम ही प्रयुक्त करते थे। एक रामदास लखावन ग्राम के निवासी थे। ये पहले रामानंदी वैष्णव थे,बाद में श्री कृष्णचन्द्र जी के शिष्य बने। आपके दो ग्रंथ मिलते हैं - भक्त सुयश,सेवक यश।[7] ऐसी स्थिति में यह कहना कि किस रामदास के पद गुजराती हस्तलिखित पद-संग्रहों में प्राप्त हुए हैं, असंभव है।

श्री हरिराय -- हरिराय जी गो० विट्ठलनाथ जी के प्रपौत्र और गो० कल्याण राय जी के पुत्र थे। इनका जन्म १६४७ वि० को ब्रज में (गोकुल) में हुआ था। इनकी संस्कृत में तो अनेक रचनाएं मिलती हैं किन्तु ब्रजभाषा में स्फुट पद,कवित्त,धौल आदि ही प्राप्त हैं जिनमें दैन्य भाव तथा वल्लभ यश वर्णन की प्रधानता है। हरिराय

१- मिश्रबंधु विनोद, पृ० ३२२

२ - भक्तमाल, १४६,१६६

३- ब्रज का इतिहास, पृ० २२६

४- वार्ता साहित्य, पृ० ३१४

५- वही, पृ० ३१४

६- वार्ता साहित्य , पृ० २५०

७- राधावल्लभ भक्तमाल , पृ० २६७

जी अपने पदों में रसिक,रसिकदास,रसिकप्रीतम,और कहीं-कहीं हरिदास छाप देते थे ।[१]

तुलसीदास(अलघरिया)-- ये सारस्वत ब्राह्मण थे । इनका पालन-पोषण श्री गुंसाईं जी ने पुत्रवत ही किया था । इनका समय १६०८-१६४२ वि० है । पदों में "लालदास" नाम की छाप देते थे ।[२]

मथुरादास-- यह मथुरादास कोठाकुठारी के ही हैं (वार्ता सं० १०) यह पद कर्ता और कवि थे । इन्होंने बहुत से पदों की रचना की है ।[३] पदों में " मथुरा " छाप ही प्रयुक्त की है ।

हरजीवन -- ये राजनगर(गुजरात) से कुछ दूर किसी ग्राम के रहने वाले जाति के बनिए थे ।[४] इनके पिता राजनगर हाकिम के यहां कोठारी के मालिक थे । संस्कृत में श्री विट्ठलसहस्र नाम का ग्रंथ कांकरोली में है तथा हिन्दी के पदों की भी रचना की है जो साम्प्रदायिक कीर्तनग्रंथों में प्राप्त होते हैं ।

मेहा -- २५२ वैष्णव की वार्ता के अनुसार यह गोपालपुर ग्राम के निवासी थे ।[५] जाति के धीमर थे तथा गुंसाईं जी की शरण में यह पत्नी सहित आए थे ।

१- श्री हरिराय जी , पृ० २१

२- पोद्दार अभिनन्दन ग्रंथ , पृ० २५६

३- वार्ता साहित्य , पृ० ३०६

४- वही , पृ० २५२

५- २५२ वैष्णव की वार्ता,द्वितीय खंड, पृ० २५०

घोंधी -- २५२ वैष्णव की वार्ता के अनुसार यह आगरा और दिल्ली के मध्य किसी ग्राम में किसी ऊंची जाति वाले के यहां उत्पन्न हुए थे ।[1] बाल्यकाल में ही गुंसाईं जी की शरण में आ गए थे । इनके पद कीर्तन संग्रहों में प्राप्त होते हैं ।

माधवदासदलाल-- ये खंभाइच के रहने वाले थे । इनका समय १६००वि० माना जाता है । चाचा हरिवंश के साथ यह शरण में आए थे । वार्ता के उद्धरण से ये कवि रूप में प्रसिद्ध हैं ।[2]

मानकचंद -- ये आगरे के एक जैन थे और राजदरबार में इनका सम्मान था । इनका समय १५६५-१६४० वि० माना जाता है ।[3]

रामराय हित भगवान दास -- २५२ वैष्णव की वार्ता में इनका उल्लेख मिलता है ।[4] श्री भगवानदास, रामराय की कृपा से गुंसाईं जी के शरणागत हुए थे । इनका समय अकबर का उत्तरार्ध और जहांगीर शासन का पूर्वार्द्ध माना जाता है ।कविता में " भगवानहित रामराय " है । यह दोनों भिन्न व्यक्ति हैं । जहां पहले रामराय है वह पद उनका है और जहां भगवान पूर्व में है वह पद भगवान दास का है । इन दोनों के पद वार्ता के कथन को पुष्टि करते हैं कि ये दोनों मिलकर रचना करते थे । भगवानदास पहले राधावल्लभ सम्प्रदाय ~~में थे~~ के अनुयायी थे ।

श्री रघुनाथ -- यह श्री गुसाईं जी के पुत्र थे । इनका समय १६११ से १६६० वि० है । सम्प्रदाय में ये बहुत बड़े ग्रंथकार के रूप में प्रसिद्ध हैं । संस्कृत के साथ ब्रजभाषा में भी काव्य-रचना करते थे, जो कीर्तन संग्रहों में प्राप्त हैं ।[5]

१- २५२ वैष्णव की वार्ता (तृतीय भाग), पृ०२८४

२- वार्ता साहित्य , पृ० ३०८

३- वही , पृ० ३०३

४- २५२ वैष्णव की वार्ता, तृतीय भाग, पृ० ३६६

५- वार्ता साहित्य, पृ० ३६३

यादवेन्द्र -- २५२ वैष्णव की वार्ता के अनुसार[1] यह जाति के छत्री और आगरे में रहते थे । संतदास के प्रभाव से शरण में आए थे ।

हृषिकेश-- यह आगरे के रहने वाले और जाति के छत्री थे । रूपचंद नन्दा के यहाँ इनको श्री गुंसाईं जी के दर्शन हुए थे । घोड़ों की दलाली करते थे ।[2]

स्यामदास-- वार्ता के अनुसार ये जाति के आंजना कुनबी और गुजरात के निवासी थे । इन्होंने अपने ही ग्राम में गुंसाईं जी के दर्शन किये थे[3] । इनके कवि होने का कोई उल्लेख नहीं मिलता है ।

पद्मनाभदास -- ये जाति के ब्राह्मण थे और कन्नौज के निवासी थे । वार्ता साहित्य के अनुसार इनका समय १५८६ से १६३४ वि० है । इनके लगभग ४० पद सम्प्रदाय में अधिक प्रसिद्ध हैं ।

राजा आसकरन-- ये कछवाहे पृथ्वीसिंह के वंशज,भीमसिंह के पुत्र और नरवरगढ़ के राज थे । इनका समय १६०७ वि० माना जाता है ।[5] इनके विभिन्न पदों का संकलन कीर्तन संग्रहों में है ।

चैतन्य सम्प्रदाय

गुजरात में चैतन्य सम्प्रदाय का प्रचार बहुत कम हुआ, जिसके फलस्वरूप कुछ प्रमुख कवियों के ही पद गुजरात पहुंच सके, जिनमें गदाधर भट्ट,सूरदास मदनमोहन , और वल्लभ रसिक आदि कवि हैं । इन कवियों के पद भी गुजराती हस्तलिखित पद-संग्रहों में कम मात्रा में ही उपलब्ध हुए हैं ।

१- २५२ वैष्णव की वार्ता,तृतीय खंड पृ० ३०४

२- वार्ता साहित्य , पृ० ३१७

३- २५२ वैष्णव की वार्ता, तृतीय खंड , पृ० ३४५

४- वार्ता साहित्य , पृ० २४४

५- वही, पृ० २५२

गदाधर भट्ट -- पं० रामचन्द्र शुक्ल ने इनका रचना काल १५८० से १६०० वि० के पीछे तक माना है।[१] यह जीव गोस्वामी के शिष्य थे। यह प्रसिद्ध है कि ये चैतन्य महाप्रभु को भागवत सुनाया करते थे। ये दक्षिणी ब्राह्मण थे और वृन्दावन में निवास करते थे। "मोहनीवाणी श्री गदाधर भट्ट जी की" के नाम से इनकी वाणी प्रकाशित हो चुकी है। जिसमें पदों की संख्या ८० है।[२] ये पद विषय की दृष्टि से रास लीला, मान लीला, दान लीला, से संबंधित हैं।[३]

सूरदास मदनमोहन-- शुक्ल जी ने इनका कविताकाल सं० १५९०-१६०० के लगभग माना है।[४] ये सनातन गोस्वामी के शिष्य थे। ये अकबर के राज्य कर्मचारी थे। कहा जाता है कि इन्होंने अकबर के खजाने के १३ लाख रुपये साधु-सेवा में खर्च कर दिए और व्रन्दावन चले गए। ये गायन और काव्य में पारंगत थे। "सुहृत वाणी श्री श्री सूरदास मदनमोहन की" नामक प्रकाशित पुस्तक में इनके १०५ स्फुट पद उपलब्ध होते हैं।[५] श्री प्रभुदयाल मीतल ने भी इनके पदों का एक संग्रह प्रकाशित किया है।

वल्लभ रसिक -- वल्लभ रसिक षड्गोस्वामियों में से गो० रघुनाथ भट्ट के शिष्य गदाधर भट्ट के पुत्र थे। इनका कविताकाल १७ वीं शती माना गया है।[६] इनका संगृहीत काव्य बाबा कृष्णदास द्वारा "वाणी वल्लभरसिक जी की" के नाम से प्रकाशित है।

राधावल्लभ सम्प्रदाय

गुजरात में वल्लभ सम्प्रदाय के प्रचार के पूर्व राधावल्लभ सम्प्रदाय का कुछ प्रभाव था किन्तु बाद में वल्लभ सम्प्रदाय के अधिक प्रचार और प्रसार के कारण राधावल्लभ

१- हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० १८२

२- गुजराती और व्रजभाषा कृष्णकाव्य का तुलनात्मक अध्ययन, पृ० ३६

३- व्रज का इतिहास, पृ० २४६

४- हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० १८७

५- गुजराती और व्रजभाषा कृष्णकाव्य का तुलनात्मक अध्ययन, पृ० ३६

६- वही, पृ० ६१

सम्प्रदाय अधिक लोकप्रिय न हो सका । फिर भी कुछ स्थानों पर आज भी राधावल्लभ सम्प्रदाय के मंदिर और अनुयायी मिलते हैं । श्री हित हरिवंश ,हरिराम व्यास, हित रूपलाल,हित दामोदर, नागरीदास,गो० किशोरी लाल जी, चन्द्रसखी आदि भक्त कवियों के पद गुजरात में अधिक लोकप्रिय हुए । जिसके फलस्वरूप गुजराती हस्तलिखित पद-संग्रहों में उनका संकलन किया गया ।

श्री हित हरिवंश--श्री हित हरिवंश जी राधावल्लभ सम्प्रदाय के संस्थापक थे । इनके पिता व्यास जी महाराज देववन स्थान के निवासी थे । इनका समय १५९६ से १६२२ वि० माना जाता है ।[१] ब्रजभाषा में की गई इनकी रचनाएं अत्यन्त ही मधुर हैं ,इसीलिए इन्हें श्रीकृष्ण की वंशी का अवतार भी माना जाता है । इनकी दो रचनाएं प्राप्त हैं - श्री हित चौरासी , श्री हित स्फुटवाणी जी ।

इनमें राधा कृष्ण के अनुराग संभोग,कुंजक्रीड़ा, रास,मान,नखशिख,और कृष्ण भक्ति की महत्ता का गायन किया गया है ।

हरिराम व्यास-- इनका जन्म ओरछा में १५६७ वि० के लगभग हुआ था ।[२] वृंदावन आकर यह हित जी के शिष्य हुए और आजीवन यहीं रहे । १६५० वि० के लगभग इनका देहावसान हो गया । व्यास जी उच्चकोटि के संत कवि थे । ब्रजभाषा के साथ संस्कृत में भी आपने रचना की । " व्यासवाणी " ब्रजभाषा की प्रमुख रचना है, जिसमें ७५६ पद एवं १४६ दोहे हैं ।

हित रूपलाल -- इनका जन्म १७३८ वि० वैशाख कृष्ण सप्तमी को हुआ था । यह उच्चकोटि के रसिक महानुभाव और जन्मजात कवि थे । इनके जीवन का उत्तरकाल जयपुर के राजा जयसिंह प्रथम के साथ संघर्ष में व्यतीत हुआ था । राजा जयसिंह ने राधावल्लभीय सम्प्रदाय को अवैदिक घोषित करके उसे युग में उनके सामने एक बहुत बड़ी चुनौती खड़ी कर दी थी । जिसका समुचित उत्तर उन्होंने तथा उनके शिष्यों ने दिया ।

१- हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास , पृ० ५६१

२- गुजराती और ब्रजभाषा कृष्णकाव्य का तुलनात्मक अध्ययन, पृ० ३५

गो० रूपलाल कृत पर्याप्त साहित्य प्राप्त है । उनके " प्रथम विजय चौरासी " और " द्वितीय विजय चौरासी " नामक दो पद-संग्रह प्राप्त होते हैं । इसके अतिरिक्त उनकी छोटी बड़ी कुल ८३ रचनाएं भी बतलाई गई हैं ।[१] चाचा जी ने इनका निकुंज गमन १८०१ वि० लिखा है ।[२] एक अन्य उल्लेख के अनुसार ये १६४० वि० के आसपास उपस्थित थे ।[३]

हित दामोदर -- गोंडवाना प्रदेश (जबलपुर) में गढ़ा नामक एक प्रसिद्ध ग्राम था । वहां के एक प्रसिद्ध ब्राह्मण परिवार में श्री दामोदर दास का जन्म हुआ था । स्नातक जी के मतानुसार इनका समय १५७७ वि० से १६१० वि० है ।[४]

नागरीदास -- आपका जन्म बेरछा नगर के एक पंवार क्षत्रिय कुल में हुआ था । पीछे इनका संपर्क चतुर्भुजस्वामी से हुआ । उनके माध्यम से यह वनचन्द्र जी की शरण में आये। आप अधिकांश राधा जी के जन्म स्थान बरसाने में ही रहते थे । वहां की मोरकुटी आपका ही स्थान है । स्नातक जी ने इनका समय १५६० वि० के आसपास माना है ।[५]

गो० किशोरी लाल जी -- राधावल्लभ भक्तमाल में दो किशोरीलाल का उल्लेख मिलता है । प्रथम[६] श्री गो० रूपलाल जी के पुत्र थे जिन्होंने प्रेम लक्षणा भक्ति का प्रकाश कर बहुत से जीवों को भगवत संमुख किया । दूसरे[७] गो० किशोरीलाल का जन्म-समय १६२८ वि० है । आपके पिता श्री हरिलाल जी आपको ढाई वर्ष की अवस्था में छोड़कर निकुंजगामी हुए । उस समय इनके लालन-पालन का भार गो० चन्द्रलाल जी ने किया, जो कि इनके बाबा के भाई होते थे । आप श्री राधावल्लभ लाल में बड़ी

१- अप्रकाशित शोध प्रबंध, हिन्दी कृष्ण भक्ति काव्य, पृ० १३२
२- श्री हित हरिवंश गो० , पृ० ४८६
३- हिन्दी और बंगाली वैष्णव कवि , पृ० १२०
४- राधावल्लभ सम्प्रदाय सिद्धान्त और साहित्य ,पृ० ३४६
५- वही , पृ० ४७६
६- राधावल्लभ भक्तमाल , पृ० १२७
७- वही पृ० १४०

निष्ठा रखते थे । आपने बहुत से पदों का निर्माण किया ।

चन्द्रसखी -- इनका जन्म १७०० वि० के लगभग संभवत: ओड़छा में हुआ था । अपने जीवन के प्रारम्भ में यह नौढ थाने के थानेदार थे किन्तु कालांतर में यह विरक्त हो गए और घर-बार छोड़कर वृन्दावन में रहने लगे । यहीं पर राधावल्लभ सम्प्रदाय के बालकृष्ण स्वामी से दीक्षा ली । १७६० वि० के लगभग ओड़छा में इनका स्वर्गवास हो गया । इन्होंने भजन, लोकगीत,और पदों का निर्माण किया, जो आज भी ब्रज, बुंदेलखंड,मरावर,मालवा,निमाड़,आदि स्थानों पर स्त्रियों द्वारा गाए जाते हैं ।[१]

हरिदासी सम्प्रदाय

स्वामी हरिदास -- निम्बार्क माधुरी के अनुसार इनका जन्म स्थान वृन्दावन के समीप राधापुर ग्राम है । पिता का नाम गंगाधर तथा माता का नाम चित्रादेवी था। श्री आशुधीर जी इनके दीक्षा गुरु थे । ये हरिदासी सम्प्रदाय के प्रवर्तक और प्रसिद्ध गायक भक्त थे । कहा जाता है कि ये तानसेन के गुरु थे । इनका आविर्भाव काल १६१७ वि० के लगभग है ।[३] क्योंकि ये अकबर के समकालीन थे । इनकी दो रचनाएं पदावली के रूप में उपलब्ध होती हैं । पहली रचना " सिद्धान्त के पद " है जिसमें १८ पद तथा दूसरी रचना " केलिमाल " में १०८ पद हैं । इनमें राधाकृष्ण के नित्य विहार,नखशिख,मान,दान,आदि वर्णित है ।[४]

विट्ठल विपुल -- यह पारिवारिक संबंध के नाते श्री हरिदास जी के मामा के पुत्र थे ।[५] श्री हरिदास जी से इन्होंने दीक्षा भी ली थी । उनकी मृत्युपरांत १६३१वि० में गद्दी पर बैठे । श्री विट्ठलविपुल जी ने लगभग ४० सुन्दर पदों की रचना की है , जिनमें राधा-कृष्ण के नित्य-विहार सम्बन्धी विषयों का वर्णन है ।

१- चन्द्रसखी की जीवनी और पदावली , पृ० ४७-५०

२- निम्बार्क माधुरी, पृ० १६२

३- हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास , पृ० ५६०

४- गुजराती और ब्रजभाषा कृष्णकाव्य का तुलनात्मक अध्ययन , पृ० ३८

५- निम्बार्क माधुरी , पृ० २२४

रामानंद सम्प्रदाय

गुजरात में कृष्ण भक्ति के साथ ही राम भक्ति का भी प्रचार हुआ । स्वयं गुजराती कवियों ने कृष्ण के साथ ही राम के विषय में भी काव्य-रचना की । उत्तर भारत के राम भक्त कवियों के पदों का प्रचार गुजरात में हुआ और वहां के संकलन-कर्त्ताओं ने अन्य पदों के साथ ही इन पदों को भी संकलित किया। रामानंद, गो० तुलसीदास, अग्रदास, प्रागदास, धन्ना भगत रामसेवक , आदि भक्त कवियों के पदों का गुजरात में प्रचार हुआ ।

<u>रामानंद</u> -- प्रयाग के किसी कान्यकुब्ज ब्राह्मण के परिवार में आपका जन्म हुआ था । डा० वर्मा इनका समय सं० १४५५ और १४८४ के पूर्व मानते हैं ।[१] यह स्मार्त वैष्णव थे । संस्कृत के विद्वान होने के साथ ही इन्होंने हिन्दी में भी पद-रचना की ।

<u>गो० तुलसीदास</u> -- गो० तुलसीदास का समय १५८६ से १६८० वि० माना जाता है ।[२] इनका जन्म एक अच्छे ब्राह्मण कुल में हुआ था । बालपन कठिनाइयों में व्यतीत हुआ । इनके भोजनाच्छादन की कुछ संतोषजनक व्यवस्था तब हुई जब इन्हें किसी हनुमान मंदिर में आश्रय मिला । कुछ समय के पश्चात इन्होंने राम भक्ति की दीक्षा ली । एक बार पत्नी की ज्ञान भरी फटकार का इनके हृदय पर इतना प्रभाव पड़ा कि ये सारा घर-बार छोड़कर विरक्त हो गए । विरक्त अवस्था में इन्होंने कई स्थानों की यात्राएं कीं । रामचरित मानस की रचना १६३१ वि० में अयोध्या में आरम्भ की । अंत में ये काशी में रहे और वहीं इनका निधन हुआ ।

इनकी प्रमुख रचनाएं इस प्रकार हैं - रामचरित मानस, रामलला नहछू, जानकी-मंगल, पार्वती मंगल, रामाज्ञा प्रश्न, गीतावली, कृष्णगीतावली, विनयपत्रिका, कवितावली, दोहावली, हनुमान बाहुक । किन्तु एक स्थान पर इनके ३६ ग्रंथों की भी सूचना मिलती है ।[३]

१- हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास , पृ० २२१

२- तुलसीदास , पृ० १०६-१११

३- हिन्दी साहित्य कोष , भाग २ पृ० २१६

अग्रदास-- स्वामी अग्रदास का आविर्भाव राजस्थान के किसी ग्राम में १६ वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में हुआ था ।[1] ये गलता(जयपुर) निवासी प्रसिद्ध भक्तमाल के लेखक नाभादास के गुरु थे । इन्होंने रैवासा में जानकी वल्लभ की रहस्योपासना की थी । इनको लोग जनक लली की अग्रसहचरी कहा करते थे । इनके प्रमुख ग्रंथ हैं - ध्यान मंजरी या राम ध्यान मंजरी, कुण्डलियां,श्रृंगार रससागर,अष्टयाम(संस्कृत में) अग्रदास का विशेष महत्त्व रामभक्ति में माधुर्य-भाव के प्रवर्तक के रूप में है ।[2]

प्रागदास-- नाभा जी का एक विवरण मिलता है कि अग्रदेव की कृपा से प्रयागदास की भक्ति पूरी पड़ गई । मन,वचन,कर्म से ये भगवान और भक्त दोनों की सेवा करते थे । ये सूर किशोर के शिष्य थे और इनकी भक्ति सख्यभाव की थी ।[3]

धन्ना भगत-- इनका जन्म १४७२ वि० में हुआ था ।[4] कबीर,पीपा आदि के साथ ही इनकी भी गणना रामानंद के प्रिय शिष्यों में की जाती है । इनका जन्म स्थान राजस्थान के टांक इलाके का धुअनगांव समझा जाता है । ये जाति के जाट थे ।

राम सेवक -- इनकी गिनती राम भक्ति के रसिक संतो में की जाती है । इनके संबंध में केवल इतना ही उल्लेख मिलता है कि ये प्रसादराम के शिष्य थे, और समस्तीपुर के निकट किसी ग्राम में रहते थे । विवाह लीला के आयोजन में इन्हें विशेष रुचि थी ।[5]

संत (निर्गुण) कवि

गुजरात में सगुण भक्ति के साथ ही निर्गुण भक्ति का भी प्रचार हुआ । गुजरात के कवि उत्तर भारत की निर्गुण विचारधारा से प्रभावित हुए, और उन्होंने इससे प्रेरणा लेकर गुजराती निर्गुण काव्य की सृजना की । इन निर्गुण कवियों में

१- राम भक्ति में रसिक सम्प्रदाय , पृ० ३८०

२- हिन्दी साहित्य कोश, भाग २ , पृ० ८

३-रामानंद सम्प्रदाय तथा हिन्दी पर उसका प्रभाव , पृ० २१२

४- हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास , पृ० २२२

कबीर,रैदास,धरमदास,मलूकदास,गरीबदास, और दादू दयाल मुख्य हैं । जिनके पदों का गुजरात में काफी प्रचार हुआ ।

कबीर -- कबीर का आविर्भाव विक्रम की १५ वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में हुआ । उनका जन्म ज्येष्ठ पूर्णिमा १४५५ वि०(१३९८ई०) माना जाता है । अनन्तदास रचित " श्री कबीर साहब की परिचई " से कबीरदास के सम्बन्ध में निम्न संकेत मिलते हैं[१] --

कबीर जुलाहे थे और काशी में निवास करते थे ।
वे गुरु रामानंद के शिष्य थे ।
बघेल राजा वीरसिंह देव कबीर के समकालीन थे ।
~~कबीर~~ सिकन्दरशाह का काशी में आगमन हुआ था, और उसने कबीर पर अत्याचार किये थे ।
कबीर ने १२० वर्ष की आयु पाई थी ।

कबीर ने काव्य-रचना फुटकर पद,साखियों,रमैनियों के रूप में की । इनकी रचनाओं के कई संकलन विभिन्न स्थानों से निकल चुके हैं, जिनमें हिन्दी परिषद (प्रयाग) से प्रकाशित ' कबीर ग्रंथावली ' नागरी प्रचारिणी सभा से प्रकाशित, कबीर ग्रंथावली, और कबीर वचनावली, बीजक (३२ संस्करण),श्री गुरु ग्रंथ साहब पर आधारित (पांच संस्करण)और कबीर की शब्दावली (ज्ञात संस्करण) प्रमुख हैं । गुजरात में कबीर के पदों का काफी प्रचार हुआ , जिसके फलस्वरूप वहां कबीर पंथ की स्थापना हुई ।

रैदास -- ये जाति के चमार तथा रामानंद के शिष्य और कबीर के समकालीन थे । इनका समय १४४५वि० से १५७५ वि० माना जाता है ।[२] इनका एक पंथ भी चला जिसे रैदासी पंथ कहते हैं । इस पंथ के अनुयायी गुजरात में बहुत हैं । बानी और पद इनके दो प्रधान ग्रंथ हैं ।

१- हिन्दी साहित्य कोश , भाग २ पृ० ६२

२- हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास , पृ० ३२४

धरमदास -- यह बांधवगढ़ के निवासी और जाति के कसौंधन वैश्य थे । यह कबीर के प्रधान शिष्य थे तथा इन्होंने कबीर पंथ की छत्तीसगढ़ शाखा चलाई । इनका जन्म १४७५ और १५०० वि० के मध्य और मृत्यु १६०० वि० है ।[1] इनकी बानियों का प्रकाशन " धनी धरमदास जी की बानी " नाम से हो चुका है ।[2]

मलूकदास-- इनका जन्म प्रयाग के "कड़ा "नामक स्थान पर हुआ था । इनका समय सं० १६३१ से १७३६ वि० तक माना जाता है ।[3] इनके पिता का नाम सुंदरदास खत्री था । इनकी रचनाओं की संख्या ६ बतलाई जाती है ।यथा- ज्ञानबोध,रतनखान, भक्त वच्छावली,भक्त विरुदावली,पुरुष विलास,दस रत्न ग्रंथ, गुरु प्रताप,अलखबानी, रामावतार लीला । मलूकदास जी की बानी नाम से इनके चुने हुए शब्दों एवं साखियों का एक संग्रह प्रकाशित है ।[4]

गरीबदास -- इनका जन्म छुड़ानी (रोहतक) में १७७४ वि० में हुआथा ।[5] यह जाति के जाट थे । ये कबीर के भक्त थे । इन्होंने अपनी बानियों में कबीर के विषय में लिखा है ।

दादू दयाल -- दादू दयाल का जन्म गुजरात प्रदेश में (अहमदाबाद) हुआ था । एक किंवदंती है कि साबरमती नदी में बहते हुए यह एक ब्राह्मण को मिले थे । इनका जन्म समय १६०१ वि० एवं मृत्यु १६६० वि० माना जाता है ।[6] दादू की समस्त रचनाओं की संख्या लगभग २० सहस्र की कही जाती है । जिसमें इनके पद,साखियां, और बानियां भी सम्मिलित हैं ।

१- हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास , पृ० २६८
२- उत्तर भारत की संत परम्परा , पृ० २७०
३- हिन्दी हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास , पृ० २७२
४- उत्तर भारत की संत परम्परा , पृ० ५०८-५०६
५- वही, पृ० २८६
६- वही , पृ० ४११

स्फुट कवि

जिन कवियों को किसी सम्प्रदाय विशेष से संबंधित नहीं किया जा सका उन्हें इस स्फुट वर्ग के अन्तर्गत रक्खा गया है । इनमें मीरांबाई, तानसेन, गंग आदि कवि हैं ।

मीरांबाई -- मीरांबाई, जोधपुर के संस्थापक सुप्रसिद्ध राठौड़ राव राजा जोधाजी के पुत्र राव दूदा जी के चतुर्थ पुत्र रत्नसिंह की एकमात्र संतान थीं । मीरांबाई का जन्म कुड़की ग्राम में १५५५ वि० के आसपास हुआ था । बाल्यावस्था में ही माता पिता का देहान्त हो जाने के कारण इनका पालन-पोषण इनके पितामह रावदूदा जी,ने किया । १५७३ वि० में इनका विवाह महाराणा सांगा के ज्येष्ठ पुत्र कुंवर भक्त भोजराज के साथ हुआ । किन्तु कुछ ही समय के पश्चात भोजराज का देहान्त हो गया पति के देहान्त हो जाने पर मीरां ने सारे लौकिक संबंधों के बंधन सहसा छिन्न भिन्न कर दिए और संसार से चित्त हटाकर गिरधर लाल के प्रति अनुरक्त हो गई । किन्तु परिवार वालों को मीरा की गिरधर के प्रति विशेष अनुरक्ति सहन नहीं हुई और महाराणा विक्रमाजीत सिंह ने मीरां को अनेक प्रकार के कष्ट दिए,जिन्हें मीरांने हंसते हुए झेला । कुछ समय पश्चात मीरा तीर्थयात्रा करती हुई वृन्दावन जा पहुंची । वहां पर जीव गोस्वामी से सत्संग किया । कुछ दिन वहां रहकर मीरां द्वारका पहुंची, और अपने जीवन के अन्तिम दिनों तक वहीं रहीं । लगभग १६०३ वि० में मीरां एक दिन श्री रणछोड़ जी की मूर्ति में सदेह समा गई ।

मीरां ने अपने वैधव्य जीवन में श्रीकृष्ण को रिझाने के लिए पदों की रचना की । विद्वानों ने मीरां के निम्न ग्रंथ माने हैं -

नरसी जी रो माहेरो, गीत गोविंद की टीका, राग गोविंद,सोरठ के पद, मीरां का मलार, गर्वागीत, फुटकर पद ।

उपर्युक्त ग्रंथों में से निश्चय ही कुछ अन्य कवियों की रचनाएं हैं । केवल पद ही मीरां की स्वाभाविक रचनाएं हैं । इन पदों में श्रीकृष्ण के प्रति प्रेम, विरह मिलन,आत्म-निवेदन, आदि भाव प्रधान हैं ।[१]

१- मीरांबाई की पदावली , पृ० ६-१६

तानसेन -- २५२ वैष्णव की वार्ता में इनका उल्लेख आया है ।[१] ग्वालियर निवासी तानसेन का वर्तमान काल १५७७ से १६४६ वि० तक माना जाता है । पहले यह जाति के ब्राह्मण थे, किन्तु बाद में मुसलमान हो गये थे । इनके पिता का नाम मकरंद पांडे था । गोविंद घाट पर इन्होंने गुसाईं जी को अपना पद सुनाया था । पश्चात तानसेन गोविंदस्वामी के साथ रहकर मार्ग की प्रणाली अनुसार कीर्तन सीखे थे । इनके किलग (लगन) के पदों से यह स्पष्ट होता है कि ये श्रीनाथ जी के यहां कीर्तन करते थे ।[२]

कवि गंग -- यह इकनौर(इटावा) के निवासी ब्रह्म भट्ट थे तथा अकबर के दरबार से स संबंधित थे । अत: इनका कविता काल १६५० वि० के लगभग माना जाता है ।[३] महाकवि श्री गंग के कवित्त नाम से इनकी रचनाओं का संग्रह प्रकाशित हो चुका है ।

हिन्दीतर भाषा भाषी कवि

इस वर्ग के अनन्तरगत ऐसे कवियों को स्थान दिया गया है जिनकी मातृभाषा मराठी या गुजराती है, परन्तु उन्होंने अपनी मातृभाषा के साथ ही हिन्दी में भी काव्य रचना की । नरसिंह मेहता, ब्रह्मानंद और नामदेव ऐसे ही कवि हैं ।

गुजराती

नरसिंह मेहता -- नरसिंह मेहता का जन्म १४६६-१४७१ वि० के मध्य जूनागढ़ के पास तलाजा नामक स्थान पर हुआ था किन्तु जीवन का अधिकांश भाग जूनागढ़ में ही व्यतीत हुआ । इनके पिता का नाम कृष्ण दामोदर और माता का नाम दयाकौर था । बचपन से ही साधु सेवा में अधिक प्रेम था । एक बार अपनी भाभी के एक वाक्य को सुनकर आप घरबार छोड़कर जंगल में तपश्चर्या करने लगे । ऐसी प्रसिद्धि है कि वहीं

१- २५२ वैष्णव की वार्ता, प्रथम भाग, पृ० ५१३

२- वार्ता साहित्य, पृ० २८१

३- हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास , पृ० ६०१

आपको श्रीकृष्ण के दर्शन हुए । १५७७ वि० में आपकी मृत्यु हुई ।[१] नरसी ने गुजराती के साथ ही ब्रजभाषा में भी काव्य-रचना की । इनकी समस्त रचनाओं की संख्या १४ है जो " नरसिंह मेहता कृत काव्य संग्रह " के नाम से प्रकाशित हो चुकी है ।[२]

<u>ब्रह्मानंद</u> -- गुजरात के स्वामी नारायण सम्प्रदाय के सर्वश्रेष्ठ कवि स्वामी ब्रह्मानंद का समय १७७२-१८३२ई० माना जाता है ।[३] इनका जन्म डूंगरपुर के खाण ग्राम में और शिक्षा-दीक्षा भुज की ब्रजभाषा पाठशाला में हुई । इनके बचपन का नाम लाडूबारोट,जवानी का नाम श्री रंग, और उत्तरावस्था का ब्रह्मानंद था । इन्होंने तीनों ही नामों से काव्य रचना की । हिन्दी में इन्होंने संप्रदाय प्रदीप,सुमति प्रकाश, उपदेश चिंतामणि, ब्रजविलास, और सैकड़ों संगीतात्मक स्फुट पदों की रचना की है ।

<u>मराठी</u>

<u>नामदेव</u> -- इनका जन्म महाराष्ट्र के सतारा जिले के नरसी बमनी ग्राम में १२७० ई० को हुआ था ।[४] इनके पिता का नाम दामाशेती तथा माता का नाम गोनाबाई था । ये जाति के छीपी थे । मराठी के साथ ही इन्होंने हिन्दी में भी काव्य रचना की । इसलिए वे हिन्दी साहित्य में भी कवि और संत के रूप में मान्य हैं । इनके अभंग आज भी सामान्य जनता में प्रेम से गाये जाते हैं ।

गुजराती हस्तलिखित पद-संग्रहों में उपर्युक्त विवेचित जिन कवियों के पद प्राप्त हुए हैं,उनसे यह सिद्ध होता है कि गुजरात में हिन्दी प्रदेश के पद-साहित्य की अनेकरूपता सुरक्षित रही । निर्गुण,सगुण,और साम्प्रदायिक भावना से युक्त पद गुजरात में समान रूप से लोकप्रिय हुए तथा संग्रहकर्ताओं ने उन्हें पद-संग्रहों में आदर पूर्वक संकलित करके अपनी उदार दृष्टि का परिचय दिया ।

१- वैष्णव धर्म नो संक्षिप्त इतिहास,पृ० ३७०-७२
२- गुजराती और ब्रजभाषा कृष्णकाव्य का तुलनात्मक अध्ययन, पृ० १३-१४
३- भावनगर कांग्रेस स्मृति ग्रंथ , पृ० ३१८
४- हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास , पृ० २१७

तृतीय खंड

प्राप्त पत्रों का आलोचनात्मक अध्ययन

अध्याय ५

उपलब्ध रूपों से तुलना

गुजराती हस्तलिखित पद-संग्रहों में प्राप्त पदों की तुलना जब हम उनके उपलब्ध प्रकाशित रूपों से करते हैं तो बहुत से पदों में तो एकरूपता प्राप्त होती है,किन्तु कुछ पदों में उल्लेखनीय अन्तर भी मिलते हैं,जो इस प्रकार हैं -

क- रचनाकार के नाम का अंतर

ख- चरणों की न्यूनाधिकता

ग- पाठ की अत्यधिक भिन्नता

क- रचनाकार के नाम का अंतर- प्राप्त पदों में से कुछ पदों की स्थिति ऐसी है कि उनके उपलब्ध रूपों से तुलना करने पर उनके कवि नाम में ही अंतर मिलता है । उदाहरणार्थ यदि हस्तलिखित प्रति में कवि नाम " परमानंद " है तो उपलब्ध रूप में " सूरदास " या अन्य कोई नाम मिलता है । इस अन्तर के निम्नलिखित कारण प्रतीत होते हैं -

एक ही कवि के अनेक नाम - कभी-कभी यह संभव है कि कवि अपने नाम और उपनामों से काव्य रचना करता रहा हो और बाद में वे पद उन्हीं नामों से प्रचलित हुए और संकलित किए गए । प्राप्त पदों में ऐसी स्थिति का एक भी पद नहीं प्राप्त होता जिससे यह संभावना होती कि वे किसी एक ही कवि के विभिन्न नाम हैं । क्योंकि यदि हस्तलिखित प्रति में कवि नाम सूरदास,कृष्णदास मिलता है तो उपलब्ध रूप में उनके स्थान पर परमानंद,गोविंद या नंददास ही प्राप्त होता है । यह स्पष्ट है कि सूर ने परमानंददास के उपनाम से कदापि काव्य-रचना न की होगी ।

स्मृति-विभ्रम - कवि नाम में अन्तर होने का एक कारण स्मृति- विभ्रम संभव हो सकता है । प्रतिलिपिकार प्राय: प्रचलित पदों को अथवा अन्यत्र सुने हुए पदों को स्मृति के आधार पर लिख लेते हैं तथा जिससे सुनकर लिखते हैं वे भी इन पदों को स्मृति से ही लिखवाते हैं । ऐसी स्थिति में स्मृति में तनिक भी स्खलन होने पर रचनाकार के नाम में अन्तर हो जाना स्वाभाविक ही है ।

सम्प्रदाय भेद के कारण - ऐसे भी अनेक प्रमाण मिलते हैं जिनके आधार पर कहा जा स सकता है कि इस प्रकार के परिवर्तनों के मूल में प्राय: सम्प्रदायगत-भावना भी कार्य करती रहती है । सूरदास के कुछ लोकप्रिय " भजन " कबीर के नाम पर और मीरां के भजन" सूरदास के नाम पर प्रचलित कर लेने के मूल में यही प्रवृत्ति रही है । संकीर्ण और

साम्प्रदायिक-मनोवृत्ति वाला प्रतिलिपिकार संभव है इस बात का प्रयत्न करे कि अन्य कवियों की लोकप्रिय रचनाएं उसी के सम्प्रदाय वाले किसी कवि के नाम से प्रचलित हो जाएं ।

ऐसे कवि नाम में अंतर तभी संभव होते हैं जब उन नामों में मात्रा-साम्य होता है किन्तु कभी-कभी कवि नामों में मात्रा साम्य नहीं भी होता । ऐसी स्थिति में प्रतिलिपिकार पूरी-पूरी पंक्ति या चरण में परिवर्तन कर देते हैं । पश्चात वे पद उसी रूप में प्रचलित हो जाते हैं ।

इस सम्बन्ध में हमारे सम्मुख एक समस्या उठती है कि जो पद गुजराती हस्तलिखित पद-संग्रहों में जिस नाम से प्राप्त होते हैं उन्हें उपलब्ध की तुलना में प्रामाणिक मान लिया जाए । इस समस्या के समाधान के लिए हमारे सामने दो विकल्प हैं : विकृति के आधार पर और लोक रचना के आधार पर ।

प्राय: इस प्रकार का निराकरण पाठ-विकृति के आधार पर किया जाता है । परिवर्तित पाठ में विकृतियां अधिक रहती हैं । इसी से मिलती-जुलती समस्या कबीर ब और ढ़ोला मारू रा दूहा में समान रूप से मिलने वाले कुछ दोहों के सम्बन्ध में उठती हैं ।[१] कबीर ग्रंथावली में इसी प्रकार के कुछ अन्य उदाहरण भी मिले हैं जिनमें पाठ की सार्थकता के आधार पर ही उसकी प्राचीनता का निर्णय किया गया है । कभी-कभी ऐसा होता है कि किसी अज्ञात कवि द्वारा रचित कुछ पंक्तियां काफी समय से लोक प्रचलित रहती हैं, जिनको आगे चलकर प्रतिलिपिकार अपनी रुचि के अनुकूल प्रथक-प्रथक कवियों की रचनाओं में सम्मिलित कर लेते हैं ।

जहां तक गु०ह०प्र० में मिली हुई रचनाओं का प्रश्न है । इस बात का अंतिम निर्णय करना बड़ा कठिन है कि ऐसी विवादग्रस्त रचनाएं मूलत: किस कवि की हैं । इसका अंतिम निर्णय तभी किया जा सकता है जबकि इन कवियों की रचनाओं का प्रामाणिक पाठ - संपादन कर लिया जाए । हिन्दी के मध्यकालीन तथा प्राचीन साहित्य का अध्ययन करने वाले विद्वानों को प्राय: ही यह समस्या चिंतित करती रही है । इसका पूर्ण निरापद

१- इस समस्या का निराकरण डा० माता प्रसाद गुप्त ने " उत्तर भारतीय " भाग-६ अंक २ में तथा डा० पारस नाथ तिवारी ने कबीर ग्रंथावली में किया है ।

समाधान सुयोग्य विद्वानों द्वारा विभिन्न कवियों की रचनाओं का प्रामाणिक संपादन कर लेने के पश्चात ही किया जा सकता है।

नीचे हम ऐसे पदों की प्रारम्भिक तथा अंतिम पंक्तिया उद्घृत कर रहे हैं जिनके रचनाकारों के नाम भिन्न-भिन्न मिलते हैं। स्थल संकोच के कारण पूरा-पूरा पद उद्घृत करना संभव नहीं हो सका है।

१- गुजरात विद्या सभा, ह०प्र०सं० २५५६

तेरो मुख नीको रे मेरी राधे प्यारी ।।

चन्द्र सखी भज बालकृष्ण छबि,दौउ न प्रीति बल अती भारी ।।

श्री फार्बस गुजराती सभा, ह०प्र०सं० ३७०

तारो मुख नीको के मारो पीआ री ।।

नंददास मंजु शर जर कीने नंद लाला वृषभान दुलारी ।।

विविध धौल तथा पद-संग्रह, पृ० ५६

तेरो मुख नीको के मेरो मुख प्यारी ।।

कृष्णदास प्रभु की छबि निरखत,तन मन धन कीनो बलिहारी ।।

चंदसखी का जीवन और साहित्य,पृ०११४ पद सं०११२ एवं चंदसखी के भजन और लोकगीत,पृ०३० पद सं० ८४

तेरो मुख नीको है,कि मेरो राधा प्यारी ।।

चंदसखी भज बालकृष्ण छवि,दौउओर प्रीति बढ़ी अति भारी ।।

यह पद नंददास संपा०पं० शु० तथा कृष्णदास(पद-संग्रह) कां० में नहीं प्राप्त होता है।

२- गुजरात विद्या सभा,ह०प्र०सं० १०६१

तुम विना मेरी कोण खबर ले,गोवरधन गिरधारी ।।

चंदरसखी भज बाल कृष्ण छबि चरण कमल चितवारी रे ।।

विविध घोल तथा पद-संग्रह,प्र०भा०पृ० ३१२

तुम विना मेरी कोण खबर ले गोबरधन गिरधारी ।।

सूरदास प्रभु तिहारे मिलन कुं चरण कमल पर वारी ।।

मीरां सुधा सिंधु पृ० ३२६ पद सं० १७ एवं मीरां-वृहत-पद संग्रह पृ० २४८ पद सं० ४३०

तुम बिना मोरी कोन खबर ले,गोबरधन गिरधारी ।।

मीरां के प्रभु गिरिधर नागर,चरण कमल बलिहारी ।।

यह पद सूरदास और नंददास के प्रकाशित पद-संग्रहों में नहीं प्राप्त होता है ।

३- हिन्दी साहित्य सम्मेलन,ह०प्र०सं०३२६६

भोर भयो नव कुंज द्वार ह्वै ललिता जु ललित वजायो बीना ।।

कृष्णदास प्रभु या जोरी पर तन मन धन बलिहारी कीना ।।

राग कल्पद्रुम,द्वि०भा०पृ०१३१ पद सं० २४

प्रात समय नव निकुंज के द्वारे ललिता जु ललित बजायो बीना ।।

बिहारीदास वलि वलि जोरी पर तन मन धन न्योछावर कीना ।।

यह पद कृष्णदास(पद-संग्रह)का० में नहीं प्राप्त होता है ।

४- मगनभाई देवशंकर , ह०प्र०सं० १

बलहारी गोपाल की गोवरधन धार्यो ।।

परमानंद प्रभु सांवरो हसि वदन निहारी ।।

कीर्तन संग्रह,प्र०भा०उत्त०पृ०७१ एवं कृष्णदास(पद-संग्रह)कां०पृ०३६६ पद सं०१२६

बलहारी गोपाल की गोवरधन धार्यो ।।

कृष्णदास के प्राननाथ कौं हंसि बदन निहार्यो ।।

यह पद परमानंददास के प्रकाशित पद-संग्रहों में नहीं प्राप्त होता है ।

५- आचार्य निवास,ह०प्र०सं० १

नगर में बाजत कहां बधाई ।।

बढ़यो भाग्य वृषभान राय को सूरदास बलजाई ।।

परमानंदसागर का० पद सं० ५१ पृ०२३

नगर में बाजत कहां बधाई ।।

परमानंददास को ठाकुर बानो सुनत गति पावें ।।

यह पद सूरसागर में नहीं प्राप्त होता है ।

६- गुजरात विधा सभा, ह०प्र०सं० १०००

वृन्दावन क्यों न भये हम मोर ।।

सुरदास प्रभु तिहारे मिलन कुं वै पायो माखन चोर ।।

कीर्तन संग्रह प्र०भा०ख०पृ०२८३ एवं परमानंद सागर का० .पृ०६१७ पद सं० १३७५

वृन्दावन क्यों न भये हम मोर ।।

परमानंद दास को ठाकुर गोपिन के चितचोर ।।

यह पद सूरसागर में नहीं प्राप्त होता है ।

७- गुजरात विधा सभा, ह०प्र०सं०६१२

व्रज जन फूले अंग न मात ।।

रामदास जननी यो भाषो जिम रा दूरि चलि जात ।।

कीर्तन संग्रह,प्र०भा०उत्त०पृ०८५ एवं परमानंद सागर,शु० पद सं० २६२

व्रज जन फूले अंग न मात ।।

परमानंद कहत नंदरानो बालक दुरि न जात ।।

८- गुजरात विद्या सभा, ह०प्र०सं०२७०२

सब रँग छीटे लागी नीको बन्यो वाना ।।

बिमलानंद जाऊं बलिहारी नहिं उपमा कों आन ।।

कीर्तन संग्रह, द्वि०भा०पृ०२३ एवं नंददास द्वि०भा० संपा०पं०उ०पृ०३८६ पद सं०८१

सब अंग छीटे लागी नीको बान्यो बान ।।

नंददास विमलावलि वंदित नहीं उपमा को आन ।।

९- गुजरात विद्या सभा, ह०प्र०सं० १०००

सखी ये कौन तेहारे जात ।।

सुंदरदास प्रभु तीनु मूरत देख त्रिविध ताप तन जात ।।

सूरसागर (सभा) पद सं० ४८७

सखी री कौन तिहारे जात ।।

सुंदर तन सुकुमार दोउ जन सूर किरिन कुम्हिलात ।।
देखि मनोहर तीनों मूरति त्रिविध ताप तन जात ।।

१०-आचार्य निवास, ह०प्र०सं० १

पवित्रां पहेरन को दिन आयो ।।

पतीत पवित्र किये सुख सारद मोहनदास जस गायो ।।

कीर्तन संग्रह,प्र०भा०उत्त०पृ० ३५८

पवित्रा पहिरन को दिन आयो ।।

पतित पवित्र किये सुखसागर सूरदास यश गायो ।।

११- मगनभाई देवशंकर, ह०प्र०सं० १

ऊधो जानो ज्ञान तिहारो ।।

परमानंद प्रभु जा मिलें ते हसि हसि हासी कीजे ।।

ऊधौ जानौ ज्ञान तिहारी ।।

सूरदास प्रभु जौ मिलें हांसी करि करि लीजे ।।

यह पद परमानंद सागर में नहीं प्राप्त होता है ।

१२- गुजरात विद्या सभा, ह०प्र०सं० १०३६

खेलत लाल अपने रंग अंगना ।।

सूरश्याम निरखी सुख पावै चिरजीयो लाल जसुदा को अंगना ।।

कीर्तन संग्रह,तृ०भा०पृ० ७४

खेलत लाल अपने रंग अंगना ।।

निरखत दास जाय बलिहारी, चिरजीयौ लाल जसुदा को अंगना ।।

यह पद सूरसागर में नहीं प्राप्त होता है ।

१३- गुजरात विद्या सभा, ह०प्र०सं० ८०१

व्रज में आज महा आनंद ।।

रसीक प्रीतम मागन आये माधव निध औट ।।

कीर्तन संग्रह प्र०भा०पृ० १७ एवं कृष्णदास(पद-संग्रह)कां०पृ०३३३ पद सं० ८४६

व्रज में आज महा आनंद ।।

कृष्णदास जे मांगन आये बांधे नव विधि पौट ।।

यह पद 'गो० हरिराय जी का पद साहित्य' में नहीं प्राप्त होता है ।

१४- गुजरात विद्या सभा, ह०प्र०सं० १०३६

आज नाहु मेरे कुंवर कन्हैया ।।

विष्णुदास प्रभु की यह लीला गिरि गोवर्धन धारी ।।

कीर्तन संग्रह,प्र०भा० उत्त०पृ०२,एवं कृष्णादास (पदसंग्रह)कां० पृ०३६१ पद सं० ६१४

आज अन्हाउ मेरे कुंवर कन्हैया

कृष्णादास प्रभु की यह लीला गिरि गोवर्धन धारी ।।

१५- गुजरात विद्या सभा, ह०प्र०सं० ६०१

कृष्णादरश सू अटकी ।।

सुरदास धन धन यह गोपी लोक लाज सब पटकी ।।

कीर्तन संग्रह,तृ०भा० पृ० ७२

कृष्णादास सु अटकी ।।

कृष्णादास धन धन येह गोपी लोक लाज सब पटकी ।।

यह पद कृष्णादास (पद-संग्रह) कां० तथा सूरसागर में नहीं प्राप्त होता है ।

१६- गुजरात विद्या सभा, ह०प्र०सं० १५०७

तुम देखो माई ~~रथ~~- रथ बैठे गिरधारी ।।

कुशम नी बरखा होत व्रज ऊपर गोविंद जा बलहारी ।।

कीर्तन संग्रह प्र०भा० उत्त० पृ० २६१ एवं परमानंद सागर कां० पृ०५६२ पद सं०१२५३

देखौ माई रथ बैठे गिरिधारी ।।

कुसुमांजली वरखत सुरनरमुनि परमानंद बलिहारी ।।

यह पद गोविंद स्वामी के पद-संग्रह में नहीं प्राप्त होता है ।

१७- गुजरात विद्या सभा, ह०प्र०सं० १५३२

नोमी के दिन नोब्त बाजे सुत कौशल्या जायो री ।।

कमलानंद प्रभु कहां लु वरणुं तीन लोक जस गायो री ।।

कीर्तन संग्रह प्र०भा० उत्त०पृ० १६४ एवं परमानंद सागर शु० पद सं० ३३७, कां० पद सं०१२२५

नौमी के दिन नौबत बाजै कौसल्या सुत जायो ।।

परमानंद दास कहां गीं रसनौं तीन लोक जसु गायो ।।

१८- गुजरात विद्या सभा, ह०प्र०सं० १०३५

सामरे की दृष्टि मानौं प्रेम की कटारी है ।।

कहत हौं मुकुंदास छांड दे बीरानी आस,
बिन्ती महाराज सुनौ, सेवक तिहारा है ।।

मीरां-बृहत-पद-संग्रह, पृ० २६६ पद सं० ४८६

सामरे की दृष्टि मानौं प्रेम की कटारी है ।।

कुबजा कुं कहियौ जाय, बिनती सुनत ब्रजराय,
इती अरज म्हारी , मीरां तो तुम्हारी है ।।

संतबानी संग्रह में यह पद नहीं प्राप्त होता है ।

१९- गुजरात विद्या सभा, ह०प्र०सं० १५३२

मिल आओ री सुजनि मंगल गाइये ।।

नंददास,हमारे जीवन विधना कुसुम ---------।।

कीर्तन संग्रह, प्र०भा० पृ० ३३

मिल आओ री सुजनि मंगल गाइये ।।

छित अनूप म्हारो जीवनि विधना तु चिर जाइयो ।।

यह पद नंददास द्वि०भा० संपा० पं०शु० में नहीं प्राप्त होता है ।।

२०- गुजरात विद्या सभा, ह०प्र०सं० १५०७

बरशाने खेलै होरी ।।

सुरदास प्रभु तिहारे मिलन कुं जुग जुग जीवौ ओ जोड़ी ।।

कीर्तन संग्रह, द्वि०भा०,पृ० २३४

बरसाने की छोरी ।।

कृष्णजीवन लछीराम के प्रभु सौं,फगुवा दीयो मरभर मारोरी ।।

यह पद सूरसागर में नहीं प्राप्त होता है ।

२१- गुजरात विद्या सभा, ह०प्र०सं० १०६६

श्री विट्ठलनाथ नाम रस अमृत पान सदा तू कर रे रसना ।।

चतुर्भुज प्रभु गिरिधरन लाल को -------- भर रे रसना ।।

छीतस्वामी पद संग्रह कां० पद सं० १८५

श्री विट्ठलनाथ नाम रस अमृत पान सदा तू करि रे रसना ।।

छीतस्वामी गिरिधरन श्रीविट्ठल आनंद कंद दै भरि रे रसना ।।

ख- चरणों की न्यूनाधिकता

रचनाकार के नाम भेद के अतिरिक्त प्रतियों के पारस्परिक मिलान के अनन्तर एक अन्य उल्लेखनीय अन्तर पदों के चरणों का न्यूनाधिक होना है । प्रस्तुत प्रसंग में यद्यपि यह अन्तर अधिक से अधिक तीन पंक्तियों तक सीमित है किन्तु उनकी मूल प्रवृत्तियों पर विचार करने से कुछ रोचक तथ्य सामने आते हैं । इस प्रकार के पाठांतरों में निम्नलिखित प्रवृत्तियां कार्य करती हुई जान पड़ती हैं -

आदर्श बाहुल्य - यदि किसी प्रतिलिपिकार के पास किसी रचना की एक से अधिक प्रतियां रहती हैं तो नवीन प्रति तैयार करते समय वह प्राय: अनेक स्रोतों का सम्मिश्रण कर देता है जिससे एक ही भाव अथवा विचार संबंधी दो या अधिक पंक्तियों की पुनरावृत्ति केवल यत्किंचित शाब्दिक परिवर्तन के साथ हो जाती है । सरसरी दृष्टि से अवलोकन पर भी ऐसी त्रुटियां खटकने लगती हैं । उदाहरण के लिए नीचे उद्धृत पदों में संख्या १२-१३ के पद द्रष्टव्य हैं । १३वें पद की तीसरी,चौथी पंक्तियों का पाठ है -

अड़ीपार का अंगियौ पैहरौ, फरती जरद किनारी ।।

गौरे गौरे अंग पर शालुडा रे शोह्ये फरती जरद किनारी ।।

उपरोक्त पंक्तियों में अन्तर केवल अंगिया और झगुला का है और यह स्पष्ट ज्ञात होता है कि किसी अन्य स्रोत से प्राप्त पाठांतर को भी उद्धृत कर देने का लोभ प्रतिलिपिकार संवरण नहीं कर सका है । इसी प्रकार १३वें पद की चौथी पंक्ति, "पचरंग डोरी पाटकी,तहाँ पटलो है जराई" के पश्चात कृष्णदास(पद संग्रह)कां० में एक अतिरिक्त पंक्ति इस प्रकार मिलती है, " पटुली पिरोजा लाल की तहाँ रतन जराव बनाई है" । कहने की आवश्यकता नहीं कि प्रसंग मूलत: एक ही है और कांकरोली संस्करण की पुनरावृत्ति अनावश्यक है ।

<u>विवरणात्मक प्रसंग</u> - पर्व,उत्सव श्रृंगार वर्णन में अथवा वस्तुओं की सूची गिनाने के प्रसंग में (जैसे वृक्षों,घोड़ों,पशु और पक्षियों आदि की जातियों का उल्लेख) अतिरिक्त पंक्तियों का आधिक्य मिलता है । ऐसे स्थानों पर प्राय: प्रतिलिपिकार अपने ज्ञान का प्रदर्शन करने में लग जाते हैं । उदाहरण के लिए पद सं०११वें की चौथी तथा पांचवी पंक्तियां किसी भी प्रसंग में जोड़ी जा सकती हैं । इनका पाठ इस प्रकार है -

चोवा चंदन और अरगजा रंग को चलत फुहार
बाजत ताल मृदंग झांझ डफ मिंझर होत धमार ।।

इसी प्रकार पद सं० १० में दूसरी पंक्ति में नैनों का विशेष रूप से वर्णन करना भी प्रसंग में बहुत अधिक आवश्यक नहीं था । अत: गुजराती हस्तलिखित प्रति में अतिरिक्त रूप से जोड़ा हुआ संभव लगता है । इसी तरह कुछ पदों में एक ही प्रकार के वर्णनों की श्रृंखला मिलती है । ऐसे वर्णन प्राय: एक ही प्रकार की शब्दावली से आरम्भ होते हैं । ऐसे स्थलों पर प्राय: होता यह है कि प्रतिलिपिकार उससे उत्साहित होकर अपनी ओर से उसी प्रकार के प्रसंग जोड़ देता है । जैसे पद सं०७ में छठी पंक्ति जिसका आरम्भ " एक देत दधि दूब " से होता है, के पश्चात सूरसागर(सभा) में एक अतिरिक्त पंक्ति इस प्रकार मिलती है, " एक परस्पर देत बधाई एक उठत हँसि गाई " ।

<u>स्मृति विभ्रम</u> - कभी-कभी लिपिकार अपनी स्मृति के आधार पर पहले कभी सुने हुए पद को लिखता है या स्मृति के आधार पर संशोधन कार्य करता है तो ऐसी स्थिति में यदि वह उस पद को कुछ पंक्तियां भूल जाय तो असंभव नहीं । इस प्रकार पद की पंक्ति संख्या में न्यूनता आ जाती है ।

<u>साधारण असावधानी</u> - कभी-कभी लिपिकार की साधारण असावधानी के कारण पंक्ति छूट जाने की आशंका रहती है । हिन्दी के प्राचीन काव्य-ग्रंथों में एक पंक्ति में

केवल एक ही चरण नहीं लिखा जाता था, पूरी पंक्ति में जितना भी कुछ आ सकता था. लिखा जाता था। ऐसी स्थिति में यदि लिपिकार पूर्ण सावधान नहीं हुआ तो एक पंक्ति छूट जाने से रचना के कई चरण लिखने से रह जाते थे।

वर्ण-साम्य के कारण- इसी प्रकार वर्ण-साम्य के कारण भी पंक्तियां छूट जाती हैं। यदि एक ही वर्ण का प्रयोग किसी पद आदि में दो स्थानों पर हुआ हो तो लिपिकार भूल से आगे उसी से मिलते-जुलते वर्ण के आगे लिखने लगता है और इन दो समान वर्णों के मध्य का अंश लिखने से छूट जाता है। उदाहरणार्थ न पद सं० १४ का पाठ परमानंदसागर ना० की तुलना में श्रेष्ठ नहीं। गु० के पाठ में कुछ पंक्तियों के छूट जाने या उनके क्रम में अन्तर आने का कारण वर्ण-साम्य ही है।

आगे इसी प्रकार के पद उद्धृत किए जा रहे हैं जिनमें पंक्ति संख्याओं में न्यूनाधिक प्राप्त होता है -

१- गुजरात विद्या सभा, ह०प्र०सं० १५३२

मिल आयो री सुजनि मंगल गाइये ।
महर जसोमति ढोटा जायो, बेग बधाई गाइये ।।१।।
आज के नीके दिवस सुजनि बड़े भाग तु पाइये ।।२।।
घसु चारु चंदन आंगन लेपन मोतन चौक पुराइये।।३।।
साख सिख सवारी सथिया कंचन माल बंधाइये।।४।।
औ चाजन मुख चेरु ललैया निरखि नैन उसै रराइये ।।५।।
प्राण सर्वं वस्तु वार डास कुल अंगन धनाइये ।।६।।
जो छुति सो दृगन देखि आनंद मन में बढ़ाइये ।।७।।
नंददास आगार जीवन विध ना कुछम --- ---।।८।।

कीर्तन संग्रह,प्र०भा०पृ०पृ०३३ में प्राप्त इसी पद की पांचवी और छठी पंक्तियां नहीं प्राप्त होती हैं ।

२- आचार्य निवास, ह०प्र०सं० १

पवित्रा पहेरन को दिन आयो ।
घर घर ते सब देखन आई निरखत ही सुख पायो ।।१।।

जे जे कार भयो करे सुर मुनि जन भामिनी मंगल गायो ।२।

श्री गोकुलनाथ विराजित मोहन सब संतन मन भायो ।३।

पतीत पवित्र किये सुख सारद मोहन दास जस गायो ।४।

कीर्तन संग्रह प्र०भा० उत्त० पृ० ३५८ पर प्राप्त इसी पद की तीसरी पंक्ति नहीं प्राप्त होती ।

३- गुजरात विद्या सभा, ह०प्र०सं० १०३६

मुरली कानं जगाई वली मोहन राजत बैठ हटरी ।१।

पिस्ता द्राख वदाम छुहारा खुरमा खाजा गुंजा मठरी ।२।

घर घर ते नरनारी मुदित मन गोपी गुवाल बहु ठठरी ।३।

सूर रसीक गिरीधर चिरजीयो नंद महर को नागर नट री ।४।

कीर्तन संग्रह प्र०भा०,उत्त०पृ० ११ पर प्राप्त इसी पद की तीसरी पंक्ति के पश्चात दो अतिरिक्त पंक्तियां इस प्रकार मिलती हैं -

टेर टेर ले देत सबन को लै लै नाम बुलाय निकट री ।

देत असीस सकल गोपीजन यशोमति देत बहु हरख पट री ।

४- गुजरात विद्या सभा, ह०प्र०सं० ६१२

खेलत फाग कहत हो हो होरी ।

इत कामिनी समाज विराजत गिरिधर हलधर की जोरी ।१।

बाजत ताल मृदंग झांझ डफ बिच बिच मुरली ध्वनि थोरी ।२।

श्रवण सुहाई गारी देत हैं ऊंचे तान लेत त्रिय गोरी ।३।

कोटि मदन ते सुंदर श्यामा देखत मोहि जात मति भोरी ।४।

मोहत नंद नंदन रस विथकित क्योंहु दृष्टि जात नहिं मोरी ।५।

कुंकुम रंग भरभर पिचकारी हरि तन छिरकत नवल किशोरी ।६।

जानों अनुराग उमड़ सन्मुख व्है धावत वस मै डवर तोरी ।७।

कबहुंक दस वीसक मिल आवत लेत छुड़ाय मुरली झकझोरी ।८।

जाय श्रीदामा ले लै आवत देन कही बहु भांत पटोरी ।९।

भरभर कमल अबीर उड़ावत गोविंद निकट जाय चोरा चोरी ।१०।

मानहुं प्रचंड बात वश पंकज धन गगन शोभित चहुं ओरी ।११।

कनक कलश कुंकुम भरलीनें और करतूरी बहुत घस घोरी ।१२।

खेलत गोकुल बिच कीच नचो अधिक सुगंध भई व्रज खोरी ।१३।

ग्वाल बाल सब संग मुदित मन जाय जमुन जल न्हान पखोरी।१४।

नये बसन आभूषण पहरत और देत पाटंबर कोरी ।१५।

द्विज आनंद समेत करत द्विज तिलक फूल फल लोचन रोरी ।१६।

सूर स्वामो विप्र भाटन को देत कनक रत्नन की बोरी ।१७।

कीर्तन संग्रह द्वि०भा०,पृ० १८२ पर प्राप्त इसी पद की तेरहवीं पंक्ति नहीं प्राप्त होती और सूरसागर (सभा) पद सं० ३५२६ में सातवी पंक्ति के पश्चात निम्न - लिखित पंक्ति प्राप्त होती है -

इहि विधि उमंगि चल्यो रंग जंह तह ननु अनुराग सरोवरि फोरी ।

५- गुजरात विद्या सभा, ह०प्र०सं० ८०१

गोकुल प्रगटे भये हरि आये ।

अमर उधारन असुर सिंघारन अंतरजामी त्रिभुवनराय ।१।

जागी महर पुत्र मुख देख्यो पुलक गात उर में न समाय ।२।

गदगद कंठ बोल नहीं आवे हरष बदन है नंद बुलाय ।३।

आवहु कंथ देव परसन भयो पुत्र भयो देख्यो मुख आई ।४।

दौर नंद जब सुत मुख देख्यो सो मुख सोभा बरनी न जाई ।५।

जब वर पायो तब घर आयो आनंद मगन ह्वे बजी बधाई ।६।

सूरदास पहले यह माग्यो दूधि वाव कुल आई ।७।

सूरसागर(सभा)पद सं० ६६१ में प्राप्त इसी पद की छठी पंक्ति नहीं प्राप्त होती और प्रथम पंक्ति के स्थान पर निम्नलिखित पंक्ति प्राप्त होती है -

माथें धरि वसुदेव जु ल्याये, नंद महर घर गये पहुंचाये ।

६- गुजरात विद्या सभा, ह०प्र०सं० ८०१

झगरन ते हो बहुत खिजाई ।

कंचन हार लिये नहीं मानति तूही अनोखी दाई ।१।

बेगत नार छेदि बालक की जातु है ब्यार मराई ।२।

सत संजम तीरथ वृत कानि तब यह संपति पाई ।३।

करौं विदा जाउ घर अपने काल सांझ की हो आई।४।

सूरदास प्रभु गोकुल प्रगटे भक्तन की सुखदाई ।५।

सूरसागर (सभा) पद सं० ६३४ में इस पद की तीसरी और चौथी पंक्ति के पश्चात निम्नलिखित पंक्तियां मिलती हैं -

मेरी चीत्यो भयौ नंदरानी नंद सुवन सुखदाई ।
इतनी सुनत मगन ह्वै रानी बोलि लये नंदराई ।

७- गुजरात विद्या सभा, ह०प्र०सं० ८०१

आजु न कोउ रे जिन जाय ।
सब गायन बछरन समेत घर नावौ चित्र बनाय ।१।
ढोटा है वृज राय जू के बहुत सुनाय सुनाय ।२।
चहुंदिस घोष में यह कोलाहल उर आनंद न समाय।३।
कित हौ विलम करत बें काजे वेग चलौ उठि धाय ।४।
अपने अपने मन कौ चीत्यौं नैंन देख्यौ जाय ।५।
एक देत दधि दूब फिरत एक रहेत गहैं पाय ।६।
वाल विरध नर नारिन के मन भयौ चौगुनौ चाय ।७।
सूरदास प्रभु मुदित वृजवासी गिनत न राजाराय ।८।

सूरसागर(सभा)पद सं० ६३८ में इस पद की छठी पंक्ति के पश्चात निम्न पंक्ति प्राप्त होती है -

एक परस्पर देत बधाई एक उठत हंसि गाई ।

८- आचार्य निवास, ह०प्र०सं० २

ऐसो ग्यान विचार रे मना भजले राम जी दुष भंजने ।१।
जब लग में में मेरी करे तब लग काज एक नहिं सरे ।२।
जब मेरी ममता मिट जाय तब प्रभु काज संवारे आये ।३।
जब लग सिंघ रहे बन माहे तब लग यह बन फूले नांही ।४।
उलट स्याल सिंघ कौ खाय त फूले जी यह बनराय ।५।
फल कारन फूले बनराय उपजे फल तब फूल नसाय ।६।
ग्यान काज वहु कर्म कमावे उपजे ग्यान तब कर्म नसावे ।७।

जीत्यो डूबै हार्यो तिरै गुरु परताप जीवतो मरै ।८।

दास कबीर कहै समुझाय केवल नाम रहौ चित लाय ।९।

कबीर ग्रंथावली (हिन्दी परिषद्,प्रयाग) पृ०४२ पद सं० ७१ में इस पद की छठी और सातवीं पंक्ति नहीं प्राप्त होती ।

१०- श्री फार्बस गुजराती सभा, ह०प्र०सं० २१०

हिंडोरै झूलत भांमनी ।

श्यामा श्याम बराबर बैठे सरश सोहाई जाननो ।१।

पांच वरश के श्याम मनोहर सात वरस की बाला ।२।

कमल नैन हरी वै मृग नैनी चंचल नैन विशाला ।३।

लरका भेन में सरस बनत हौ कौउ न जाणत अत ।४।

परमानंददास को ठाकुर नंद राय जी कौ पूत ।५।

परमानंद सागर कां० पद सं० १२६६ में इस पद की पंक्ति संख्या चार के पश्चात अतिरिक्त दो पंक्तियां प्राप्त होती हैं जो इस प्रकार हैं -

एक भुजा करि डोंडी टेकत एक धरैं अस्कंध ।

मीठी बातें करत परस्पर उभय प्रेम अनुबंध ।

१०- श्री फार्बस गुजराती सभा, ह०प्र०सं०२१०

लाल झूलन की झुंड झूलन आई ।

अेक रंग शरश कुसुंबी सारी पैहरै कंचुकी शौधे वौर ।१।

काजर रेखा बनी नैननो मोशो पीतम को चितचौर ।२।

शब अेक बरन अजो रंग छूटो जानु दामिनी घन जौर।३।

हशत लशत झुलत मनमथ कौ चितचौर ।४।
(अरु झूलत)

मधुर सुर गावत केदारो उर के उड़त झकोर ।५।

कृष्णदास गिरिधर किये वश चपल नैन की कौर ।६।

कीर्तन संग्रह प्र०भा०,उच०पृ० ३५३ पर प्राप्त इसी पद की दूसरी पंक्ति नहीं प्राप्त होती ।

११- गुजरात विद्या सभा, ह०प्र०सं० १७५८

विन दरसन महाराज होरि में नाहिं खेलुंगी ।१।
पांच सखि मिल निकसि मोकुं आवत है लाज ।२।
गौरि गौरि सब मिलि हैं टेरि फाग बंधावन काज।३।
चौवा चंदन और अरगजा रंग को चलत फुवार ।४।
बाजत ताल मृदंग झांझ डफ झिंझर होत अवाज।५।
मीरां कहे प्रभु गिरधर नागर बांह गहे की लाज ।६।

मीरां सुधा सिंधु पृ० ६०८ पद सं० ४२में इस पद की चौथी और पांचवी पंक्तियां नहीं प्राप्त होतीं हं ।

१२- गुजरात विद्या सभा, ह०प्र०सं० २५४७

बश गई राधे प्यारी मेरे दिल बश गई राधे प्यारी ।१।
सात पात वृंदावन ढूंढ़ कुंज गलन सब हेरी ।२।
अडीपार को अंगियो पहेरो फरतो जरद किनारी ।३।
गोरे गोरे अंग पर शालुडा रे शोहये फरती जरद किनारी ।४।
गोरे गोरे अंग पर अतलश की चोनी ऊपर हार हजारी ।५।
नाक के नीचे मोती रे शोहये चमक रही मतवाली ।६।
गोरे गोरे मुख पर तिलक विराजे रव की ------------ ।७।
मीरां कहे प्रभु गिरिधर नागर नित नित शोभा तारी ।८।

मीरां सुधा सिंधु पृ० ६८३ पद सं० ३२३ में इस पद की दूसरी,तीसरी,और छठी पंक्तियां नहीं प्राप्त होती हैं ।

१३- श्री फार्बस गुजराती सभा, ह०प्र०सं० २१०

झूले नवल बिहारो प्यारो लाल झुलावन आई ।१।
शो रंग हिंडोरे लाल को तहां जुगल किशोर शोहाई ।२।
मनि कंचन के खंभ मनोहर वे दुम डांडी शोहाई ।३।
पचरंग डोरी पाटकी तहां पटुली हेम जराई ।४।
लाल वारन के फूंदना तहां मोती नी भरी बनाई ।५।

मानुनो गावे मोदऊं तहां वाजे अनंत बधाई ।६।

राजी रहो उर अंदरी तहां कुसुमनी वृष्टि कराई ।७।

देखी शोभा दंपती तहां कृष्णदास बनजाई ।८।

कृष्णादास (पद-संग्रह) कां० नृ०४२६ पद सं० १०३६ में इस पद की चौथी पंक्ति के पश्चात एक पंक्ति इस प्रकार प्राप्त होती है -

पटुली पिरोजा लाल के तहां रतन जराव बनाई हो ।

१४- गुजरात विद्या सभा, ह०प्र०सं० १०६७

श्री तु जमुनां गोपाल भावे ।

जमुना जमुना नाम उचारे धर्मराज ताकी न चलावे ।१।

जो जमुना को जानु महातम जे जमुना को पान करे ।२।

जो जमुना अवगाहै निसदिन चित्रगुप्त लेखो न धरे ।३।

परम पुरान कथा यह पावन धरनी मुख वाराह कही।४।

तीर्थ महातम जानि जगत गुरु यह प्रसाद परमानंद लहो ।५।

परमानंद सागर कां० पद सं० १३७६ में इस पद की दूसरी और तीसरी पंक्तियों के स्थान पर निम्न पंक्तियां और तीसरी पंक्ति के पश्चात दो अतिरिक्त पंक्तियाँ इस प्रकार मिलती हैं -

जे जमुना के दरसन पावें जे जमुना जल पान करे ।

सो प्राणी जमलोक न देखे चित्रगुप्त लेखो न धरे ।

\- - -

जे जमुना के जानु महातम बारंबार प्रनाम करे ।

जे जमुना अवगाहन मंजन करे धरनी मुख वाराह कही ।

ग-पाठ की अत्यधिक भिन्नता

रचनाकार के नाम परिवर्तन और पंक्ति संख्याओं के न्यूनाधिक के साथ ही कुछ ऐसे पद भी प्राप्त हुए हैं जिनमें दो या तीन पंक्तियाँ समान रूप से मिलती हैं और अन्य पंक्तियां असमान । पदों की पंक्तियों में इस प्रकार के आमूल परिवर्तन का कारण

" मौखिक परंपरा " ही है । किसी लोकप्रिय कवि की लोकप्रिय रचनाएं बहुत समय से मौखिक रूप में चलती रहती हैं । चलते-चलते उनके मूल स्वरूप में परिवर्तन आ जाता है । सूरदास,मीरां और चंदसखी ऐसे ही लोकप्रिय कवि हैं जिनके लोकप्रिय पद मौखिक रूप में काफी प्रचलित हैं । समय के व्यतीत होते-होते व्यक्ति इस बात का तनिक भी ध्यान नहीं रखता कि वह जो पद गा रहा है या लिख रहा है उसका मूल रूप क्या है । जिस रूप में वह सुनता आया है या जिस रूप में उसे स्मरण है उसी रूप में पुन: उसे गाता है या लिखता है । इस प्रकार मौखिक परम्परा के द्वारा पदों के रूप में परिवर्तन होते जाते हैं । कभी-कभी भाषांतर तक हो जाता है,जैसे मीरा के पद ब्रज,राजस्थानी और गुजराती तीनों में प्राप्त होते हैं । इसी प्रकार रचनाकार के नाम में भी परिवर्तन हो जाता है और काफी समय के व्यतीत हो जाने के पश्चात मौखिक परंपरा के फल-स्वरूप उनके कई रूप हो जाते हैं और वे ही पद कई अन्य कवियों के नामों से भी प्राप्त होने लगते हैं ।

मौखिक परम्परा द्वारा पदों में परिवर्तन के साथ उनकी पंक्तियों के क्रम में भी अन्तर आ जाता है । इस प्रकार के उदाहरण अन्यत्र भी मिलते हैं । क्षितिमोहन सेन द्वारा संकलित `कबीर` चार भाग, का संकलन भी मौखिक परम्परा के ही आधार पर हुआ है । जिसके फलस्वरूप उनमें भी पदों की ऐसी ही स्थिति प्राप्त होती है । आगे उद्धृत पद सं० ६ प्रकाशित एक ही संकलन में दो रूपों में प्राप्त होता है । इसका कारण स्पष्ट ही है । संकलन कर्ता पदों का संकलन प्रथम पंक्ति की अनुक्रमणिका के ही आधार पर करते हैं । यदि प्रथम पंक्ति में सामान्य सा भी अन्तर रहता है तो संकलन-कर्ता उसी पद को पुन: संकलित कर लेता है । इस प्रकार एक ही पद शब्दों के थोड़े से परिवर्तन के साथ दूसरे रूप में भी प्राप्त होता है । इस प्रकार के अन्य उदाहरण भी प्राप्त होते हैं । डा० पारस नाथ तिवारी द्वारा संपादित " कबीर ग्रंथावली " पृ० सं० १२७-१२८ और पृ०सं०१३६-१३७ में कबीर की साखियों की पुनरावृति का उल्लेख इस प्रकार मिलता है -

अ- वेलवेडियर प्रेस से प्रकाशित कबीर साखी संग्रह में १०६ पुनरावृतियां प्राप्त होती हैं ।

ब- सीया बाग बड़ौदा से प्रकाशित कबीर साखी ग्रंथ में १३६ पुनरावृतियां प्राप्त होतीं हैं ।

आगे ऐसे गुजराती हस्तलिखित पद-संग्रहों के पदों को उनके प्रकाशित रूप सहित उद्धृत किया जा रहा है जिनके हस्तलिखित और प्रकाशित अनेक रूप प्राप्त होते हैं -

१- श्री फार्बस गुजराती सभा, ह०प्र०सं० ८२

आज नंद जी के आगणे भीर ।
कृशन अवतार लीओ रे गौकुल घर घर आनंद करत अहीर ।
घोड़े बौच्थे नीकशे बीजि वीनती और पीताबंर पैरे चीर रे ।
अेक आवत अेक जातवधाइ अेक ठाडे जमुना के तीर ।
अेक री को देत चंदन को एक कु हरी देत म धीर ।
ताल मृदंग झांझ डफ वागो करे तो मन नन भीर ।
बाबा नंद ख.क में ठाडे ईच्छावर वन वर धेनु ।
प्रेमानंद प्रभु शव के श्री धर कंस निकंदन बली भद्र वीर ।

गुजरात विद्या सभा, ह०प्र०सं० ४७५

आज नंद जु के द्वारे भीर ।
अेक आवत अेक जात वधाये अेक ठाड़ मंदीर के तीर ।
गावत मंगल करत कतुहल आंगन मंगल अहीर ।
अेकन दान देत गायन को अेकन कु पहेरावत चीर ।
अेकन कु ले सरबस दीजे एकन को मन वृत धीर ।
सुरदास प्रभु बड़ो भाग है धन यशोदा पुन शरीर ।

कीर्तन संग्रह, प्र०भा० उत्त०पृ० २५

आजु नंद जी के द्वार भीर ।
गावत मंगल गीत सबै मिलि प्रगटे हैं सुन्दर बलबीर ।
एक आवत एक जात विदा व्है एक ठाड़े मंदिर के तीर ।
एकन को गौदान देत हैं एकन को पहिरावत चीर ।
एकन को फूलमाल देत हैं एकन को घसि चंदन नीर ।
सूरदास नै नवनिधि पाई धन्य यशोदा पुन्य शरीर ।

सूरसागर (सभा) पद सं० ६४३

आजु नंद के द्वारें भीर ।
इक आवत इक जात विदा ह्वै इक ठाड़ मंदिर के तीर ।
कोउ केसरि कौ तिलक बनावति कोउ पहिरति कंचुकी सरीर ।
एकनि कौ गौदान समर्पत एकनि कौ पहिरावत चीर ।
एकनि कौ भूषन पाटंबर एकनि कौ जु देत नग हीर ।
एकनि कौ पुहुपनि की माला एकनि कौ चंदन घसि नीर ।
एकनि माथे दूब रोचना एकनि कौ बांधति है धीर ।
सूरदास धनि स्याम सनेही धन्य यशोदा पुन शरीर ।

उपर्युक्त पद के चार पाठ मिलते हैं, जिनमें से प्रथम दो गु०ह०प्र० के हैं और शेष दोनों मुद्रित के । जहाँ तक प्रस्तुत पदों के पाठ का प्रश्न है, सभी पाठों की पंक्तियों की शब्दावली समान है । सूरसागर का पाठ अन्य पाठों की अपेक्षा अधिक पूर्ण प्रतीत होता है । अन्य पदों में पंक्तियों की शब्दावली की समानता के कारण कुछ पंक्तियां लिपिकार की असावधानी या गायन परंपरा में रहने के कारण छूट गई हैं । प्रथम पद में कवि नाम छाप प्रेमानंद मिलती है किन्तु परमानंददास के अद्यावधि प्रकाशित संकलनों में यह पद प्राप्त नहीं होता जबकि सूरसागर में उपलब्ध है । अत: यह पद सूरदास का ही है । संभवत: गायन परंपरा में नाम-छाप का यह परिवर्तन हुआ है ।

२- गुजरात विद्या सभा, ह०प्र०सं० २५५६

तेरो मुख नीको रे मेरो राधे प्यारी ।
दरपन हाथ लये नंदनंदन जु सांची कहो वृषभान दुलारी ।
तमारे शिर पर मौर मुगुट है हमारे शिर पर कामर कारी ।
हमारो वरन जैसो रन उजियारो तमारो वरन जैसे रैन अंधियारो ।
चन्द्रसखी भज बाल कृष्ण छवि दोउन प्रीत बल अती भारी ।

श्री फार्बस गुजराती सभा, ह०प्र०सं० ३७०

तारो मुख नीको के मारो प्यारो ।
दरपण हाथ लियो ------- शामी कहो वृषभान दुलारी ।
हां जी तुम हो नंद जी के छैल छबीले,
हम जु गुजरिया दासी तुम्हारी ।
तुम जो गोवरधन कर धरी राखो अम जु राखो उर पर गिरधारी ।
अम अबला बोहोत बल कीनो चार गाम राखे उर धारी ।
नंददास मंजु शर नार कीने नंदलाला वृषभान दुलारी ।

विविध धोल तथा पद संग्रह(गुजराती) ~~प्र०भा०~~ प्र०भा० पृ० ५६

तेरो मुख नीको के मेरो मुख प्यारी ।
दर्पन हाथ लिये नंदनंदन सांची कहो वृषभान दुलारी ।
तुम तो हो नंद जु के कुंवर कन्हैया,
में हुं गुजरिया दासी तिहारी ।
कृष्णदास प्रभु की छवि निरखत तन मन धन कीनो बलिहारी ।

चंदसखी के भजन और लोकगीत पृ०३०पद सं० ८४ एवं चंदसखी का जीवन और साहित्य पृ० ११४ पद सं० ११२

तेरो मुख नीको है कि मेरो राधा प्यारी ।
दरपन हाथ लियौ नंदनंदन सांची कहौ वृषभान-दुलारी ।
हम का कहैं तुम ही क्यों न देखो मैं गोरी तुम स्याम बिहारी ।
हमरो बदन ज्यों चंदा की उजियारी तुमरौ बदन जैसे निसि अंधियारी ।
तुम्हरे सीस पर मुकुट विराजे हमरे सीस पर तुम गिरधारी ।
चंदसखी भज बालकृष्ण छवि दोउ और प्रीति बढ़ी अति भारी ।

इस पद के भी हमें चार पाठ मिलते हैं जिनमें से प्रथम दो गु०ह०प्र० के हैं और शेष दोनों मुद्रित है । जहां तक पाठ का प्रश्न है चारों में विशेष कोई अंतर नहीं है । प्रथम दोनों पदों में गुजराती भाषा का प्रभाव मिलता है जो गुजरात में प्रतिलिपि - क्रम में रहने के कारण संभव ही है । पद के गायन परंपरा में रहने के फलस्वरूप कुछ

पंक्तियों के पाठ में अंतर आ गया है जो स्वाभाविक ही प्रतीत होता है। कवि - नाम छाप में जो अंतर मिलता है उसका भी कारण गायन परंपरा ही है। मुद्रित रूप में प्राप्त होने के कारण यह पद चंदसखी का ही प्रतीत होता है, कृष्णदास और नंददास का नहीं। क्योंकि कृष्णदास और नंददास के प्रकाशित पद-संकलनों में यह पद नहीं मिलता। यह पद कृष्णदास के नाम से गुजराती संग्रह में अवश्य आया है किन्तु इसका भी कारण पद की गायन परंपरा ही है।

३- गुजरात विद्या सभा, ह०प्र०सं० १०३५

ओधो चलो तो वीदुर घरे जाइये ।
दुर्योधन घर कौन काम है जहां आदर भाव न पाइये ।
दुर्योधन का मेवा त्यागा साक विदुर घर पाइये ।
चरण प्रसाद लियो चरनोदक प्रीत का पलंग बिछाइये ।
त्रुटी सी छान मेघ घन बरसे त्रीया कहे प्रभु आइये ।
तु कोउ फलपेबी नारी हाजर होजे सो लाइये ।
वथुआ का साक चनु की रोटी रुचि रुचि भोग लगाइये।
सुरदास प्रभु तिहारे मिलन कुं भगत के हाथ बिकाइये ।

सूरसागर (सभा) पद सं० २३६

ऊधो चलो विदुर कैं जइये ।
दुरजोधन कैं कौन काज हैं आदर भाव न पइये ।
गुरुमुख नहीं बडे अभिमानी कापै सेव करइये ।
टूटी छानि मेघ जल बरसै टूटौ पलंग बिछाइये ।
चरन धोइ चरनोदक लीन्हौं तिया कहै प्रभु अइये ।
सकुचत फिरत जो वदन छिपाय भोजन कहा मंगइये ।
तुम तो तीनलोक के ठाकुर तुम तै कहां दुरइये ।
हम तो प्रेम प्रीत के गाहक भाजी साक छकइये ।
हंसि हंसि खात कहत मुख महिमा प्रेम प्रीति अधिकइये ।
सूरदास प्रभु भक्तनि के बस भक्तिन प्रेम बढ़इये ।

गु०ह०प्र० के पाठ की तुलना में सभा का पाठ विषय और भाव की दृष्टि से अधिक पूर्ण है। गु०ह०प्र० के पाठ में कुछ पंक्तियों की न्यूनता मिलती है जिसका मुख्य कारण गायन परंपरा ही है। संभवत: लिपिकार की असावधानी भी पंक्तियों की न्यूनता में सहायक हो।

४- गुजरात विद्या सभा, ह०प्र०सं० १७५६

मेरा हरि को मिलण कब होसी रे राम जाना नहीं रे ।
हुं तो देती मंदिरियो खोल रे राम जाना नहीं रे ।
तुमारो कारण मैं तो बन बन ढूंढू हुं तो लेउ रे वैरागण वेश रे ।
जो रे राम जी आवताना जाणा हुं तो रही रे अभागणी सोई रे ।
सोले सणगार मैं तो त्याग करुंगी हुं तो काजल डारुंगी धोई रे ।
पातपात वृंदावन ढूंढू मैं तो कुंज गलण सब जोई रे ।
मीरांबाई कहे प्रभु गिरधर नागर तारा चरण कमल चित लाई रे ।

मीरां वृहत्त पद संग्रह १२२-७६

मैं जाण्यों नही प्रभु को मिलन कैसे होय री
आए मेरे सजना फिरी गये अंगना मैं अभागण रही सोय री ।
फारुंगी चीर करुं गलकंथा रहूंगी वैरागण होय री ।
चुड़िया फोर मांग बिखे कजरा मैं डारुं धोय री ।
निसि बासर मोहि विरह सतावै कल न परत पल मोय री ।
मीरां के प्रभु हरि अविनासी मिलि बिछुड़ो मत कोई रे ।

मौखिक परंपरा में अधिक रहने के कारण मीरां के पदों के कई रूप मिलते हैं। प्रस्तुत पद भी उसका एक उदाहरण है। इस पद में भी कुछ पंक्तियों के पाठ में अंतर मिलता है, जो पद के मौखिक परंपरा में रहने के कारण संभव ही है। गु०ह०प्र० के पाठ की छठी पंक्ति जो मुद्रित रूप में प्राप्त नहीं होती, इसी रूप में आगे उद्धृत पद सं० ८ में भी प्राप्त होती है। इस कारण ऐसा प्रतीत होता है कि गायन परंपरा में रहने के कारण उस पंक्ति का समावेश इस पद में हो गया ।

५- श्री फार्बस गुजराती सभा, ह०प्र०सं० १११

अबंर देहो मुरारी हमारो अबंर देहो मुरारी ।
लेकर चीर कदम पर बैठे मैं जल माहि उघारी ।
सासु खोजि मोही ननद हठीली देवर देत हे गारी।
सुरदास प्रभु तुमारे मिलन कुं तुम जीते हम हारी ।

सूरसागर (सभा) पद सं० १४०६

हमारे अबंर देहु मुरारी ।
लै सब चीर कदम चढ़ि बैठे हम जल मांझ उघारी ।
तट पर बिना बसन क्यों आवैं लाज लगति है भारी।
चोली हार तुमहिं कौं दीन्हों चीर हमहिं यौ डारी।
तुम यह बात अंचभो भाषत नांगी आवहु नारी ।
सूर स्याम कछु छोह करी जु सीत गई तनु मानी ।

फा० की तुलना में सभा का पाठ विषय-वस्तु की दृष्टि से अधिक सार्थक है । फा० के पाठ में न्यूनता आने का कारण मौखिक परंपरा ही लक्षित होती है । गायकों के गाते-गाते पंक्तियों का भूलना और उनके स्थान पर अपनी ओर से पंक्तियों का निर्माण कर लेना असंभव नहीं । फा० की तीसरी पंक्ति इसी प्रकार की लगती है ।

६- गुजरात विद्या सभा, ह०प्र०सं० १०००

आज कोऊ नीकी बात सुनावे ।
मेरे सुपन को अही भरोसो प्राणजीवन घेर आवे ।
रहीयो दरके भुजा फरके नेंना नींद न आवे ।
सूरदास प्रभु आये अचानक आनंद मंगल गावे ।

सूरसागर (सभा) पद सं० ४०७३

आज कोऊ नीकी बात सुनावै ।
कै मधुवन तै नंद लाडिलो कै अब इत कोउ आवै ।
मोर एक चहुं दिसि तें उड़ि उड़ि कानन लगि लगि गावै ।

उत्तम भाषा ऊँचे चढ़ि चढ़ि अंग अंग सगुवावे ।
मानिनी एक सखी सौं बिनवै नैन नीर भरि आवै।
सूरदास कोउ व्रज ऐसो जौ व्रजनाथ मिलावै ।

विषय की दृष्टि से सभा का पाठ गु०ह०प्र० की तुलना में श्रेष्ठ है । दोनों पाठों का मूल एक होते हुए भी कालांतर में दोनों- पाठ एक दूसरे से अधिक भिन्न होते गये । गुं०ह०प० का पाठ मौखिक परंपरा के कारण निरंतर कम होता गया और अंत में उसका यह रूप शेष रह गया ।

७- गुजरात विद्या सभा, ह०प्र०सं० ११६७

हुं वारी हुं वारी नंद ठीठाण पर हुं वारी ।
हाथ लकुटिया काछ कमरी आ छवि ऊपर वारी।
जल जमन हुं भरण जाती बीच मिलो गिरधारी ।
बाह मरोर मटुकिया फोरी और देत है गारी ।
हेजी किसन जी ऐसी पूछे कौण गोप की नारी ।
परमानंद दास को ठाकुर नैन बान भरी भारी ।

परमानंद सागर, कां० पद सं० २५०

नंद ठिठौना पर हुं वारी ।
काहू की कान्ह मरोरत बहियां काहू की फारत सारी ।
जमुना को जल भरन जात ही बीच मिलि गिरधारी ।
मटुकी फोरत नौसरि तोरत बहुरि देत है गारी ।
बहुरि स्याम मोंहि बूझन लागे कौन गोप की नारी ।
परमानंद प्रभु हौं बस कीन्हों नैन बान भरि मारी ।

उपर्युक्त पद के दोनों पाठों में विशेष कोई अंतर नहीं है । प्रथम पंक्ति को छोड़कर अन्य पंक्तियों का पाठ लगभग एक समान ही है । पद के गायन परपंरा में रहने के कारण इस प्रकार का सामान्य सा अन्तर आ जाना स्वाभाविक ही है ।

८- श्री फार्बस गुजराती सभा, ह०प्र०सं० ८२

पलक न लागे मेरी शाम बिना पलक न लागे मेरी ।
हर बिन मथुरा अैशी लगत हो चन्द्र बिना रैन अंधेरी।
आश पाश रतनागर सागर बीच में नकुनियां तेरी ।
तेरे काज में तो जोगण हुंगी घेर घेर देऊंगी फेरी।
पात पात वृंदावन ढूंढू कुंज भवन शा हेली ।
मीरां के प्रभु गिरिधर नागर हुंगी तमारी चेली ।

इसी संग्रह की ह०प्र०सं० १५५ में प्राप्त इसी पद की तीसरी पंक्ति का पाठ इस प्रकार मिलता है :-

सेज सूनी मोकुं निदियां न आवे, प्रभु जी पधारो आनी पेरी ।

गुजरात विद्या सभा, ह०प्र०सं० १०००

हर बिना पलक न लागे मेरी ।
पंतू पंतू बंदावन ढूंढू कुंज गलन सब हेरी ।
जे बनदाबन मोये अैसो लगत है, जैसी ससी बिन रैन अंधेरो
जोगन भई रे सन के कारण देत फिरत जग फेरी ।
छन छन जात जुग जउ बीति काहां कहूं घर मेरी ।
सूरदास प्रभु तिहारे मेल कुं क्रीसन क्रीसन कर टेरी ।

मीरां सुधा सिंधु (विरह) पृ० २०३ पद सं० १२२

पलक न लागे मेरी स्याम बिन ।
हरि बिन मथुरा ऐसी लागे शशि बिन रैन अंधेरी ।
पात पात व्रन्दावन ढूंढ्यो कुंज कुंज व्रज केरी ।
ऊंचे खड मथुरा नगरी तले बहे जमुना गहरी ।
मीरां के प्रभु गिरिधर नागर हरि चरणन की चेरी ।

मीरां सुधा सिंधु,(व्रजभाव) पृ० ६३६ पद सं० १८६

श्याम बिन पलक न लागत मोरी ।
हरि बिन मथुरा सूनी लगत है चन्द्र बिन रैन अंधेरी ।
पात पात वृन्दावन ढूंढा ढूंढा सब जग हेरो ।
अपने पिया को मं जोगन बनूंगी घर घर दूंगी फेरी ।
बाई मीरां के प्रभु गिरधर नागर चरण कमल की चेरी।

चंदसखी का जीवन और साहित्य,पृ० १३० पद सं० १७६

पलक न लागे, स्याम बिन पलक न लागे मोरी ।
हरि बिनु मथुरा ऐसी लगत है चंदा बिन रैन अंधेरी ।
इत मथुरा उत गोकुल नगरी बिच बिच जमुना गहरी ।
सांवरे की खातिर जोगिन बनूंगी घर घर दूंगी फेरी।
चंदसखी भज बाल कृष्ण छवि हरि चरनन की चेरी ।

सूरसागर (सभा) पृ० १३४० पद सं० ४१८७

हरि बिनु पलक न लागति मेरी ।
पात पात वृंदावन ढूंढ्यौ कुंज गली सब हेरी ।
हम दुखिया दुख ही कौं सिरजी जनम जनम की चेरी ।
सूरदास प्रभु तुम्हरे दरस कौं भई भसम की ढ़ेरी ।

यह पद प्रकाशित रूप में सूरदास,मीरां और चंदसखी तीनों के ही नाम से प्राप्त होता है किन्तु अप्रकाशित रूप में यह पद सूरदास और मीरा के ही नाम से प्राप्त होता है । ऐसा प्रतीत होता है कि विरह-भावना से सम्बद्ध होने के कारण यह पद सूरदास और मीरां दोनों ने अपनी-अपनी शैली के अनुरूप रचा होगा । इसीलिए सूर ने " हरि" और मीरां ने " श्याम " सम्बोधनों का प्रयोग किया है । कालांतर में भावधारागत साम्य के कारण सूरदास और मीरां के पदों का परस्पर मिश्रण हो गया । सूरदास के पद में मीरां की पंक्तियों का मिश्रण इसका प्रमाण है ।

जहां तक चंदसखी के नाम से इस पद के प्राप्त होने का प्रश्न है ऐसा प्रतीत होता है कि मीरां का यह पद कालांतर में चंदसखी के नाम से गाया जाने लगा । मीरां और

चंदसखी के नाम से प्राप्त पदों में पर्याप्त समानता है केवल कतिपय शब्दों का ही अंतर दिखलाई पड़ता है। चंदसखी के नाम से यह पद गु०ह०प्र० में नहीं प्राप्त होता। अतः केवल प्रकाशित रूप के आधार पर मीरां के पद से पर्याप्त समानता के कारण इसे चंद-सखी कृत नहीं माना जा सकता है।

६- गुजरात विद्या सभा, ह०प्र०सं० २७०२

फूलन की सारी पहरे तन ।
फूलन को कंचुकी फूलन की ओढ़नी अंग अंग फूल फूले ललनों के मन ।
फूलनि को हार फूलनि की माल गरें फूलन के अभरन सीस गुंथे फूलघन ।
फूलन के हाव भाव फूलनि के चौज़ चाव विविध वरन फूल फूले वृंदावन ।
अरुन हरित मंडल शिखर अरुन अंकुरह लावत मिथुन मधुपान ।
पिक खग कुल की रतन नित नया तौर मंद सुगंध वहे मलय पवन ।
गिरिधर पिय को फूलन्हों कोउ समउल गावत वसंतराग मिलि युवती जन ।
सुनि मृदु वचन कौ गिरिवरधर धरि तट किंकिन जाना ।
नव नव केलि विलास मोहन संग चंचल नैन विसाला ।
बिनत कुसुम राधिका भामिनी गुंथि मनोहर माला ।
कृष्णा के प्रभु के कंठ मिलति भेटत स्याम तमाला ।

कीर्तन संग्रह द्वि०भा० पृ० ३१

फूलन की सारी पहरे तन ।
फूलन को कंचुकी फूलन की ओढ़नी अंग अंग फूले ललना के मन ।
फूलन के हार फूलन की माला फूलन के आभरन केस गुंथे फूलघन ।
फूलन के हाव भाव फूलन के चोवा विविध वरन फूल्यौ वृंदावन ।
श्री गिरिधर पिय के फूल नांही कोय समतूल गावत वसंत राग युवती जन।
कृष्णादास बलिहारी छिनछिन रखवारी अखिल लोक युवति राधिका प्राणप्रतिन ।

कीर्तन संग्रह की तुलना में गु०ह०प्र० के पद में पंक्ति संख्या अधिक है। पद के अध्ययन से लगता है कि गु० का पाठ किन्हीं दो पदों का मिश्रित रूप है। क्योंकि

दोनों पदों की जिन पंक्तियों में समानता है उनका तुकान्त ` न ` से हुआ है। गु०ह० प्र० में प्राप्त पद को अन्तिम चारों पंक्तियां का तुकान्त `ला` है तथा छंद की दृष्टि से भी इन चारों पंक्तियों में मात्राएं पूर्व पंक्तियों की अपेक्षा कम हैं। यही स्थिति गु०ह०प्र० के पद की चौथी और पांचवी पंक्तियों को भी है। यद्यपि उनका तुकान्त न से ही हुआ है किन्तु अन्य पंक्तियों को अपेक्षा उनमें भी मात्राएं कम हैं। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि गु०ह०प्र० के पद की यह पंक्तियां किसी अन्य पद की हैं जिनका मिश्रण इस पद में किसी कारण हो गया है।

१०- गुजरात विद्या सभा ह०प्र०सं० १७५८

दशरथ सुत देख देख जनक सुता मोही ।
कठन धनुष तोरे मेरा पति आई ।
सिता जी को वचन सुन सबहि मुख मोड्यो।
तबहि ततकाल राम कठण धनुष तोड़ो ।
राजा सब हार चले बोस भुजा बाह रे ।
सबहि को मान मोड़ो लछमन के माह ।
सीता आई पाय परि काहा कियोउ न बोला ।
जनकई आनंद भयो अरपि वरमाला ।
जै जै कार बर भयो बाजे बहु बाजा ।
अगू के स्वामि जित आये अयोध्या के राजा।

गुजरात विद्या सभा, ह०प्र०सं० २३६७

दशरथ सुत देख देख जनक सुता मोही ।
धनक वाण कोई चढ़ावो मेरा पत जेहो ।
जाओ को जनक कु धनक को पण छाके ।
सीया वर माधुरी महर ताही तनक काढ़े ।
बड़े बड़े भूप कहिये बीस भुजा जाही ।
वाको अभिमान मोड़ो ताको अभिमान मोड़ो लछमन के माह ।
जै जै कार भयो भले किनो वाला ।

सीता नहीं पाजे ग्याण रोपी वरमाला ।
घर घर मंगल गावे बाजा बहु वाजे ।
अगर के स्वामी जीत आये अयोध्या के राजा।

राग कल्पद्रुम प्र०भा० पृ० ६३

दशरथ सुत देख देख जनक सुता मोही ।
धनुष बान कोई चढ़ावे मेरो पति सोही ।
सीता जू कहे पिता जी सों धनुष प्रनत हो जी ।
ऐसो वर राम सजि तिलक को सजो ।
सीता जु के वचन सुनत सब हो मुख मोर्यो।
तब हो ततकाल राम कठिन धनुष तोर्यो ।
घर घर आनंद अचरज यह कियो बाल ।
तब ही सिय पाय लागी डारी हैं जो जयमाल ।
जय जय जयकार होत बाजे बहु बाजा ।
अग्र के स्वामी जीत आये अयोध्या के राजा।

उपर्युक्त पद के तीनों रूपों में विशेष कोई अंतर नहीं है। तीनों में ही कुछ पंक्तियों की शब्दावली में समान्य सा अन्तर मिलता है जो पद के मौखिक परंपरा में रहने के कारण संभव ही है ।

११- गुजरात विद्या सभा, ह०प्र०सं० ४७५

जो तु राम नाम चित धरतो ।
जमकी तराश सबे मिट जावें भगत नाम तेरो पड़तो ।
तांदुल घृत पकवान मिठाई पाक पयोशन करतो ।
थोड़ो थोड़ो कर उंचो करतो, तो कबहुं न टोटो परतो ।
कर बेपार संतन मुख लेतो मूल गांठ नहीं करतो ।
गुरु परताप साधु की संगत इया बिध निसदिन तरतो ।
पुरब जनम के करम मिट जाते मुनसा देह धरतो ।
सुरदास वईकुंठ पठतो कोउ न फेट पकरतो ।

सूरदास (सभा) पद सं० २६७

जौ तु राम-नाम चित धरतौ ।
अबकौ जन्म आगिलौ तेरौ दोउ जन्म सुधरतौ ।
जम कौत्रास सब मिटि जातौ भक्त नाम तेरौ परतौ ।
तंदुल घिरत सनपि स्याम कौं संत परोसौ करतौ ।
हौ तौ नफा साधु की संगति मूल गांठ नहिं टरतौ ।
सूरदास बैकुंठ पैठ में कोउ न फैंट पकरतौ ।

ऐसा प्रतीत होता है कि गु०ह०प्र० का पाठ सभा की तुलना में कहीं अधिक पूर्ण है क्योंकि उन अतिरिक्त पंक्तियों से पद की भावधारा में कोई गतिरोध नहीं उत्पन्न होता है वरन् वे पद के प्रतिपाद्य में सहायक ही सिद्ध होतीं हैं। कदाचित पहले मूल पाठ गु०ह०प्र० वाला ही रहा होगा,बाद में मुद्रित पाठ ही शेष रह गया ।

१२- गुजरात विद्या सभा, ह०प्र०सं० २४६३

नवल वसंत नवल वृंदावन नवल साम खेलै होरी ।
अति सुगंध कुमकुम केसर रंगे राधे गोरी ।
नवसत सजे सकल वृज विनता मिलि साम पर दोरी ।
छिरकत भीजत करत कुतूहल बोलत हो हो होरी ।
चढ़े विमान सूर मुनि देखी नयनन में बस जोरी ।
परमानंद दास कहां वरणूं रसना है मतथोरी ।

परमानंद सागर कां० पद सं० ११६६

नवल वसंत नवल व्रन्दावन नवल स्याम खेलै होरी ।
चोबा चंदन अगर कुमकुमा छिरकत राधा गोरी ।
नव सत साज सिंगार सुंदरी चली सबै व्रजखोरी ।
और सुगंध लिये पहिरनि कों अबीर गुलाल भरी झोरी ।
बाजत ताल पखाज झांझ डफ मुरली धुन थोरी ।
गावत राग वसंत सरस सुर वाला बैसि किसोरी ।

चढ़ि विमान देव-गन आये निरखि निरखि यह जौरी ।
परमानंद प्रभु के संग खेलत बोलत हो हो हौरी ।

प्रस्तुत पद का गु०ह०प्र० का पाठ मुद्रित पाठ की तुलना में न्यून है । विषय-वस्तु और भाव की दृष्टि से मुद्रित पाठ अधिक पूर्ण लगता है । गु०ह०प्र० के पाठ में वर्ण-साम्य या लिपिकार की असावधानी के कारण कुछ पंक्तियां छूट गई हुई जान पड़ती हैं ।

१३- गुजरात विद्या सभा, ह०प्र०सं० १०००

बरसाने की नवल नार मिल हौरी खेलन आई री ।
बरबर धाये जाये जमुना तट घेरे कुंवर कन्हाई री ।
हंत मौहन ग्त राधा प्यारी षेल मचो दो धाई री ।
रसीया री गार मन गावे पारी पीया मन भाई री ।
केसर कसतुरी मैलागर गागरी भरभर लाई री ।
अबीर गुलाल फेट भर भामनी कर कंचन पिचकाई री ।
खेलत खेलत रसिक सिरोमन स्याना निकट बोलाई री ।
रिणकिस प्रभु रीभ स्याम घन वनमाला पेराई री ।

कीर्तन संग्रह द्वि०भा० पृ० ७१

बरसाने की नवल नारी मिलि हौरी खेलन आई हो ।
बरबट धाय जाय जमुना तट घेरे कुंवर कन्हाई ।
अति भीनी केसरि रंग भीनी सारी सुरंग सुहाई ।
कंचन बरन कंचुकी ऊपर झलकत जोवन झांई ।
केसरि कस्तूरी मलयागर भाजन भरि भरि लाई ।
अबीर गुलाल फेंट भरि भामिनि करन कनक पिचकाई ।
उतते गोप सखा सब उमगे खेल मच्यो उरमाई ।
बाजत ताल मृदंग झांझ डफ मुरली मधुर बजाई ।

खेलत खेलत रसिक शिरोमणि राधा जु निकट बुलाई ।
रिसीकेश प्रभु रीझि श्यामघन बनमाला पहराई ।

प्रस्तुत पद के मुद्रित पाठ की तुलना में गु०ह०प्र० के पाठ में तीन पंक्तियां कम हैं । लिपिकार की असावधानी या गायन परंपरा में रहने के कारण इन पंक्तियों का छूट जाना संभव ही है । मुद्रित पाठ में जो अधिक पंक्तियां प्राप्त होती हैं उनसे विषय-वस्तु की अभिव्यक्ति अधिक पूर्ण बन सकी है ।

१४- गुजरात विद्या सभा, ह०प्र०सं० ३३

हम पर काहु कु भुकत वृजनारी ।
आपणे भाग्य ये कोउ सकी भजनारी हरजी की कृपा हो न्यारी ।
हम सब कलनी में करुं रीतु बरी लेकर घोर पकडारी ।
जब थे हाथे पडी गुंणी जन के वाजत राग दुलारी ।
तन मेरो टेढ़ो सब कोऊ जाणे सब रस भये अधिकारी ।
सूरदास प्रभु दान जान के अपने हाथ समारी ।

सूरसागर (सभा) पद सं० ४०६२

हम पर काहे झुकति वजनारी ।
साझे भाग नहीं काहू कौ हरि की कृपा निनारी ।
कुबिजा लिख्यौ संदेस सबनि कौं अरु कीन्ही मनुहारी ।
हौं तौ दासी कंसराइ की देखौ मनहिं बिचारी ।
फलनि मांझ ज्यों करुइ तोमरी रहत घुरे पट डारी ।
अब तौ हाथ परी जंत्री के बाजत राग दुलारी ।
तनु ते टेढ़ी सब कोउ जानत परसि भई अधिकारी ।
सूरदास स्वामी करुनामय अपने हाथ संवारी ।

प्रस्तुत पद में गु०ह०प्र० के पाठ की तुलना में मुद्रित पाठ में तीन पंक्तियां अधिक मिलतीं हैं । लगता है कि गु०ह०प्र० के पाठ में यह पंक्तियां किसी कारण छूट गई हैं । यह अतिरिक्त पंक्तियाँ विषय-वस्तु की पूर्ण अभिव्यक्ति में सहायक ही हैं । इस कारण मुद्रित पाठ अधिक प्रामाणिक प्रतीत होता है ।

१५- गुजरात विद्या सभा, ह०प्र०सं० १०६१

तुम बिना मेरो कौण खबर ले गोवरधन धारी ।
औरन कु कोई और भरोशा मेरे आशा तिहारो रे ।
मोरे मुगुट पोतांबर सोहिये कुंडल को छवि नारी रे ।
वृंदावन की कुंज गलन मां शोहिये श्रीराधा पारी रे ।
ईत गोकुल उत मथुरा नगरी बीच जमुना बहे गहरी रे ।
चंदरसखी भज बाल कृष्ण छवि चरण कमल चितवारी रे ।

विविध धोल तथा पद संग्रह,प्र०भा० पृ० ३१२

तुम बिन मेरी कौन खबर ले गोबरधन गिरधारी ।
औरन कु कोई और भरोशा हमकू आस तिहारी रे ।
मोरे मुगुट शिर छत्र बिराजे कुंडल की छवि न्यारी रे ।
जमुना के नीरे तीरे धेनु चरावे बंसी बजावे रंग प्यारी रे ।
वृंदावन की कुंज गलन मां शोभिये श्रीराधा प्यारी रे ।
सूरदास प्रभु तिहारे मिलन कुं चरण कमल पर वारी ।

मीरां-वृहत-पद-संग्रह पृ० २४८ पद सं० ४३० एवं मीरां सुधा सिंधु पृ० ३२६
पद सं० १७

तुम बिन मोरी कौन खबर ले गोबरधन गिरधारी ।
मोर मुकुट पीताम्बर सोहे कुंडल की छवि न्यारी रे ।
भरी सभा में द्रौपदी ठारी राखो लाज हमारी रे ।
मीरां के प्रभु गिरिधर नागर चरण कमल बलिहारी ।

मीरां के अन्य पदों के समान ही इस पद के भी दो भिन्न रूप मिलते हैं। गु०ह०प्र० के और प्रथम मुद्रित पद में केवल एक पंक्ति का ही अंतर मिलता है जो विशेष महत्वपूर्ण नहीं। द्वितीय मुद्रित रूपद का पाठ अन्य दोनों पाठों की तुलना में न्यून है और उसमें पंक्तियां कम हैं और तीसरी पंक्ति एक नवीन कथा वस्तु की है जो अन्य पदों में उपलब्ध नहीं। ऐसा लगता है कि गु०ह०प्र० का पाठ मुद्रित की तुलना में अधिक पूर्ण है। गुजराती परंपरा में उसका यह रूप सुरक्षित रहा जबकि हिन्दी परंपरा में उसका मुद्रित रूप ही शेष रह गया ।

आलोच्य पदों की उनके उपलब्ध रूपों से तुलना करने से ज्ञात होता है कि स्थूल रूप से दोनों में पर्याप्त साम्य है लेकिन कहीं-कहीं उनमें पर्याप्त अन्तर भी दिखाई पड़ता है। यह अन्तर कवि नाम छाप और पदों में चरणों की न्यूनाधिकता के रूप में लक्षित होता है। भाषा में रूप परिवर्तन के सामान्य कारण इनके पीछे कार्य करते हुये लक्षित होते हैं। कुछ स्थलों पर यह प्रवृति इतनी प्रमुख हो गई है कि कतिपय पदों के उपलब्ध रूप में उनके मुद्रित रूप से पर्याप्त अन्तर दिखलाई पड़ता है। आलोच्य पदों में प्राप्त परिवर्तन, पाठ विज्ञान और भाषा के रूपात्मक अध्ययन में पर्याप्त महत्वपूर्ण कहे जा सकते हैं।

-0-

अध्याय ६

पाठ की दृष्टि से विचार

गुजराती हस्तलिखित पद-संग्रहों में प्राप्त हिन्दी पदों का पाठ की दृष्टि से अध्ययन करने के लिए केवल सूरदास, परमानंददास और कबीर को ही लिया गया है । इन कवियों को प्रस्तुत अध्ययन में सम्मिलित करने का मुख्य कारण इनके पदों की बहुलता ही है । अन्य कवियों के पद इतनी अधिक मात्रा में नहीं प्राप्त होते जिनके आधार पर उनका भी अध्ययन इन तीनों कवियों के समान किया जा सकता । आगे क्रमशः सूरदास , परमानंददास और कबीर के आलोच्य पदों का पाठ की दृष्टि से अध्ययन प्रस्तुत किया जा रहा है ।

सूरदास के पद

गुजरात में वल्लभ सम्प्रदाय के अधिक प्रचार तथा प्रसार के कारण पुष्टिमार्ग के जिन कवियों के पदों का वहां अधिक प्रचार तथा प्रसार हुआ, उनमें अष्टछाप के श्रेष्ठतम् ' सूर ' का योग विशेष उल्लेखनीय है । गुजरात के विभिन्न हस्तलिखित पद-संग्रहों में सूरदास के पद प्रचुर मात्रा में प्राप्त होते हैं, जिनका संख्या क्रम निम्नप्रकार है -

	ह०प्र०सं०	-	प्राप्त पदों की संख्या
गु०	३३	-	१
	१२०	-	१
	१८३	-	२
	११६	-	५
	२८४	-	२
	४७५	-	६
	५७७	-	१
	६१२	-	६
	६६१	-	२
	८०१	-	१७
	८६५	-	१

ह०प्र०सं०	-	प्राप्त दों की संख्या
१०००	-	२४
१०३५	-	६
१०३६	-	६
१०५७	-	२
१०६१	-	७
११६०	-	४
१३२०	-	५
१३२५	-	१
१३२९	-	२
१५०३	-	१
१५०७	-	२
१५६१	-	५
१७४८	-	२
१७७६	-	१
२५४७	-	२
२५५९	-	३
२५५०	-	५
२७०२	-	२
२७०३	-	१
डा० २-२	-	२
३-२	-	२
६-१५	-	३
१०-७	-	१
१२-६	-	१
१६-१	-	२
३०-२३	-	१

ह०प्र०सं०		-	प्राप्त पदों की संख्या
का०	७१	-	१
	८२	-	१
	१११	-	१
	१३४	-	१
	२१०	-	१
	२२२	-	१
	२२३	-	१
	२०६	-	२
आ०	१	-	१२
	२	-	४
म०	१	-	६
	२	-	६

नागरी लिपि जनित विकृतियां

उपर्युक्त प्रतियों द्वारा प्रस्तुत सूरदास के पाठ का तुलनात्मक अध्ययन करने पर ऐसी विकृतियां प्राप्त होती हैं जिनकी संभावनाओं पर विचार करने से ज्ञात होता है कि इन प्रतियों का पूर्ववर्ती रूप नागरी लिपि में अवश्य रहा होगा । नीचे कुछ ऐसी विकृतियों का उल्लेख किया जा रहा है =

१- भादों की रैण अंधियारी [१] से प्रारम्भ होने वाले पद की द्वितीय पंक्ति के उत्तरार्थ का पाठ इस प्रकार मिलता है -

" दश दशा_कथ_कंस भये भारी "

यहां कथ पाठ निरर्थक है । सूरसागर(सभा) पद सं० ६२६ में कथ के स्थान पर " कंत " पाठ मिलता है । विकृत कथ पाठ नागरी लिपि में ही संभव है । कंत पहले कंथ

१- ह०प्र०सं० १ आ० ।

में परिवर्तित होकर बाद में कंथ का अनुस्वार छूट जाने पर कथ हो गया । यह पाठ-विकृति इसी कारण संभव हुई ज्ञात होती है ।

२- " झगरिनि तें हो बहुत खिझाई "[१] से प्रारम्भ होने वाले पद की तीसरी पंक्ति का पाठ इस प्रकार मिलता है -

" वेगत नार छेद बालक को जातु है व्यार मराई "

यहां वेगत पाठ विकृत है । जिससे उपर्युक्त अर्थबोध में व्यवधान पड़ता है । कीर्तन-संग्रह प्र०भा०पू०पृ० ६८ में `वेगितू` पाठ मिलता है, जो अर्थ की दृष्टि से अधिक उपयुक्त है । `त` में `ऊ` की मात्रा छूट जाने का कारण त और तू में सादृश्य ही है । तू के ऊ की मात्रा नीचे के शब्द ए और ओ की मात्रा में परिवर्तित हो सकती है । इसी कारण यहां ऊ की मात्रा छूट गई प्रतीत होती है ।

वर्ण-विपर्यय के कारण

१- सखी ये कौन तेहारे जात "[२] से प्रारम्भ होने वाले पद की चौथी पंक्ति का पाठ इस प्रकार मिलता है -

" अति मरदुल चरन बन ही बन बरहत सुनिअत अद्भुत बात "

यहां बरहत पाठ विकृत ज्ञात होता है । सूरसागर(सभा)पद सं० ४८७ में बरहत के स्थान पर " बिहरत " पाठ मिलता है जो स्पष्ट ही उपयुक्त जंचता है । यह विकृति वर्ण-विपर्यय के कारण हुई ज्ञात होती है । इ की मात्रा भी इसी असावधानी के कारण छूट गई प्रतीत होती है ।

२- आजु वन कोउ वै जिन जाय "[३] से प्रारम्भ होने वाले पद की पांचवी पंक्ति का पाठ इस प्रकार मिलता है -

" कित हो विमल करत वें काजे बेगि चलो उठि धाय "

यहां पर विमल पाठ विकृत है । जिसका कारण वर्ण-विपर्यय ज्ञात होता है । इसके स्थान पर कीर्तन-संग्रह प्र०भा०पू०पृ० ६३८ में " विलवं " पाठ मिलता है जो ` बिलम `

१- ह०प्र०सं० १ म०

२- ह०प्र०सं० १०००गु०

३- ह०प्र०सं० ८०१ गु०

का ही तत्सम रूप है और इस प्रसंग में अर्थ की दृष्टि से उपयुक्त प्रतीत होता है ।

उच्चारण-साम्य के कारण

१- भादों की रैण अंधियारी "[१] से प्रारम्भ होने ~~वाला~~ वाले पद की द्वितीय पंक्ति के उत्तरार्थ का पाठ इस प्रकार मिलता है -

" दश दशा कथ कंस मये मारी "

यहां मये शब्द विचारणीय है । सूरसागर (सभा) पद सं० ६२६ में इसके स्थान पर " मय " पाठ मिलता है । अन्तर " ए " की मात्रा का है किन्तु इससे अर्थ में भिन्नता उत्पन्न होती है । सूरसागर के अनुसार इसका स्वाभाविक सरलार्थ होगा, " हे कंत, दसों दिशाओं में कंस का भारी भय है " । जब कि आ० के मये से जो अर्थ निकलता है वह अप्रसंगिक है । यह विकृति उच्चारण-साम्य के कारण हुई जान पड़ती है, क्योंकि कोई प्रति सामने न रहने पर यदि किसी अन्य व्यक्ति से सुनकर लिखा जाये तो भय को मये लिखा जा सकता है ।

प्रतिलिपिकार की असावधानी के कारण

१- " वलि वलि चरित गोकुल राइ "[२] से प्रारम्भ होने वाले पद की चतुर्थ पंक्ति का पाठ इस प्रकार मिलता है -

" अवहेत जननी दुध डारे पिवत ककु अ न खाइ "

यहां " अवहेत " पाठ विकृत है । सूरसागर (सभा) पद सं० १११६ में अवहेत के स्थान पर " कहेत " पाठ मिलता है, जो उपयुक्त है । अवहेत का प्रस्तुत प्रसंग में कोई स्पष्ट अर्थ नहीं ज्ञात होता है । ऐसा जान पड़ता है कि अब के पश्चात " क " का लोप हो गया है । अब अधिक पाठ है जो संभवत: किसी प्रतिलिपिकार द्वारा किया गया है

२- " हरि मुख देखत हो वसुदेव "[3] से प्रारम्भ होने वाले पद की दूसरी पंक्ति का पाठ इस प्रकार मिलता है -

" कोटि काम स्वरू सुन्दर कोउ न जाने मेव "

१- ह०प्र०सं० १ आ०

२- ह०प्र०सं० १ म०

३- ह०प्र०सं० ८०१ गु०

सूरसागर (सभा) पद सं० ६२३ में स्वरू के स्थान पर स्वरूप पाठ मिलता है जो संगत है। गु० में किसी कारणवश लिपिकार के लिखने से प छूट गया है।

३- सखी ये कौन तेहारे जात[1] से प्रारम्भ होने वाले पद की पांचवी पंक्ति का पाठ इस प्रकार मिलता है -

" सुंदर ते सुंदर कुंवर दोउ सुर करन मलात "

यहां पर मलात पाठ विकृत है। सूरसागर(सभा) में (पद सं० ४८७) इसके स्थान पर " कुम्हिलात " पाठ मिलता है। " कु " का छूट जाने का एक मात्र कारण लिपिकार की असावधानी ही कही जा सकती है।

४- एसौ पत्र लिखि पठ्यो नृप वसंत[2] से प्रारम्भ होने वाले पद की चौथी पंक्ति के उत्तरार्ध का पाठ इस प्रकार मिलता है -

" बाचतहु कपि सुनहु नार "

सूरसागर(सभा) पद सं० ३४६१ में इसका पाठ, " बाचत सुकपिक सुनहु सब नार " मिलता है। गु० के पाठ में " सुकपिक " पाठ के स्थान पर केवल हुकपि पाठ ही मिलता है। क के पूर्व सु एवं पि के पश्चात क भ्रमवश छूट गये जान पड़ते हैं।

फारसी लिपि जनित पाठ विकृतियां

१- सखी ये कौन तेहारे जात[3] से प्रारम्भ होने वाले पद की पांचवी पंक्ति का पाठ इस प्रकार मिलता है -

" सुंदर ते सुंदर कुंवर दोउ सुर करन (कु)मलात "

यहां करन पाठ विकृत है। सूरसागर(सभा) पद सं० ४८७ में इसके स्थान पर किरिन पाठ मिलता है। किरिन से करन हो जाना केवल फारसी लिपि के ही कारण संभव है। फारसी लिपि में करन और किरिन एक समान ही लिखे जाते हैं। यह विकृति इसी कारण हुई जान पड़ती है।

२- इसी प्रति में " तुमही बिमुख रघुनाथ कौन बद जीवन बनै " पंक्ति से प्रारम्भ होने वाला पद मिलता है। इस में बद पाठ विकृत है। सूरसागर(सभा) पद सं० ४९७

१- ह०प्र०सं० १००० गु०

२- ह०प्र०सं० १५०३ गु०

३- ह०प्र०सं० १०००गु०

इस पाठ के स्थान पर बिधि मिलता है,जो उपयुक्त है। बिधि से बद हो जाना केवल फारसी लिपि में संभव है।

२- इसी पद की छठी पंक्ति का पाठ इस प्रकार मिलता है -

" सूरदास प्रभु सावंरी सीस धरि भरत चले बलखाई "

पाठ बलखाई के स्थान पर सूरसागर(सभा) पद सं० ४६७ में बिलखाई पाठ मिलता है, जो सार्थक है। फारसी लिपि में बिलखाई तथा बलखाई एक समान ही लिखे जाते हैं। यह विकृति भी फारसी लिपि की ज़बर और पेश की अव्यवस्था के कारण मानी जा सकती है।

३- जो पै प्रभु मेरे दोष बिचारे[1] से प्रारम्भ होने वाले पद की चतुर्थ पंक्ति का पाठ इस प्रकार मिलता है -

" सब तरुवर की साषा लषनी लषत सारदा हारे "

लषनी लषत पाठ के स्थान पर सूरसागर (सभा) पद सं० १८३ में लेखिनी लिषत पाठ मिलता है जो स्पष्ट ही प्रसंग सम्मत अर्थ का बोध कराता है। ऊर्दू में ये के दोनों नुक्ते असावधानी वश न लगायें जायं तो लेषनी का लषनी पढ़ा जा सकता है,अथवा किसी अन्य कारणवश लेखक ए की मात्रा लगाना भूल गया हो किन्तु इस अन्तर से अर्थ में पर्याप्त अंतर हो जाता है। लिषत का लषत भी फारसी लिपि के प्रभाव से ज्ञात होता है।

४- ऐसो पत्र लिखी पठ्यो नृप वसंत[2], से प्रारम्भ होने वाले पद की द्वितीय पंक्ति के उत्तरार्ध का पाठ इस प्रकार मिलता है -

" दौतु कमल मिस ममरगात "

यहां मिस पाठ के स्थान पर सूरसागर(सभा) पद सं० ३४६५ में मसि पाठ मिलता है। प्रसंग पर विचार करते हुए मसि पाठ ही अधिक उपयुक्त ज्ञात होता है। मसि से मिस हो जाना फारसी लिपि में ही संभव है और यह विकृति इसी कारण हुई ज्ञात होती है।

१- ह०प्र०सं० १ आ०

२- ह०प्र०सं० १५०३ गु०

अज्ञात कारणों से

१- तुम ही बिमुख रघुनाथ,[१] से प्रारम्भ होने वाले पद की पांचवी पंक्ति का पाठ इस प्रकार मिलता है -

" बार बरस तात की आज्ञा मोपै मेटी न जाई "

यहाँ बार पाठ आप्रसंगिक है। कारण राम को १४ वर्ष बनवास की आज्ञा थी। १२ वर्ष को नहीं। सूरसागर (सभा) पद सं० ४६७ में चौदय बरस पाठ मिलता है, जो उपयुक्त है। चौदह से बार किस प्रकार हो गया, इसका कारण अज्ञात है।

२- इसी प्रति के "कपि जाबे कहियौ बिनती मोरी " से प्रारम्भ होने वाले पद की तीसरी पंक्ति का पाठ इस प्रकार है -

" अंध दोहू आंखन छलबल करि आनि मुख नेरी "

यहाँ दोहू पाठ प्रसंगानुकूल नहीं है। सूरसागर(सभा) पद सं० ५३७ में बीसहुं लोचन मिलता है। मान्यता है कि रावण के दस सिर और बीस नेत्र थे। अपनी अनीति में वह बीसों नेत्रों से अन्धा था। इस कारण सूरसागर का पाठ अधिक तर्क संगत है। जबकि गु० में केवल दो ही आंखो का उल्लेख हुआ है। यह पाठ किस कारण परिवर्तित हुआ, इसका कारण अज्ञात है।

३- सुनियत राम तियागी दान "[२] से प्रारम्भ होने वाले पद की द्वितीय पंक्ति का पाठ इस प्रकार है -

" पांच पदारथ दियो सुदामेह जो गुरु सुत को आन "

सूरसागर(सभा) पद सं० १३५ में पांच के स्थान पर चारि पाठ मिलता है, जो परम्परा -गत मान्यता के अनुसार अधिक उपयुक्त है। कारण कवि प्रसिद्ध केवल चार पदार्थों की ही है। यथा- धर्म,अर्थ,काम,मोक्ष।

४- इसी पद की चौथी पंक्ति का पाठ इस प्रकार मिलता है -

" रावन के दस मस्तक छेदे कर गहे सारंग पानि "

१- ह०प्र०सं० १०००गु०

२- ह०प्रे०सं० २ आ०

सूरसागर में कर के स्थान पर सर पाठ मिलता है जो अर्थ की दृष्टि से अधिक उपयुक्त है। कारण सूरसागर के अनुसार पंक्ति का अर्थ है - सारंगपानि (धनुष धारण करने वाले) राम ने सरों (वाण) को ग्रहण कर रावण के दसों मस्तकों का विनाश कर दिया। जबकि आ० के अनुसार पंक्ति का अर्थ सारंगपानि ने हाथ गह कर रावण के दसों मस्तकों का नाश कर दिया। सारंगपाणि -(धनुर्धारी) के प्रसंग में सूरसागर का सर (वाण) की उपयुक्तता स्वत: सिद्ध है।

प्रतिओं का मुद्रित रूपों से सम्बन्ध

सूरदास के पद प्रकाशित रूप में वैसे तो अन्य पुस्तकों में भी मिल जाते हैं, किन्तु प्रस्तुत अध्ययन में केवल कीर्तन-संग्रह तथा सूरसागर(सभा) का ही आधार लिया गया है। कीर्तन-संग्रहों के संकलन का आधार गुजरात में प्राप्त विभिन्न हस्तलिखित प्रतियां हैं, जबकि सूरसागर का संपादन हिन्दी लिपि में प्राप्त हस्तलिखित प्रतिओं के आधार पर हुआ है।

गु० की १०६१,१०३६,१०३५, ११६,१३२०,२५५०,१५६१,२५५६,६६१,१०५७,१५०७, २५४७,२८४,१८३,१३२६,१२०,२७०३,१७४८,डा० तथा फा० की सभी प्रतियां तथा आ० और म० की प्रथम प्रतियों में प्राप्त सूरदास के पद अधिकांश रूप में ज्यों के त्यों कीर्तन-संग्रह में मिल जाते हैं। इस आधार पर वे कीर्तन-संग्रह के पाठ परम्परा का अनुकरण करती हैं। इसी प्रकार गु० की १०००,८०१,४७५,६१८,२७०२,८६५,३३,१५०३,१७७६, १३२५, संस्था की प्रतियां तथा आ० और म० की द्वितीय प्रतियों में प्राप्त सूरदास के पद अधिकांश रूप में सूरसागर में मिल जाते हैं। इस कारण इन प्रतिओं का मूल संबंध सूरसागर की प्रतिओं से है।

सूरदास के पदों की स्थिति नीचे दिये हुए कोष्टक से स्पष्ट हो जाती है -

सूरदास

प्राप्त पदों के प्रकाशित होने का विवरण जिसमें सम्बद्ध ग्रंथ का नाम निर्दिष्ट कर दिया गया है -

ह०प्र०सं०	प्राप्त पद सं०	सूरसागर	कीर्तन-संग्रह
गु० ३३	१	१	-
११६	५	२	३
१२०	१	-	१
१८३	२	-	२
२८४	२	१	२
४७५	६	६	३
५७७	१	१	-
६१२	६	४	२
६६१	२	-	२
८०१	१७	१४	३
८६५	१	१	-
१०००	२४	१८	६
१०३५	६	१	५
१०३६	६	१	५
१०५७	२	-	२
१०६१	७	-	७
११६०	४	२	२
१३२०	५	१	४
१३२५	१	१	-
१३२६	२	-	२
१५०३	१	१	-
१५०७	२	-	२
१५६१	५	१	४
१७४८	२	-	२

ह०प्र०सं०	प्राप्त पद सं०	सूरसागर	कीर्तन-संग्रह
१७७६	१	१	-
२५४७	२	-	२
२५५०	५	-	५
२५५९	३	-	३
२७०२	२	२	१
२७०३	१	-	१
डा० २-२	२	-	२
३-२	१	-	१
६-१५	३	-	३
१०-३	१	१	१
१२-६	१	-	१
१६-१	१	-	१
३०-२३	१	-	१
का० ६९	१	-	१
८२	१	-	१
१११	१	१	१
१३४	१	-	१
२०९	२	-	२
२१०	१	-	१
२२२	१	-	१
२२३	१	-	१
आ० १	१२	३	९
२	४	३	१
प० १	९	२	७
२	६	६	-

सूरदास के पदों के हिन्दी रूप की तुलना में उनके गुजराती रूप की कतिपय उपलब्धियां -

गुजराती हस्तलिखित पद-संग्रहों में प्राप्त सूरदास के अधिकांश पद प्रकाशित संग्रहों में समान रूप से मिल जाते हैं। कुछ पदों में सामान्य अन्तर भी मिलते हैं किन्तु कुछ प्रतियों में विभिन्न पदों के पाठ ऐसे मिलते हैं जो प्रकाशित संग्रहों के पाठों से अधिक श्रेष्ठ सिद्ध होते हैं। यहां पर ऐसे ही स्थलों का निर्देश किया जा रहा है -

१- घनि गोकुल जहां गोविंद आये,[१] से प्रारम्भ होने वाले पद की द्वितीय पंक्ति का पाठ इस प्रकार मिलता है -

" घनि घनि नंद सुमंगल निसदिन घनि जसुमति जिनि गोद खिलाये "

यहां पर गोद खिलाये पाठ विशेष रूप से विचारणीय है। इस पाठ के स्थान पर सूरसागर(सभा) पद सं० १००२ में श्रीधर जाये पाठ मिलता है, जो उपर्युक्त पाठ की तुलना में अधिक उपयुक्त नहीं। कारण इस पद की प्रथम पंक्ति में ही कृष्ण के गोकुल में आने का वर्णन है। जिसके लिए गोकुल को धन्य-धन्य कहा गया है। सूरसागर में पुन: आरंभिक पंक्ति में गोविन्द कहते हुए भी श्रीधर कहकर पुनरावृत्ति की गई है, जो अधिक उपयुक्त नहीं प्रतीत होता। जबकि गु० का पाठ गोद खिलाये अधिक स्वाभाविक है।

२- हरि के जन की अति ठकुराई,[२] से प्रारम्भ होने वाले पद की ११वीं पंक्ति का पाठ इस प्रकार मिलता है -

" अर्थ काम दोउ भाज गये दुरि धर्म मोक्ष सिर नायो "

इसमें " भाज गये दुरि " पाठ विचारणीय है। इसके स्थान पर सूरसागर(सभा) पद सं० ४० में रहै दुवारें पाठ मिलता है। किन्तु इसी पद की ६वीं पंक्ति में अष्टसिद्धि के प्रसंग में भी " अष्टमहासिद्धि द्वारे ठाढ़ी " का उल्लेख है। इस प्रकार सूरसागर के पाठ में पुन: ११वीं पंक्ति में अर्थ-काम को द्वार पर खड़े करने के वर्णन से अनावश्यक पुनरावृत्ति ही होती है। इसकी तुलना में आ० का पाठ अधिक उपयुक्त

१- ह०प्र०सं० ८०१ गु० ।

२- ह०प्र०सं० २ आ० ।

प्रतीत होता है । क्योंकि उसमें अर्थ की उत्कृष्टता भी है और साथ ही पुनरावृति के दोष से वह मुक्त भी है ।

३- ऐसो पत्र लिख पठ्यो नृप वसंत, से प्रारम्भ होने वाले पद की दूसरी पंक्ति का पाठ इस प्रकार मिलता है -

" कागद नव दल अंब पात , दौतु कमल मिस(मसि)भमर गात "

यहां दौतु पाठ विचारणीय है । इसके स्थान पर सूरसागर(सभा) पद सं० ३४५६ में " देति " पाठ मिलता है जो अर्थ की दृष्टि से उपयुक्त नहीं । प्रसंग के अनुसार नृप वसंत ने गोपियों के मान मर्दन के लिए जो पत्र भेजा है, उस पत्र के लिखने के लिए कमल को दवात और भ्रमर को स्याही का रूपक दिया गया है । दौतु शब्द का अर्थ द्वात है और यही पाठ कीर्तन संग्रह भा० द्वि० पृ० १४ पर " द्वात " के रूप में मिलता है ।

प्रक्षिप्त पद

गु०ह०प्र० में सूरदास के जितने भी पद प्राप्त होते हैं वे उपलब्ध प्रकाशित ग्रंथो में मिल जाते हैं । इस कारण सूरदास के पदों के सम्बन्ध में यह समस्या नहीं उठती ।

परमानंद दास के पद

मध्यदेश से जिन सगुण भक्त कवियों के पद गुजरात पहुंचे, उनमें सूरदास के पश्चात परमानंददास के ही पदों की संख्या अधिक है । सूरदास के ही समान परमानंददास के पदों का प्रचार तथा प्रसार गुजरात में व्यापक रूप से हुआ । विभिन्न संग्रहालयों में सुरक्षित विभिन्न हस्तलिखित प्रतियों में परमानंददास के पद निम्न क्रमानुसार प्राप्त होते हैं -

ह०प्र०सं०	-	प्राप्त पदों की संख्या
गु० ११८	-	३
१२०	-	७
१८३	-	१
२८४	-	५
४७५	-	६
६१२	-	१०
८०१	-	१२
१०००	-	४
१०३६	-	२
१०६१	-	१
१०६७	-	२
११६०	-	१
११६७	-	१
११६८	-	१
१३२०	-	१
१३२६	-	१
१५०७	-	१
१५३२	-	२
१५६१	-	५
२३६७	-	२
२४६३	-	१
२७०२	-	२
२७०३	-	१
डा० ६-१५	-	२
७-२	-	१
६-८	-	१

ह०प्र०सं०	-	प्राप्त पदों की संख्या
१२-१०	-	४
१२-६	-	१
प्रा० ८७६	-	१
फा० ८२	-	१
१११	-	१
१५५	-	१
२०६	-	४
२१०	-	१
हिं० ३२६६	-	५
म० १	-	१५
२	-	७
आ० १	-	१०
२	-	५
३	-	१२

नागरी लिपि जनित पाठ विकृतियां

परमानंदास के पदों में कुछ ऐसी पाठ-विकृतियां मिलती हैं, जिनकी संभावनाओं पर विचार करने से ज्ञात होता है कि इन प्रतिओं का पूर्ववर्ती रूप नागरी में रहा होगा। यहां कुछ इस प्रकार की विकृतिओं का उल्लेख किया जा रहा है -

१- यह मागु सकर्णन वीर,[१] से प्रारम्भ होने वाले पद की चौथी पंक्ति का पाठ इस प्रकार मिलता है -

" गौन देतो तुमही कथारस ध्यान देतो तुमही सरी "

१- ह०प्र०सं० १ म०

इसमें गौन शब्द विकृत है। जो स्पष्टत: ही नागरी लिपि के कारण ज्ञात होता है। प०शु० पद संख्या ६०० में प्राप्त पाठ "स्रवन" का पहले स्रौन हुआ होगा और फिर स भ्रमवश लिपिकर्ता के पढ़ने में ग आया, क्योंकि नागरी स तथा ग में साम्य है। कदाचित इसी कारण सौन का गौन हो गया जो निरर्थक होने के कारण उपयुक्त नहीं लगता। पूरी पंक्ति का पाठ वस्तुत: इस प्रकार होना चाहिए - "स्रवन देउ तौ हरि कथारस ध्यान देहु तौ स्यामशरीर"

२- श्री रघुवीर पालने भूले कउसला गुन गावे,[1] पद की छठी पंक्ति का पाठ इस प्रकार मिलता है -

"हीरा खचित पाट की डोरी, रतन बनाये बाजे"

यहां बनाये पाठ विकृत है ज्ञात होता है। जो बाजे आदि राम को खेलने के लिए दिये गये होंगे वे रत्न निर्मित नहीं बल्कि रत्न जटित रहे होंगे। प०कां० पद सं० १२६६ में मिलने वाला जराय पाठ इसकी अपेक्षा अधिक उपयुक्त लगता है। प्राचीन नागरी या कैथी में न और र प्राय: एक से होते थे और ज का ब पढ़ लेना भी संभव है। यह विकृति इसी प्रकार संभव ज्ञात होती है।

३- श्री तु जमुना गोपाल भावे,[2] से प्रारम्भ होने वाले पद की पांचवी पंक्ति का पाठ इस प्रकार मिलता है -

"परम पुरान कथा यह पावन धरनी मुख वाराह कही"

इस पंक्ति का परम पाठ विकृत ज्ञात होता है। प०कां० पद सं० १३७६ तथा प०शु० पद सं० ५७६ में पद्म पाठ प्राप्त होता है। जो उपर्युक्त पाठ से अधिक उपयुक्त है। यह विकृति द, र के सादृश्य के कारण हुई ज्ञात होती है। यह त्रुटि फारसी लिपि से भी संभव हो सकती है।

४- फूले फिरै अहीर व्रज में,[3] से प्रारम्भ होने वाले पद की पांचवी पंक्ति का पाठ इस प्रकार मिलता है -

"नंदसुत गोपीलन पैनाओ छीरकट कुंकम नीर"

१- ह०प्र०सं० १ म०

२- ह०प०सं० १०६७ गु०

३- ह०प्र०सं० १५६१ गु०

इसमें गोपीलन पाठ स्पष्ट ही विकृत है । इसके स्थान पर गोपालन अधिक उपयुक्त है, जो प० ० पृ० सं० में प्राप्त होता है । कारण संदर्भ यहां पर नंद का है । नंद गोप ग्वालों के लिए ही सम्बोधित कर सकते हैं । गोपियों के लिए नहीं । अत: पाठ गोपालन ही अधिक उपयुक्त है । नागरी प्रतियों के कुछ लिपिकार शिरोरेखा को कलात्मक रूप देने के लिए बीच-बीच में उभाड़ देकर लिखा करते थे - कुछ लोग अब भी ऐसा करते हैं । जिससे कभी-कभी आ की मात्रा ए ई की मात्रा का भ्रम हो जाता है । यह विकृति इसी कारण संभव है ।

फारसी लिपि जनित पाठ-विकृतियां

एक विकृति ह०प्र०सं० १ म० में ऐसी प्राप्त होती है जिससे यह संकेत मिलता है कि उसका कोई पूर्व रूप फारसी लिपि में भी कदाचित कभी लिपिबद्ध रहा होगा । " कुंजभवन में मंगलचार " पद की तीसरी पंक्ति का पाठ, " नये नये पुष्प गुंज के तोरन नव पल्लव के वंदनवार " प्राप्त होता है । इसमें गुंज पाठ विकृत जान पड़ता है । प०का० पद सं० १५६ तथा प०शु० पद सं० ३१२ में क्रमश: कंज तथा कुंज पाठ मिलते हैं । जिनमें कंज स्पष्टत: अधिक सार्थक तथा उपयुक्त है । यह विकृति फारसी लिपि में ही संभव है । फारसी लिपि में क तथा ग लगभग एक ही प्रकार से लिखे जाते हैं । केवल एक रेखा का अंतर होता है । उपर्युक्त पाठ-विकृति का इसके अतिरिक्त कोई समाधान नहीं ज्ञात होता ।

कुछ अन्य कारण

१- कुंज भवन में मंगलचार,[१] से प्रारम्भ होनेवाले पद की चौथी पंक्ति का पाठ कक इस प्रकार मिलता है -

" चौरी कदम खंभ वंसीवट सघनलता मंडप विस्तार "

प०का० पद सं० १५६ में चौरीप०शु० पद सं० ३१८ में चौकी पाठ " चौरी " के स्थान पर प्राप्त होता है । चौरी शब्द प्रस्तुत प्रसंग में निरर्थक है, क्योंकि यहां कृष्ण-राधा के कुंज भवन में बैठने का वर्णन है । चौकी का क यदि असावधानी से लिखा जाय

१- ह०प्र०सं० १ म०

तौ र पढ़ा जा सकता है और यह भ्रान्ति इसी कारण हुई ज्ञात होती है ।

२- आजु सखी रघुनंदन आए,[1] से प्रारम्भ होने वाले पद की आंठवी पंक्ति का पाठ इस प्रकार मिलता है -

" द्वार द्वार मांगती गली आंगन तौरन कंचन कलश बंधाये "

उपर्युक्त पंक्ति में रेखांकित पाठ विकृत है । प्रसंग है राजा दशरथ के जन्म का । जिसके कारण नगर भर में वंदनवार तथा कंचन कलश आदि सजाये जा रहे हैं । इसके स्थान पर प०शु०पदसं० ३४० का पाठ मारग गरियारे(-रास्तों गलियों से) अधिक समीचीन लगता है ।

३- जब दीनानाथ करपा करे,[2] से प्रारम्भ होने वाले पद की अन्तिम पंक्ति का पाठ इस प्रकार मिलता है -

" परमानंद बड़े ध्रुवनी पत राखी "

इसमें ध्रुवनी पत शब्द निरर्थक है । प्रसंगानुसार भगवान कृष्ण ने द्रौपदी की पत अर्थात लज्जा रक्खी थी, ध्रुव की नहीं । द्रौपदी शब्द क प०कां०पद सं० १३०३ में प्राप्त होता है जो उपयुक्त है । अत: यहां द्रौपदी पाठ ही ठीक है ।

सचेष्ट पाठ-विकृतियां

ऊपर ऐसी विकृतियों का उल्लेख हुआ है जो निश्चेष्ट हैं । निम्नलिखित विकृतियां ऐसी हैं जो सचेष्ट ज्ञात होती हैं और जिनसे यह भी ज्ञात होता है कि प्रतिलिपिकार पर देश काल का प्रभाव किसी न किसी रूप में आ ही जाता है ।

खोज में प्राप्त परमानंद दास के सभी पदों की भाषा ब्रजभाषा ही है , किन्तु गुजराती लिपिकारों द्वारा गुजराती में लिपिबद्ध होने के कारण कहीं-कहीं गुजराती तथा राजस्थानी कक भाषा का प्रभाव भी दिखाई पड़ता है, और ऐसा स्वाभाविक भी है । यहां पर कुछ ऐसे स्थलों का निर्देश किया जा रहा है जो गुजराती प्रभाव के सूचक हैं -

---

१- ह०प्र०सं० १ म०

२- ह०प्र०सं० ११८ गु०

१- आये गोपी पायन परे[1], से प्रारम्भ होने वाले पद की पांचवी पंक्ति का पाठ इस प्रकार मिलता है -

" चरणनी कमल देखत भूली "

तथा दीनानाथ कृपा करी[2], से प्रारम्भ होने वाले पद की आंठवी पंक्ति का पाठ इस प्रकार मिलता है -

" परमानंद वड़े ध्रुवनी पत राखी "

उपर्युक्त पंक्तियों में प्रयुक्त नी गुजराती का विशिष्ट रूप है ।

गुज० " नी " षष्ठी स्त्री = हिन्दी " की "

२- कुंजभवन में मंगलचार[3], से प्रारम्भ होने वाले पद की दूसरी पंक्ति का पाठ इस प्रकार मिलता है -

" नो दुलहिन व्रषभान नंदनी नो दुलह हो व्रषराज कुमार "

पंक्ति में प्रयुक्त नौ नव का विकृत रूप है। गुजराती ओकारांत प्रधान है। इसी कारण नव का नौ हो गया प्रतीत होता है।

३- इसी प्रकार ह०प्र०सं० ११६७ ब गु० तथा ११६ गु० में ढीठाण, मरण, कोण आणंद, अपणे आदि शब्द मिलते हैं। यह सारे शब्द णकार बहुलता के परिचायक हैं। प्राचीन गुजराती तथा राजस्थानी में न के स्थान पर ण का ही प्रयोग मिलता है।

उपर्युक्त विवरण से यह ज्ञात होता है कि परमानंददास के पदों की उपलब्ध गुजराती प्रतियों में सबसे अधिक नागरी लिपि जनित विकृतियां हैं जिससे यह प्रमाणित होता है कि इन प्रतियों के आदर्श अधिकांश रूप में नागरी में ही रहे होंगे।

प्रतियों का मुद्रित रूपों से सम्बन्ध

परमानंद दास के पद प्रकाशित रूप में कीर्तनसंग्रहों, परमानंद सागर (कांकरोली) तथा परमानंद-सागर (शु०) में मिलते हैं। कीर्तन-संग्रहों के पदों का आधार गुजरात में प्राप्त हस्तलिखित प्रतियां ही हैं तथा अन्य दोनो का सम्पादन कां० के सरस्वती

१- ह०प्र०सं० ४७५ गु०

२- ह०प्र०सं० ११८ गु०

३- ह०प्र०सं० १ म०

भंडार में सुरक्षित हस्तप्रतियों के आधार पर हुआ है।

म० १ प्रति में केवल १५ पद प्राप्त होते हैं। जिनमें से १२ पद का० संस्करण में ज्यों के त्यों प्राप्त होते हैं। १० पद शु० से समानता रखते हैं तथा एक पद कीर्तन संग्रह में मिलता है। अत: अधिक समानता के कारण यह प्रति का० के प्रति से सम्बन्धित प्रतीत होती है। यहां पर एक ऐसे विकृत पाठ का निर्देश किया जा रहा है, जो समान रूप से दोनों में स्मक्न मिलता है, और इस विकृत-साम्य के कारण दोनों की घनिष्टता की पुष्टि होती है। पद " कुंजभवन में मंगलचार" की चौथी पंक्ति में चौरी पाठ विकृत है और यही पाठ-विकृति इसी रूप में प०का० पद सं० ११६ में भी चौरी रूप में मिल जाती है। गु० १२० में ७ पद प्राप्त होते हैं। इसमें से ४ पद समान रूप से प०शु० में मिल जाते हैं। इस आधार पर यह प०शु० की परम्परा की ज्ञात होती है। गु० ६०१ में १२ पद समान रूप से प०का० में मिल जाते हैं। अत: ऐसा प्रतीत होता है कि इस प्रति का मूल और इन दोनों ग्रंथों का मूल एक ही था। तभी पाठ में इतनी अधिक समानता मिलती है। गु० ६१२ में १० १० पदों में से ७ पद प०का० में मिलते हैं। गु० १०३६ में प्राप्त २ पद प०का० से मिलते हैं। गु० ११८ में प्राप्त ३ पद में से केवल एक पद प०का० में मिलता है। गु० १००० में ३ पद प्राप्त होते हैं। जिनमें से २ पद कीर्तन-संग्रहों में मिलते हैं। इस प्रति में एक पाठ विकृति ऐसी मिलती है जो समान रूप से कीर्तन-संग्रह तथा पं०शु० में भी प्राप्त होती है। जिससे दोनों की घनिष्टता की पुष्टि होती है। पद " प्रगट भये श्री राम भाई " की दूसरी पंक्ति में " हत्या तीन गई " पाठ मिलता है, जो इसी रूप में प०शु० ३३८ तथा कीर्तन-संग्रह,भा०प्र० उत्त० पृ० १६५ में भी मिलता है। गु० १०६७ में दो, ११६८ में एक,१५०७ में एक, २३६७ में दो, २४६७ में एक,२७०२ में एक, ४७५ में नौ,पद ज्यों के त्यों प०का० में मिल जाते हैं। अत:समान पाठ के कारण यह सभी प्रतियां प०का० परम्परा की ज्ञात होती हैं। गु० २८४ तथा १५६१ में पांच-पांच पद प्राप्त होते हैं। जिनमें क्रमश: चार-दो, प०शु० में मिलते हैं। अत: दोनों प्रतियां प०शु० की आदर्श प्रति परम्परा की हैं। डा० की ७-२ , १२-६, तथा फा० की १५५,२०६,२१० में प्राप्त एक-एक पद अपने पाठ समानता के कारण प०का० के पाठ परम्परा का अनुकरण करते हैं। म०२ तथा आ० १,२३में प्राप्त

सात, दस, पांच पदों में से छः, आठ, और चार पद प०कां० में, तथा दो, तीन, दो, दो प०शु० और एक, दो-दो पद कीर्तन-संग्रह में मिल जाते हैं। किन्तु अधिक पाठ - समानताके कारण यह सभी प्रतियां प०कां० की परम्परा की ज्ञात होती हैं। नीचे के कोष्टक से परमानंददास के पदों के सम्बन्ध में उपलब्ध प्रतियों की तुलनात्मक स्थिति स्पष्ट हो जाती है -

परमानंद दास

प्राप्त पदों के प्रकाशित एवं अप्रकाशित होने का विवरण
जिसमें सम्बद्ध ग्रंथ का नाम निर्दिष्ट कर दिया गया है।

ह०प्र०सं०	प्राप्त पद	प०कां०	प०शु०	कीर्तन-संग्रह	अतिरिक्त
गु० १२०	७	३	४	१	१
८०१	१२	१२	१२	१	-
६१२	१०	७	६	५	-
१०३६	२	२	१	-	-
११८	३	१	-	-	१
१०००	४	१	-	२	-
१५३२	२	२	१	-	-
१०६७	२	१	१	-	-
११६८	[illegible]	१	-	-	-
१३२०	१	-	-	-	१
१०६१	१	-	-	१	-
१५०७	१	१	-	-	-
११६८	१	-	-	१	-
२३६७	२	१	-	१	-
२४६३	१	१	-	-	-

२७०२	२	२	१	–	–
२७०३	१	–	–	–	१
११९७	१	–	–	१	–
११६०	१	–	–	–	१
२८४	५	३	४	–	–
१५६१	५	३	२	–	१
१८३	१	–	–	१	–
१३२९	१	–	१	–	–
४७५	९	५	४	–	–
डा० ६-१५	२	–	२	–	–
९-८	१	–	–	–	१
७-२	१	१	–	–	–
१२-१०	४	४	–	–	–
१२-६	१	१	–	–	१
प्रा०८७९	१	१	–	–	–
फा०८२	१	–	–	१	–
१११	१	–	–	–	१
१५५	१	१	–	–	–
२१०	१	१	–	–	–
२०९	४	१	–	३	१
हिं०३२६६	५	५	–	–	–
म० १	१५	१२	१०	१	२
२	७	६	२	१	–
आ०१	१०	८	३	२	२
२	५	४	२	२	–
३	१२	१०	२	–	–

परमानंद दास के हिन्दी पदों की तुलना में उनके गुजराती पदों की उपलब्धियां

गुजराती हस्तलिखित पद-संग्रहों में प्राप्त परमानंद के अधिकांश पद प्रकाशित संग्रहों के पदों से समान रूप से मिल जाते हैं। कुछ पदों में सामान्य अंतर भी मिलते हैं, किन्तु कुछ प्रतियों में विभिन्न पदों के पाठ ऐसे मिलते हैं जो प्रकाशित संग्रहों के पाठों से अधिक श्रेष्ठ सिद्ध होते हैं। यहां पर ऐसे ही स्थलों का निर्देश किया जा रहा है -

१- यदु मांगु संकर्षण वीर,[१] से प्रारम्भ होने वाले पद की पांचवी पंक्ति का पाठ इस प्रकार मिलता है -

" मन कर्म वचन स्मरपन कीनो, मर्जन पान तरनजा नीर "

यहां पर "तरनजानीर" पाठ विशेष रूप से विचारणीय है। इस पाठ के स्थान पर प०कां० पद सं० ६०७ तथा प०शु० पद सं० ६०० में "सुरसरि नीर" मिलता है, जो उपर्युक्त पाठ की तुलना में प्रसंगोचित नहीं कहा जा सकता है, क्योंकि कृष्ण के प्रसंग में यमुना का ही वर्णन अभीष्ट ज्ञात होता है। गंगा का वर्णन स्पष्ट ही असंगत प्रतीत होता है। इसलिए म० का पाठ "तरनजा नीर" ही श्रेष्ठतर तथा सार्थक है।

२- कुंज भवन में मंगलचार,[२] से प्रारम्भ होने वाले पद की अंतिम पंक्ति का पाठ इस प्रकार मिलता है -

" दोनी भुरय दास परमानंद प्रेम भक्त रत्न कौ हार "

प०कां० पद सं० १५६ में केवल दोनो भुरय परमानंद दास ही पाठ प्राप्त होता है, जो खंडित तथा तुकहीन है। हम इस अभाव की पूर्ति उपर्युक्त म० के पाठ से कर सकते हैं।

३- प्रगट भये श्री राम माई,[३] से प्रारम्भ होने वाले पद की द्वितीय पंक्ति का पाठ इस रूप में मिलता है -

---

१- ह०प्र०सं० १ म०

२- वही,

३- वही ,

" हरषित नगरी दशरथ की सुनत मनोहर नाम "

प०शु० पद सं० ३३८ तथा कीर्तन-संग्रह,भा०प्र०उत्व०पृ०१६५ तथा गु० की दूसरी प्रति १००० में " हरषित नगरी " के स्थान पर " हत्या तीन गईं " पाठ मिलता है। प०कां० पद सं० १२२१ में " सब जंजाल मिटे " प्राप्त होता है । प्रसंग राम जन्म का है । अयोध्या में राम के जन्म लेते ही सर्वत्र आनंद छा गया । सारी नगरी प्रसन्न हो उठी,ऐसी दशा में " हरषित नगरी " पाठ अधिक उपयुक्त है । हत्या तीन गईं, पाठ अन्य दृष्टि से भी चिंत्य है,।क्योंकि प्राचीन आख्यानों में एक श्रवणकुमार की हत्या का प्रसंग मिलता है, किन्तु उससे भी दशरथ भी मुक्त नहीं हुए । क्योंकि ~~प्रत्येक~~ तापस अंध शाप की विभीषिका उनका पीछा अंतिम समय तक नहीं छोड़ती । अत: इस विवादग्रस्त पाठ की तुलना में म० का पाठ अधिक स्वाभाविक तथा उपयुक्त प्रतीत होता है ।

४- मदन गोपाल हमारे राम[१] से प्रारम्भ होने वाले पद की तृतीय पंक्ति का पाठ इस रूप में मिलता है -

" अपनी भुजनि जिनि जलनिधि बांधों, रास रचौ जीते कौटिक काम "

प०कां० पद सं० १३०६ में " रास रचौ " के स्थान पर " रास नचाए " पाठ प्राप्त होता है । रास के प्रसंग में रचाना पद का प्रयोग सम्पूर्ण कृष्ण साहित्य में मिलता है । रास नचाना कहीं नहीं प्राप्त होता । अब तो रास रचाना मुहावरा हो गया है ।

५- इसी पद की चौथी पंक्ति का पाठ इस रूप में प्राप्त होता है -

" दस सिर हनि जाने असुर सिंघारे,गोवरधन राखौ कर बांम "

यहां बाम पाठ विचारणीय है । प०कां० पद सं० १३०६ में बाम के स्थान पर "बानु " पाठ मिलता है जो उपर्युक्त पाठ की तुलना में उपयुक्त नहीं । सूरदास के एक पद की निम्नलिखित पंक्ति में भी इस प्रसंग में 'बामकर' का उल्लेख मिलता है, जिससे निर्दिष्ट पाठ की प्रामाणिकता सिद्ध होती है -

" तृना केसी सकट बकी बक अघासुर,बाम कर राखि गिरि ज्यों उबारयो

सूरसागर(सभा)पृ०४७२पद १२१४
प्रसंग , दावानल पान

---

१. ह०प्र०सं० १५३२ गु०

६- खेलत मदन गोपाल वसंत,[1] से प्रारम्भ होने वाले पद की चतुर्थ पंक्ति का पाठ इस प्रकार मिलता है -

" अंग अंग प्रति प्रीति निरंतर निसि आगम रितु करत विलास "

प०शु० पद सं० ३८० में रितु करत के स्थान पर "सजाई" पाठ मिलता है। जो उपयुक्त नहीं ज्ञात होता है। कारण कि सजाई पाठ में से एक मात्रा की कमी होती है और गतिभंग द्वारा पद की गेयता नष्ट हो जाती है। अत: " रितु करत " ही पाठ अधिक उपयुक्त तथा श्रेष्ठ है।

अतिरिक्त पद

गुजराती हस्तलिखित पद-संग्रहों में प्राप्त परमानंद दास के कुछ पद ऐसे भी प्राप्त हुए हैं जो किसी भी उपलब्ध प्रकाशित ग्रंथ में नहीं मिलते तथा किसी अन्य मध्यकालीन कवि के नाम से भी नहीं प्राप्त होते । ऐसी दशा में यही मानना स्वाभाविक प्रतीत होता है कि ये पद परमानंददास के द्वारा ही रचे गये होंगे। किसी प्रकार गुजराती परंपरा में सुरक्षित रह गये, जब कि हिन्दी परंपरा में उनका समावेश हो न हो सका। इन पदों की प्रारंभिक तथा अन्तिम पंक्तियाँ नीचे उद्धृत की जा रही हैं -

१- हो व्रषभान ह्मारी गइया ।

परमानंद दास करबली ओहै, प्रग नमी व्री वौरे ।।

२- करो कलेउ कहत जसोदा,सुन्दर मेरे गिरिधरलाल ।

कियो विचार फाग खेलन को परमानंद प्रभु नयन बिसाल ।।

३- भाजेंग शबन थे नारो रानी ।

परमानंद दास को ठाकुर, गोकुल लोचन तारो ।।

४- दीपमालिका को दिन आज ।

सुरि नर मुनीवर नरखत शोभा परमा दास बलिहार ।।

---

१ [illegible]

५- हरजी फुरखा बंधन आई

अेह छवी निरखी शाम सुंदर की परमानंद बल हौ जाई ।

६- पवित्रां पेहरैत नंदलाल

परमानंद स्वामी कैल कतोहल लीला ललित गौपाल ।

७- गौवरधन पर वने पर बौल मैरे,

परमानंद दास कौ विकुड़ौ गाजत है घनघौर ।

८- प्रेम कीजे हौ गौपी

सौ कुल कुलहीन दास परमानंद, जौ हरी सनमुख नाहीं ।

९- जनम पदारथ बौहोर जात रै

परमानंद दास मन चेतौ, काल अचानक देत धान रै ।

१०- जौ गौपिन कुं प्रेम न हौतौ, और भागवत पुरान

परमानंद वेद पथ विगस्यौ कृष्ण कीजे कोप ।

११- अब कहा दूसरे हाथ बिकाउं

परमानंद सिंध कौ परिहरि नदी शरण कहां जाऊं; ।

१२- कुबजा तु काहे न मंगल गावे

परमानंद दास कौ ठाकुर अपने हाथ जमावे ।

१३- चितवत कउसल्या मुख चंद

परमानंद सुख सिंधु हींडोरे हरिष्ण हरिण जस गावे ।

१४८ पखियाँ न संवरि राधा जौरी बनी है

जन परमानंद गाइ हरि के चरन रह्यौ हौ ।

कबीर

पीछे संकेत किया जा चुका है कि गुजरात में सगुण भक्ति के प्रचार के साथ ही निर्गुण भक्ति का भी प्रचार हुआ और इस निर्गुण भक्ति में कबीर के पदों का प्रचार तथा प्रसार अन्य निर्गुण कवियों की अपेक्षा अधिक हुआ । यही कारण है कि कबीर के पद गुजराती हस्तलिखित प्रतिओं में अच्छी संख्या में प्राप्त हुए हैं, जिनका क्रम निम्न प्रकार से है -

	ह० प्र० सं०	-	प्राप्त पदों की संख्या
गु०	१२३	-	१२
	५७७	-	८
	६४५	-	१५
	६६१	-	४
	६८३	-	१५
	७५४	-	१
	८६५	-	५
	६१८	-	२
	१०००	-	१०
	१०३५	-	१
	१०३८	-	६

	११६८	-	४
	१३२५	-	३
	१३२६	-	१
	१३७७	-	४
	१६७६	-	४
	१७५६	-	१
	१७५८	-	४
	१७५६	-	२
	२३६७	-	४
	२५५०	-	१
	२६१५	-	१
फा०	७१	-	१
	८२	-	१
	१११	-	२
	२४६	-	१
	५१७	-	२
आ०	१	-	७
	२	-	१५
	३	-	१०
म०	१	-	४

नागरी लिपि जनित पाठ-विकृतियां

उपर्युक्त प्रतियों द्वारा प्रस्तुत कबीर-वाणी के पाठ का तुलनात्मक अध्ययन करने पर उनमें कुछ ऐसी पाठ-विकृतियां मिलती हैं जिनकी संभावनाओं पर विचार करने से ज्ञात होता है कि इन प्रतियों का पूर्व रूप नागरी लिपि में रहा होगा । यहां इस प्रकार की कुछ विकृतियों का उल्लेख किया जा रहा है -

१- नाहिं छोड़ूं बाबा राम नाम,[1] से प्रारम्भ होने वाले पद की दसवीं पंक्ति का पाठ इस रूप में मिलता है -

" हिरनाकुस माथी नष विडार "

इसमें माथी पाठ विकृत है जो स्पष्टत: नागरी लिपि जनित भ्रम के कारण ज्ञात होता है। क०ग्रं०~~पारसनाद~~ पृ० १६ पद २६ में इसका पाठ मार्यो मिलता है जो निर्विवाद रूप से भ्रांत हीन है। र और य दोनों के संयुक्त रूप को यदि असावधानी से लिखा जाये तो इसे थ भी पढ़ा जा सकता है। यह विकृति इसी प्रकार संभव ज्ञात होती है।

२- परम गुरु सोई दया कर दीन्हा,[2] से प्रारम्भ होने वाले पद की अंतिम पंक्ति का पाठ इस प्रकार मिलता है -

" कहै कबीर कुलकुल सतगुरु की धन धन सिष का लहना "

श० बे० भा० २ पृ० २२ शब्द १२ में कुलकुल के स्थान पर बलबल पाठ प्राप्त होता है। जो संभवत: बलि बलि का इकार हीन वैसा ही रूप है जैसा धनि धनि का धन धन। इस पंक्ति में यह दोनों ही प्रयुक्त हुये हैं। बलबल पाठ कुलकुल की अपेक्षा अर्थ की दृष्टि से अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है। ब का कु हो जाना नागरी लिपि में ही संभव है। अत: यह दोष इसी कारण हो गया ज्ञात होता है।

३- पानी मां मीन प्यासी,[3] से प्रारम्भ होने वाले पद की चौथी पंक्ति का पाठ इस रूप में मिलता है -

" नागर होकर भस्म चढ़ावै, बीन बीन करत उदासी "

इसमें रेखांकित पाठ विकृत ज्ञात होता है। श० बे० भा० १ पृ० ३४ पर इसके स्थान पर 'बनि बनि फिरत' पाठ मिलता है, जो अधिक सार्थक है। न पर की इ की मात्रा ('बी' पर की 'ई' की मात्रा में) में किस प्रकार परिवर्तित हो गयी, इसका समाधान नागरी लिपि से ही संभव है। अधिकतर लिपिकार ~~लिखने में~~ लेखन में कलात्मकता लाने के लिए इ की मात्रा फैला कर

१- ह०प्र०सं० १ म०

२- वही ०

लगाते हैं कि वह पिछले अक्षर के ऊपर तक पहुंच जाती है और इस प्रकार भ्रम होने लगता है कि पूर्वाक्षर पर इं की ही मात्रा है और यह विकृति इसी कारण हुई ज्ञात होती है। फिरत शब्द का करत में परिवर्तित होना भी नागरी में फ तथा क के सादृश्य से संभव माना जा सकता है ।

४- ताथे मजलै[1] पद की प्रथम पंक्ति का अंतिम शब्द नारांगा तथा चौथी पंक्ति का अंतिम शब्द रमरंगा है । यह दोनों शब्द निरर्थक तथा अस्पष्ट हैं । इनके स्थान पर क० ग्र० प्रभाग पृ० ५६ पद सं० १०१ में क्रमशः नाराइरा एवं रमराा पाठ मिलता है । रा का रग हो जाना नागरी लिपि जनित दोष के कारण ही संभव है । कुछ प्रतिलिपिकार लेख को आकर्षक बनाने के लिए नागराक्षरों की खड़ी पंक्तियों में नीचे की ओर किंचित घुमाव देते जाते हैं । यहां रा की पंक्तियों का इसी प्रकार मोड़ रहने के कारण उसे किसी गुजराती प्रतिकार ने रग पढ़ लिया । इस प्रकार नाराइरा (इ का लोप) तथा रमराा का रमरंगा हो गया ।

पुनरावृत्ति सम्बन्धी पाठ-विकृति

१- भगती दान मोहि दीजिये[2] से प्रारम्भ होने वाले पद की चतुर्थ पंक्ति का पाठ इस रूप में मिलता है -

"सुपनेहु हूं नहीं मोहे संपती तुमारी"

श० क० पृ० २०७ प्रभाती ११ पर संपती के स्थान पर 'गुरु आन' पाठ मिलता है । इस पद की तीसरी पंक्ति में ही संपतो सुतनारी पाठ दोनों प्रतिओं में आ चुका है । इससे यह ज्ञात होता है कि उपर्युक्त प्रति के प्रतिलिपिकार ने भूल से चौथी पंक्ति में भी संपती शब्द को दुहरा दिया है । इस प्रकार के भ्रम के उदाहरण अस्वाभाविक नहीं हैं । प्रस्तुत पद का त्रुटि पूर्ण पाठ भी इसी प्रकार हुआ ज्ञात होता है ।

१- ह०प्र०सं० १००० गु०

२- ह०प्र०सं० ६६१ गु०

फारसी लिपि-जनित पाठ-विकृति

१- सुन सुन बे अमण नादाना[1] से प्रारम्भ होने वाले पद की तीसरी पंक्ति का पाठ इस प्रकार मिलता है -

" यानी जीव पछारी प्रबसे बोझे भार सिर आनिया "

बीजक शब्द ८३ में प्रबसे के स्थान पर बरबस पाठ मिलता है जो अपेक्षाकृत अधिक उपयुक्त है। बीजक में पूरी पंक्ति का पाठ इस प्रकार है -

" बरबस आनि के गाइ पछारिन्हि गरा काटि जिवु आपु लिया "

ब का प हो जाना फारसी लिपि में ही संभव है। यह विकृति इसी कारण हुई ज्ञात होती है।

गुजराती प्रभाव जनित पाठ-विकृतियाँ

१- चलो सदगुरु जी के हाट[2] से प्रारम्भ होने वाले पद की आठवी पंक्ति का अन्तिम शब्द " बकछाइये " मिलता है, जो स्पष्ट ही विकृत है। श० बे० भा० १ पृ० १ तथा श०क०पृ० ५१ मंगल ८ पर इसका पाठ " बकसाइये " मिलता है। गुजराती में स का अधिकांश स्थलों पर उच्चारण[3] छ होता है यथा-

सुधा - छुधा

स्पृहा - छिहा

प्रस्तुत पाठ-विकृति कदाचित इसी प्रवृति के कारण हुई है।

२- हस्तलिखित प्रति ६४५ गु० में प्राप्त एक पद की प्रथम पंक्ति का पाठ इस प्रकार है -

" सुन सुन बे अमण नादाना "

बीजक ८३ में अमण के स्थान पर " अहमक " पाठ मिलता है। अहमक- मूर्ख ।

१- ह०प्र०सं० ६४५ गु०

२- ह०प्र०सं० ३ बा०

३- जूनी गुजराती भाषा, पृ० ८६

गु० के पाठ में गुजराती प्रभाव से ह का लोप हो गया है ।

अधिक शब्द समावेश के कारण पाठ-विकृति

१- मन कीरे खोज करी रे माई,[1] से प्रारम्भ होने वाले पद की पांचवी पंक्ति का अंतिम अंश का पाठ इस रूप में मिलता है -

" लइने भवा रे अनंदा "

इसमें 'लइने' गुजराती का विशिष्ट शब्द है जिसका अर्थ है " लेकर " ।

२- मन मस्त भया अब कौन बोले,[2] पद की द्वितीय पंक्ति के अंतिम अंश का पाठ इस रूप में मिलता है -

" तालतलइया मारे कौन डोले "

इसमें ` मारे ` पाठ अतिरिक्त पाठ है । यह पद प्रकाशित रूप में श०वे०मा०१पृ० ८ एवं श०क० खेमटा ३ पृ० १८७ पर मिलता है किन्तु उनमें से किसी में भी मारे शब्द नहीं मिलता । यह गुजराती म्हारे (हिन्दी- मेरे) का किंचित परिवर्तित रूप ज्ञात होता है ।

प्रतियों का मुद्रित रूपों से सम्बन्ध

कबीर के पद प्रकाशित रूप में, श०वे०, श०क०, क०ग्रं० प्रयाग, क०ग्रं० सभा , शब्द विलास, बीजक में मुख्य रूप से प्राप्त हो जाते हैं । इन सभी ग्रंथो के संपादनका मुख्य आधार हिन्दी प्रदेश में प्राप्त हस्तलिखित प्रतियां ही हैं ।

ह०प्र०सं० ६४५ गु० में प्राप्त १५ पद में से १० पद क०ग्रं०सभा, में ज्यों के त्यों प्रा हो जाते हैं तथा ३ पद क०ग्रं०प्रयाग, और १ श०क०तथा २ श०वे० में मिलते हैं । अत: अधिक समानता के कारण यह प्रति क०ग्रं०सभा से सम्बंधित प्रतीत होती है । यही स्थिति ५७७, १२३, ६८३, ६६१, १३७७, २३६७, १३२५, गु० तथा २४६,

---

१- ह०प्र०सं० १०३८ गु०

२- ,, ६१८ गु०

फा० की भी हैं जिनमें प्राप्त पदों के पाठ क०ग्रं०सभा, के पाठ से अधिक समानता रखते हैं। इसी प्रकार १५५१, १०००,११६८,१७५६,१६७६,१०३५,१३२६, गु० तथा २,३ आ० में प्राप्त कबीर के पद अधिकांश श०क० में प्राप्त हो जाते हैं। इस कारण पदों की बहुलता के कारण ये प्रतियां श०क० से सम्बन्धित लगती हैं। १०३८,१७५६ , १७५८,२६१५, गु० तथा ८२, और १११ फा०, १ आ० और १ म० संख्यक प्रतियों में प्राप्त कबीर के पद श०वै० , में ज्यों के त्यों प्राप्त हो जाते हैं। अत: पाठ की समानता के कारण ये प्रतियां श०वै० से ही सम्बन्धित ज्ञात होती हैं। इसके अतिरिक्त कुछ प्रतियों के पद समान रूप से कई मुद्रित ग्रंथों में मिल जाते हैं। अत: उनका किसी विशेष मुद्रित रूप से सम्बन्ध नहीं जोड़ा जा सकता । आगे के कोष्टक से कबीर के पदों के सम्बन्ध में उपलब्ध प्रतियों की तुलनात्मक स्थिति स्पष्ट हो जाती है --

प्राप्त पदों के प्रकाशित एवं अप्रकाशित होने का विवरण
जिसमें सम्बद्ध ग्रंथ का नाम निर्दिष्ट कर दिया गया है ।

ह०प्र०सं०	प्राप्त पदों की संख्या	श० वै०	श० क०	क०ग्रं० प्रयाग	क० ग्रं० सभा	शब्दविलास	बीजक	अप्रकाशित
गु० १२३	१२	२	२	४	८	-	-	-
५७७	८	-	-	१	७	-	-	-
६४५	१५	२	१	३	१०	-	-	-
६६१	४	-	१	-	३	-	-	-
६८३	१५	-	४	१	६	३	-	-
७५४	१	-	१	-	-	-	-	-
८६५	५	२	२	-	-	१	-	२
६१८	२	१	१	-	-	-	-	-
१०००	१०	२	५	२	१	-	-	१
१०३५	१	-	१	-	-	-	-	-
१०३८	६	-	१	-	१	१	-	३
११६८	४	-	४	-	-	-	-	-

१३२५	।	३	-	-	-	२	-	१	-
१३२६	।	१	-	१	-	-	-	-	-
१३७७	।	४	१	१	-	२	-	-	-
१५५१	।	१	-	१	-	-	-	-	-
१६७६	।	४	-	३	-	१	-	-	-
१७५६	।	१	१	-	-	-	-	-	-
१७५८	।	४	३	१	१	१	-	-	-
१७५६	।	२	-	२	-	-	-	-	-
२५५०	।	१	-	-	-	-	-	१	-
२६१५	।	१	१	-	-	-	-	-	-
फा० ७१	।	१	-	-	-	-	-	-	१
८२	।	१	१	-	-	-	-	-	-
१११	।	२	१	-	-	-	-	-	१
२४६	।	१	-	-	-	१	-	-	-
५१७	।	२	-	-	-	२	-	-	-
जा० १	।	७	४	१	-	१	-	-	२
२	।	१५	३	८	-	४	-	-	-
३	।	१०	२	६	-	-	-	-	[illegible]
म० १	।	४	२	-	-	-	-	-	२

कबीर के हिन्दी पद की तुलना में उनके गुजराती पद की उपलब्धि -

गुजराती हस्तलिखित पद-संग्रहों में प्राप्त कबीर के अधिकांश पद प्रकाशित संग्रहों में मिल जाते हैं। कुछ पदों में सामान्य अंतर भी मिलते हैं। किन्तु एक पाठ गुजराती प्रति का ऐसा मिलता है जो प्रकाशित संग्रहों की तुलना में अधिक श्रेष्ठ है। नीचे उसका निर्देश किया जा रहा है -

परम गुरु सोई दया कर दीन्हा,[1] से प्रारम्भ होने वाले पद की छठी और सातवीं पंक्तियों का पाठ इस प्रकार मिलता है -

" बिन जिम्या जहां अमृत अचवन, जन बिन त्रिषा बुझाई ।
" जहां नहीं तहां सब कुछ देखा , यह सुख कासों कहना ।

उपर्युक्त दोनों पंक्तियों के पूर्वार्द्ध के पाठ विशेष रूप से विचारणीय हैं। इस पाठ के स्थान पर श०बे०भा०२ पृ०२२ शब्द १२ में बिना अन्न जहां अमृत रस भोजन एवं जहां हरष तहां पूरन सुख है " मिलता है। जो उपर्युक्त पाठ की तुलना में अधिक स्पष्ट नहीं। प्रसंग है अभाव में ही भाव के अनुभव का। इससे पूर्व की पंक्तियों में बिना पैर के चलने, बिना चोंच के चुंगने और बिना नैनों के ही सब कुछ देखने का वर्णन है। अतः उस श्रृंखला में बिना जिम्या के अमृत का आचमन करना ही अधिक स्वाभाविक लगता है। इसी प्रकार जहां नहीं तहां सब कुछ देखा, से कबीर तथा अन्य संतों की उस विचारधारा का स्पष्टीकरण होता है जिसके अनुसार शून्य अथवा अव्यक्त में समस्त व्यक्त सत्ता का विलीनीकरण माना जाता है अथवा दूसरे शब्दों में नहीं को है का आधार माना जाता है। श० बे० के पाठ से इस सूक्ष्म दार्शनिक युक्ति का सौन्दर्य नष्ट हो जाता है और वह एक ऐसा सामान्य कथन हो गया है जो स्पष्ट ही परवर्ती हस्तक्षेप के कारण ज्ञात होता है।

अप्रकाशित पद

गुजराती हस्तलिखित प्रतियों में प्राप्त कबीर के कुछ पद ऐसे भी प्राप्त हुए हैं जो किसी भी उपलब्ध प्रकाशित ग्रंथ में नहीं मिलते तथा किसी अन्य मध्यकालीन कवि के नाम से भी नहीं प्राप्त होते। ऐसी दशा में यही मानना अधिक स्वाभाविक प्रतीत

१- ह०प्र०सं० १ आ०

होता है कि थे पद कबीर के ही द्वारा ही रचे गये होंगे, किसी प्रकार गुजराती परम्परा में वे सुरक्षित रह गये जब कि हिन्दी परम्परा में उनका समावेश हो नहीं हो सका । इन पदों की प्रारंभिक एवं अंतिम पंक्तियाँ नीचे उद्धृत की जा रही हैं-

१- कित गये पंच किसान हमारे ।

कबिरा गांव बोहोर नहिं बसवो, उठि गये सींचन हार ।।

२- बुझउ खेल खिलारी रे ।

कहै कबीर आगीली बानी,नवधा भक्ति सवारी रे ।

३- प्रेम के बस पड़े जन कोई ।

कहै कबीर हरि तब पइये, जो जीव ताहि मरे ।।

४- आजन आंजीयें नीज सोय ।

कहै कबीरहरि तब पैये , जो एका येकी होय ।।

५- अपने साहब की बात री मैं कासे पूछूं ।

दास कबीर पिया बोहर न मिलवो, जं तरुवर जरे पात रे ।।

६- जीव रे राम परम पद जपणा ।

राम परम पद कोउ न लूटे , कबीर भीखारी जपरे राम परम पद ।।

७- रमो मन रमना है रे ।

कहत कबीर सुनो भाई साधुके, तो सतचित आनंद होई ।।

८- प्रेम कटारी जेहे ने प्रेम कीरियागी ।

कहत कबीर सुवरि मन मांही , फेर मरने की आशा नाहीं ।।

९- यार मला रे अला यार हमारा

कहत कबीर सुनौ नर सौही, प्रेम भग्ती बिना मुग्ती न होई ।

१०- साधौ कहे सुने कछु नांही

कहे कबीर तिन्हे काहा कहिये जे देषत धौस भुलाने ।

११- साधौ दया पदों सौं न्यारी

कहे कबीर जानिये तब ही दखे त्रीभुवन राई ।

१२- संतौ घर की कहा न माने

कहे कबीर सुनौ रे साधौ , क्यों हांसी घर वासा ।

१३- राम राजे मन की आसा पाऊं

दास कबीर चढ़े घड़ ऊपर तौ जीत नसान बजाई ।

१४- मन मैरे यैसी खेती करिये

कहे कबीर सो जन के ऐसी , ताहे दिवस निवाजे ।

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि पदों के प्रतिलिपि-क्रम में रहने के कारण उनमें कितनी विकृतियाँ आ जाती हैं। पदों पर समय और भाषा का प्रभाव किसी न किसी रूप में अवश्य पड़ता है किन्तु इसके साथ ही ऐसी सामग्री, जो अपने मूल स्थान से तिरोहित हो जाती है, दूरस्थ प्रदेश में सुरक्षित रहती है। परमानंददास और कबीर के अप्रकाशित पद इसके प्रमाण हैं।

०

अध्याय ७

भाषा का स्वरूप और मिश्रण की समस्या

गुजराती संग्रहों में संकलित आलोच्य पद भाषागत अध्ययन की दृष्टि से अपना वैशिष्ट रखते हैं। गायकों, प्रतिलिपिकारों और सम्प्रदाय प्रचारकों के माध्यम से इन पदों के स्वरूप के साथ उनकी भाषा में भी पर्याप्त परिवर्तन हुए हैं। ब्रज से गुजरात तक की यात्रा में आलोच्य पदों की भाषा में थोड़ा बहुत परिवर्तन बहुत ~~स्वाभाविक~~ स्वाभाविक भी है। इसके अतिरिक्त आलोच्य पदों पर गुजराती भाषा का भी प्रभाव लक्षित होता है। इसलिए इन पदों की भाषा के अध्ययन में शब्द समूह और ध्वनि तथा रूपगत परिवर्तनों पर विशेष दृष्टि रक्खी गई है। कतिपय पदकारों के हिन्दी के अतिरिक्त पंजाबी और गुजराती मिश्रित पद भी मिलते हैं। जिनका आलोच्य पदों की भाषा के अध्ययन में पर्याप्त महत्व है।

शब्द समूह

शब्दों का त्रिधा विभाजन तत्सम्, तद्भव, और देशज के रूप में बहुप्रचलित है। तत्सम् और तद्भव के मध्य अर्ध तत्सम् शब्दों की भी स्थिति मानी जाती है। नीचे आलोच्य पदों की भाषा के शब्दसमूह का इन्हीं वर्गों के अन्तर्गत अध्ययन किया गया है। शब्द समूहगत अध्ययन के लिए उन्हीं प्रमुख कवियों को लिया गया है जिनके पद अन्य कवियों की अपेक्षा अधिक संख्या में प्राप्त हुए हैं। ऐसे कवियों में मुख्य इस प्रकार हैं : सूरदास, परमानंददास, नंददास, चतुर्भुजदास, छीतस्वामी, गोविंदस्वामी, कृष्णदास, कुंभनदास, कबीरदास, और मीरांबाई।

तत्सम : तत्सम् शब्दों से तात्पर्य उन शब्दों से है जो किसी भाषा से ज्यों के त्यों अर्थात बिना किसी परिवर्तन के ले लिए जाते हैं। तत्सम् शब्दों पर विचार करने से ज्ञात होता है कि उनमें संस्कृत के शब्दों की ही प्रधानता है। मध्यकाल में वैष्णव धर्म के विकास और प्रसार के साथ ही भाषा में संस्कृत के तत्सम शब्दों का बाहुल्य मिलने लगता है। ब्रजभाषा के साहित्य में तो आरंभ से ही संस्कृत शब्दावली की बहुलता

रही है । तत्सम शब्दों के इन प्रयोगों के कुछ विशेष कारण प्रतीत होते हैं, जो इस प्रकार हैं -

क- शास्त्रीय काव्य परंपरा -- तत्सम शब्दों के प्रयोग का पहला कारण कवि परंपरा है । कवि परंपरा में संस्कृत के कुछ शब्द इतने प्रचलित हैं कि आवश्यकता पड़ने पर कवि अपने काव्य में उन्हीं शब्दों का बार-बार प्रयोग करता है । उनके स्थान पर लोक सामान्य तद्भव शब्दों का नहीं । यथा कनक,कामिनी आदि ।

ख- पारिभाषिक शब्दावली -- धार्मिक काव्य होने के कारण आलोच्य पद साहित्य में दार्शनिक तथा धार्मिक शब्दावली की प्रचुरता पाई जाती है । निराकर,साकार ब्रह्म माया,जगत ,जीव,अज,अहंकार,मन चित,आनंद,अगम,अगोचर, आदि कुछ ऐसे पारिभाषिक शब्द हैं, जिनका प्रयोग निरंतर धार्मिक दृष्टि से काव्य में होता रहता है ।

ग-तत्सम और तद्भव में अभेद -- भारी संख्या ऐसे तत्सम शब्दों की भी है , जो अपने मूल रूप में ही प्राकृत या अपभ्रंश युग में भी प्रयुक्त होते रहे, अर्थात उनमें या तो कोई ध्वन्यात्मक परिवर्तन हुआ ही नहीं,या फिर हुआ भी तो केवल अर्ध तत्सम बना कर रह गया । प्रथम श्रेणी के शब्दों के लिए यह भी कहा जा सकता है कि उनके तद्भव रूप बने ही नहीं, जैसे रस,चंचल,जल,अग्नि,दान,तीर,भाव आदि । दूसरी श्रेणी के शब्दों में केवल ध्वनि का सामान्य अंतर हुआ जैसे चरण > चरन, कृष्ण > क्रिसन,कृसन आदि ।

घ- तुक या छंद की आवश्यकता -- कहीं-कहीं तुक और छंद के आग्रह के कारण भी काव्य में तत्सम शब्दों का प्रयोग हुआ है । परिशिष्ट में संकलित परमानंददास के पद संख्या में-१ में रसाल शब्द का प्रयोग दृष्टव्य है ।

उपर्युक्त दृष्टि से प्राप्त कतिपय तत्सम शब्दों की सूची यहां उद्धृत की जा रही है --

तत्सम शब्द

सूरदास- अधर,अनुराग,अनुपम,अखिल,अष्टसिद्धि,अगोचर,अंतर्गत,अंबुज,आलिंगन, आनंद,आकाश,उर,उत्साह,कवच,कनक,कलश,कटाक्ष,कामिनी,क्रीड़ा, कृष्ण,गृह,चरण,चारु,जात,तृप्त,दधि,दान,द्विज,द्युति,निर्झर,

निरन्तर,नीलाम्बर,नृत्य,परम,पंगु,बैकुंठ,मध्य,मनोहर,महामहोत्सव,
युग,यूथ,रंक,सर्वज्ञ,सुमन,सुगन्ध,संताप स्वर,श्रवण ।

परमानंददास- अवलोक, अनुराग, न्तर,अंक, ओट,कर, कमल,केलि,कंकन,कुमुदिनी,
कूल,घन,घृत,चपल, चरण,चिंतामणि,चंचल,तन,तिलक,दामिनी,द्वार,
नीलाबंर,पट,पय,पथ,परम,पल्लव,पावन,पीताबंर,पुनीत,भवसागर ,
मल्लिका,मूक,मास,मंदिर,मंगल,रसना,रसाल,ललित,लीला,लोचन,
वचन,वनिता,विप्र,विचार,विमान,वेद,व्योम,साधन,साक्षी,सुन्दर ,
हेम,श्रुत,श्रावण ।

चतुर्भुजदास- अवलोकत, अमृत, अभिराम, अतिराजित, कल्प, तिलक, नाद, नवनीत,
प्रतिपाल, भक्ति, विवेक, सप्तक, सहस्र, ज्ञान ।

नंददास- अष्टसिद्धि, अंबुज, उज्ज्वल, कालिंद्री, कंचन, कृपानिधान, चपलता ,
तत्व,द्विज, परब्रह्म, पीतांबर, पुलकित, प्रभु, प्रारव्ध, मंदिर, मुकुट ,
रंक, सच्चिदानंद ।

छीतस्वामी- आनंद, द्विज, नवनीत, पुलिन, विधि, श्रुति ।

गोविंददास- आनंद, कनक, कटाक्ष, कुंदन, तुरंग, नवल,नवनिधि, निशि, निकुंज,
नीर, मनोहर, मगन,मधुर, मुदित, रसाल, वचन, शोभा ।

कृष्णदास- अधर, अनंग,अभिनय,अनुराग,अद्भुत,अंकुर,कनक,कामिनी, कमल,कुसुम,
कुसुमाकर, केलि, कंचुकी,कांति, गोपाल, गृह, चकोर, चंद्रिका, द्रुम,
नभ, नवनिधि, पवन, पात्र, प्रताप, प्रफुल्लित, भवधारा, मणि,
मधु, मधुप, मनोरथ, मुदित, मुकलित, मंत्र, राग, लीला,वसंत, विटप,
वृत, सुरंग,सुधारस, हस्त ।

कुंभनदास- चारु, छत्र, ध्वजा, नवघन, पट, पताका, ललाट, सप्त, सुभग, सिंधु ।

कबीरदास- अगम, अमर, अष्टकमलदल,अनुरागी,अधर,अनंत,अनुराग,अविचल, अमृत,
अविगत, अवतार, आकाश, आनंद, काष्ट,काम, क्रीड़ा, कोटि, क्रोध,
कर्म, कंठ, खंड, गगन, गंध, घट, घाट, चक्र, चित्र, चंचल, जल, टीका,
ताप, दया, ध्यान, नव, नगर, नवनिधि, नवधाभक्ति, नाद, निर्मल ,
निगम, पद, पथ, पलक, पिंगला, प्रेम, ब्रह्म, ब्रह्मांड, भस्म, मंगल, मंत्र

मुक्ति, रचना, रस, राग, राजसता, रूप, विष, विकट, विचित्र, विश्राम, वैद, व्यापक, समता, सद्गुरु, सुरति, सूक्ष्म, शब्दवाण, त्रास, त्रिविध, ज्ञान ।

मीराबाई- काष्ट, कोटि, चरणामृत, दयानिधान, नगर, पीतांबर, ब्रह्मांड, भवसागर, रूप, विष, विमान, व्याकुल, सागर, संतोष, श्रवण ।

अर्ध तत्सम-- अर्ध तत्सम शब्दों से तात्पर्य उन शब्दों से है जो पूर्णतया न तो तत्सम ही हैं और न तद्भव । प्रत्युत उनकी स्थिति, मध्यवर्ती है । मध्यकालीन कवियों ने तत्सम शब्दों के रूप तथा ध्वनि में परिवर्तन करके उन्हें अपने पदों में प्रयुक्त किया । इन अर्ध तत्सम शब्दों के प्रयोग के निम्नलिखित कारण प्रतीत होते हैं :

क- सरल उच्चारण के लिए

ख- ध्वनि की कर्कशता या कठोरता को सरल रूप देने के लिए

ग- चरण की मात्रा पूर्ति के लिए

घ- भाषा की संगीतात्मकता, लय, और माधुर्य की रक्षा के लिए

कृष्ण भक्त कवियों ने कर्णकटु शब्दों को मधुर, कठिन शब्दों को सरल, तथा संयुक्ताक्षरों के स्थान पर सम्पूर्ण वर्णों से युक्त शब्दों का निर्माण, किया, ये अर्ध तत्सम शब्द इसी प्रयास के परिणाम हैं ।[१]

अर्ध तत्सम शब्द

सूरदास- अगिनि, अस्थान, अरघ, करतार, किरपा, ग्यान, जनम, जाचक, तृन, तृस्ना, दरपन, धरम, नगन, निरधन, पदारथ, परकार, परजा, परताप, परबत, पराकरम, बेद, बितीत, बिदमान, मरम, मारग, रतन, रिधि, लछमी, बिसवास, सीतल, सोभा ।

१- ब्रजभाषा कृष्णभक्ति काव्य में अभिव्यंजना शिल्प, पृ० ७०

परमानंददास- अतिसैं, असीस, अवलोक, अन्तरगति, अमरत, औसर, अंकुस , जंतर, जग्य, जाचक, पदम, प्रापत, परनाम, पुरशारथ, परतिग्या, भगत , मंगलचार, मरजादा, मंतर, महातम, रतन, रितु, बिथा, सहस, स्याम, स्रवन, सनेह, त्रन ।

नंददास- अन्तरजामी, उमगि, गाम, जोति, जतन, धरम, सरद, सोभित ।

कुंभनदास- कंकन, छितु, चरन, जस, जूथ, दिसि, पूरन, मारग, रतन, रितु , सोभा ।

चतुर्भुजदास- अछत, अबलासा, आकास, जतन, जाम, नछत्र, पुन्य, भविश, बरतमान, सबद ।

छीतस्वामी- जूथ, पदारथ, पूरन, मरजादा, मारग, ससि, सिखर, सरदचंद , समृति, सैस ।

गोविन्दस्वामी-असीस, अमुखण, आचरज, कलस, जाचक, जूथ, जुगल, दसन, नाइक , परवत, पूरन, प्रतिग्या, रतन, सब्द ।

कृष्णादास- दंपत, किरन, विमल, ग्यान, सोभित, भैरव, सरद, ।

कबीरदास- अरघ, अस्थूल, अकास, आभुक्ण, आतमाराम, उतपत, कोट, जतन, निरगुन, निरमल, पताल, परतीत, परताप, पाखान, प्रगट, भगत , महातम, मारग, सबद, सपरस, सील, सुन्य, सेत, स्रोता, ससि , बकता माणक, सोभा, पूरन ।

मीरांबाई- औखद, करम, जस, जोत, पात, सील ।

<u>तद्भव</u> : तद्भव शब्द वे हैं जो मूलत: तो संस्कृत के थे, परन्तु मध्यकालीन भाषाओं --- पाली,प्राकृत,अपभ्रंश -- की प्रकृतियों के अनुसार परिवर्तित होते-होते नये रूप में हिन्दी तक पहुंचे । वास्तव में किसी भाषा की निजी संपति ये ही तद्भव शब्द हैं । तद्भव शब्दावली जन-भाषा की शब्दावली है जिसे सामान्य जनता ने अपनी उच्चारण सुविधा,भाव गरिमा, और वातावरण, के अनुसार ढाल लिया है । हिन्दी की यह तद्भव शब्दावली एक लम्बी प्रक्रिया को पार करने के पश्चात इस रूप में आई है ।

संस्कृत के शब्द प्राकृत में आये और वहां विभिन्न रूप धारण करते हुए फिर अपभ्रंश के माध्यम से मध्यकालीन हिन्दी तक आते-आते अधिकांश शब्दों का एक दम काया - कल्प हो गया । नीचे प्रत्येक आलोच्य कवि के पदों से तद्भव शब्दों के कुछ उदाहरण दिये जा रहे हैं -

तद्भव शब्द

सूरदास- अघात, अचरज, अकारथ, अकुलाई, आग, आज, उबटनो, अंधियारी, कन्हैया, कन्हाई, कान्ह, कनियां, काठ, कौख, खौर, गरुर, चौक, चौथ, थोरी, दुलारी, धोरी, पग, पावस, पुरइन, बिरियां, बिगराई, मौर, मकुना, ।

परमानंददास- अगरी, अघात, अटा, अटारी, अनत, आस, औढ़नी, उनमद, उछंग, कहानी, काहु, किवार, खरी, गहने, घात, चौगुनो, फ्रौंटा, टेर, ठगोरी, डिढ़ौना, ढ़ौटा, तिहारे, त्यौहार, थोस, नितही, न्यौति, पटरानी, पाती, पाथरि, पिछौरी, पूत, पौन, फेंट, बतरस, बरजों, बांचना, मान्यौ, भीतर, रिस, लरिका, सवार, सांझ, होड़ा-होड़ी।

नंददास- अकास, काछे, तिन, धरती, पटुकी, पटकि, बरनत, बानक, बिजन, लाख, हरुहै, ढिंग, लरिकाई, पौर, काछनी, काछे, ढ़ौटा, ।

कुंभनदास- अबेर, अघाति, उबटि, कन्हाई, कान्हर, काछे, घटियां, डंडी, चार, चंद, फ्रौंटा, फ्ररोखा, तिय, निरतति, नौतन, पाहुन, पटली, पटिया, फूली, बैस, बटिया, बेर, मास, सांकरी ।

चतुर्भुजदास- अबारे, अंचरा, अंधियारी, ~~[illegible]~~, अबेर, और, काहुं, गुंज्या, फार, तलफ, तलफत, धार, धरी, फंद, मटुला, मौल्ला, मौतिन, सांझ ।

छीतस्वामी- अंकवार, उनींदे, घात (-युक्ति) अतनि, टेक, ठानी, निरमोल, नेह, परस, पहिरे, पैन, राचे, सांझ, सौंचे, सैन, ।

गोविंदस्वामी- काम (कर्म से) थार, धौरी, डीठि, दूध, दूज, परसि, पराई, पूत, मांझ, राजत, वारति, सुहाग, सिंघासन, हरदी, सोधों ।

कृष्णादास- अखारे, अघाति, ओढ़नी, काछे, काछनी, घूंघट, घरी-घरी, फारी, फूलना, ढोटा, ढोटी, निहार, पछेली, पाग, पांति, पिछोरी, बारन, बानक, फुनि, फुलेल, माय, मल्हाय, मंदो, महुअर, रिझवति, सींवा, सोरूत, हिंडोला ।

कबीरदास- अनहद, अबूझ, इंगला, (इड़ा से पिंगला के अनुकरण पर) अयाने, अकरे, टूका, गोदड़ी, सेज, पात, सीस, बिरवा, मझार, चूबत, लकुटिया, पाहन, बुंद, मास, नदी, घर, निफल, छान, जिमावे, जौन, धुनि, दमड़ी, दिसे, पूली, बटाऊ, बलेड़ा, बारी, बिगोई, बिरिया, बीड़ी, बैआं, बोहर, मझार, मौर, रार, रपट्यो, लहना, लकुटिया, हाट, हांडी ।

मीराबाई- अबहीं, अविनासी, कबहुं, कोर, जीआ, घायल, फुहार, बावरी, बिरिया, रतनागर, लुगाई, हालो, पूनम, मोकूं ।

देशज : देशज वे शब्द हैं जिनकी उत्पति अनिश्चित है । उनका विकास किस भाषा के किन शब्दों के आधार पर हुआ, कहना संभव नहीं है । संभव है ये किसी अनार्य या विजातीय भाषाओं के मिश्रित रूप हैं, जो काल-क्रमानुसार परिवर्तित होते हुए आज इस रूप में प्रचलित हैं । अन्य शब्द रूपों की अपेक्षा देशज शब्द अल्पमात्रा में प्राप्त होते हैं ।

देशज शब्द

सूरदास- झगुलि, ढाढी-ढाढिनि
परमानंददास- डगर, छटरी
नंददास- ढेरी
कुंभनदास- ढोर, डगर
कृष्णादास- ढोगो, झगुला, फुंदना, गाठ
चतुर्भुजदास- डगमग
कबीर- कड़कड़

विदेशी -- गुजराती हस्तलिखित पद संग्रहों में आलोच्य पदों का रचनाकाल ईसा की १५ वीं शताब्दी और उसके पश्चात है । ईसा की १४ वीं शताब्दी के अंत तक उत्तरी भारत में मुस्लिम साम्राज्य के विस्तार के साथ-साथ विदेशी भाषाओं यथा- अरबी, फारसी का भी काफी प्रचार हो चुका था । इन भाषाओं के शब्दों के प्रयोग के निम्नलिखित कारण प्रतीत होते हैं -

क- शासन के कारण- शासन और शासक वर्ग की प्रमुख भाषाएं होने के कारण अरबी और फारसी भाषा का काफी प्रचार तथा विकास हुआ । मुस्लिम शासकों का प्रमुख केन्द्र दिल्ली और आगरा होने के कारण, वहां की क्षेत्रीय भाषा ब्रजभाषा अपने को इसके प्रभाव से रोक न सकी । यही कारण है कि ब्रजभाषा में रचना करने वाले इन भक्त कवियों के काव्य में विदेशी भाषाओं के शब्दों का अनायास ही समावेश हो गया ।

ख- धार्मिक शब्दावली- इन विदेशी भाषाओं के प्रयोग का दूसरा प्रमुख कारण धार्मिक शब्दावली भी है । अरजी, कोतवाल, फरियाद, मर्जी, हजूर, रसूल, कुरान, पाक, पैगम्बर, आदि ऐसे ही शब्द हैं जिनका धार्मिक शब्दावली के रूप में सर्वदा प्रयोग होता रहा है ।

ग- वे शब्द जिनका हिन्दी में पर्याय नहीं- विदेशी शब्दों के प्रयोग का तीसरा कारण , हिन्दी में विदेशी शब्दों के पर्याय का न होना भी है । कभी - कभी जब कभी कोई नई वस्तु प्रचलन में आती है तब उस वस्तु के साथ ही उसका नाम भी प्रयोग में आ जाता है । इस प्रकार अपने आप ही विदेशी शब्दों का प्रयोग होने लगता है । कहीं-कहीं विदेशी शब्द का प्रयोग, उच्चारण की सरलता अथवा बहुप्रचलित हो जाने के कारण भी होता है । अतिथि शब्द की अपेक्षा मेहमान शब्द का प्रयोग बहुप्रचलित है ।

सामान्य रूप से आलोच्य पदों में प्रयुक्त विदेशी शब्द संख्या में अधिक नहीं कहे जा सकते । इस वर्ग के प्रयोग की दृष्टि से कबीरदास, सूरदास, परमानंददास, और मीरांबाई के ही पद महत्वपूर्ण हैं । आगे आलोच्य पदों में प्राप्त विदेशी शब्दों की सूची उद्धृत की जा रही है --

विदेशी शब्द

सूरदास- अकल, अरज, अवाज, अचार, अबीर, आखिर, कागज, खबर, खाली खाक, गरीब, गरज, गरीबनिवाज , गुमान , गुलाल, गुलाम , जहाज , दगा, दरबार, दरबान, दगाबाज, दाम, दीवान, निसान निवाजा, फौज, मेहमान, मौज, लायक, सरदार, साहब ।

परमानंददास- आब, इजार, कागद, खसम, खवासी, खासा, गनी, गाज, जसन, जंगी, तमासा, दगा, दमामा, दाग, दाद, दीवान, नाहक , निहाल, बला, बेहाल, मस्त, मखतूल, मैदान, मौज, लायक, सहल, सिरताज ।

कृष्णदास- डफ ।

कुंभनदास- दरबार, सिरताज ।

चतुर्भुजदास- कसीदा, कुलह, खासी, खवासी, जरकसी, दरबार, परवाह, सूथन, हवाल ।

छीतस्वामी- गुमान , तखत, वखत ।

कबीरदास- अहदी, अमीर, अमीरी, अलवैली, अहमक, अमलदार, उमर, कदर, कबूल , काजी, कागद, कुरान, खबर, खजाना, खबरदार, खाक , खातिर, खुदा, खून, गरज, गफलत, गरीबी, गाफल, गुमान , गुलाम, गुमार, गुलताना , गुनेहगार, जागीर, दरगाह, दरबार, दरिया, दीदार, दीवाना, दीवान, दुनिया, दौलत, नापाक , निवाजा, नूर, पाक, पीर, फन, फंद, फरीद, फकीर,फकीरी मजा , मगरूर, माल, मुकाम, मुल्क, मुल्ला, मौला, मंजूर , राजी रौजा, साह, साहब, सीपाही, सुलतान, सूरत, सैण, सौदा, हवाल, हथियार, हजार, हवेली, हक, हलाल, हजूर, हुक्म ।

मीरांबाई- अरजी, अवाज, अजब, अतलश, खबर, गरजी, चकमक, जलेबी, दीदार, दीवाना, नजर, प्याला, फंदा, बेहाल, बजार, मौहब्बत, मगज, मरजी, मतलब, बाजी, हराम, हजूर ।

ध्वनि परिवर्तन

आलोच्य पदों में प्रयुक्त विविध वर्गों के शब्दों के निर्देश के अनुसार उनमें हुए ध्वनि परिवर्तनों पर भी विचार कर लेना उचित प्रतीत होता है। ध्वनि की दृष्टि से जब हम प्राप्त पदों में प्रयुक्त विभिन्न शब्दों की तुलना उनके प्रकाशित रूपों से करते हैं तो कुछ शब्दों की ध्वनियों में सामान्य परिवर्तन दृष्टिगोचर होते हैं। प्रकाशित रूप की तुलना में जो ध्वनि परिवर्तन इन गुजराती हस्तलिखित पद संग्रहों में हुए हैं, उनके कोई निश्चित नियम या सिद्धान्त नहीं निर्धारित किए जा सकते । अतः अधिकांश स्थलों में कुछ विशेष शब्दों में परिवर्तन की प्रवृति के आधार पर ही इनका निर्धारण किया गया है। शब्दों के इन ध्वनि परिवर्तनों के मूल में कुछ कारण संभव प्रतीत होते हैं जो इस प्रकार है -

क- गुजराती लेखन पद्धति- गुजराती की अपनी विशेष लेखन पद्धति के कारण भी कुछ शब्दों की ध्वनि में परिवर्तन हुए हैं। उदाहरण के लिए गुजराती में 'इ' के स्थान पर 'ई' का प्रयोग होता है और उच्चारण भी ई के समान ही होता है। यह प्रवृति वर्तमान समय में भी प्राप्त होती है। इसी प्रकार गुजराती में अधिकांशतः 'ह' का लोप हो जाता है। इसी कारण व्रजभाषा के पद जब गुजरात पहुंचे तो वहां कुछ स्थलों पर 'ह' का लोप हो गया। यही स्थिति स के श उच्चारण की भी है।

ख- सरलीकरण की प्रवृति- ध्वनि परिवर्तन का दूसरा कारण प्रतिलिपिकार द्वारा किसी अक्षर का ऐसा सुगम रूप देना भी है जो मुखसुख के कारण कालांतर में

अधिक ग्राह्य हो गया । यथा १ ज्ञ का ग्य, त्र का त , ष का ख ।

ग- प्रतिलिपिकार की असावधानी- प्रतिलिपिकार की अपनी असावधानी के कारण भी शब्दों की ध्वनियों में परिवर्तन आ गया है । प्रतिलिपिकार यदि किसी शब्द को ठीक से न समझ सकने के कारण कुछ का कुछ लिख जाए तो शब्दों की ध्वनियों में पर्याप्त अन्तर अनायास ही आ जाता है । प्रतिलिपिकार यदि प्रतिलिपि करने में अधिक सावधान न रहा और उसने रंचमात्र भी प्रमाद किया तो संभव है कि वह किसी शब्द के स्थान पर कोई अन्य शब्द ही लिख जाए ।

आगे हम इन परिवर्तनों के उदाहरण क्रमश: स्थल संकेत सहित उद्धृत कर रहे हैं, जिससे ऊपर विवेचित प्रवृत्तियों की प्रक्रिया अधिक स्पष्ट हो सकेगी -

इ के स्थान पर ई

क- करन फूल प्रतिबिंब कपोलनी मृग मद तिलक ललाट कीये [१]
चतुर्भुजदास(कां०) पद सं० १०७ -- " कपोलनि "

ख- सो सुत कौन कुं कहत पीतारी [२]
सूरसागर(सभा) पद सं० ३४ -- " पिता री "

ग- पवीत्रां पहैर गीरीधर लाला [३]
गोविंदस्वामी(कां०) पद सं० १०५ -- " पवित्रां ", " गिरिधर "

घ- बीना गोपाल नहीं कोई अपनो [४]
गो० हरिराय जी के पद , पद सं० ६६६ --" बिना "

ङ- नांह रे बीशारूं हरी [५]
मीरां सुधा सिंधु, पद सं० १८७ -- " विसारूं "

१- ह०प्र०सं०, १ आ०
२- ,, ८६५ गु०
३- ,, १८३ गु०
४- ,, ११८ गु०
५- ,, ६८३ गु०

इ की स्थिति

तुलनात्मक अध्ययन से यह ज्ञात हुआ कि गुजरात के बाहर प्रकाशित पदों में जहां अकारांत शब्द मिलते हैं, उनके स्थान पर गुजराती हस्तलिखित पद संग्रहों में इकार का आगम हो गया है। यथा-

क- मयली यह खेलवे की बानि
मदन गुपाल लाल काहू की राखत नांही कांनि
अपने हाथ ले दे वनचरिनि दूध भात घृत सानि [१]

प०शु०,पद सं० १५३ -- बान, कान, सान

ख- अति सुदेश मृदु चिकुर हरत मन मुख विगराई [२]

सूरसागर(सभा) पद सं० ७२६ -- "वगराई"

ग- गोविंद प्रभु पिय चलत ललित गति कछुक सखा अपनी गटकी [3]

गोविंदस्वामी (कां०) पद सं० ३०१ -- गत

इ का लोप

क- टूट परी मौतिन की माला, ढुंढत फिरत सकल गुवाली [४]

प०कां०,पद सं० ७७६,-- मौतिनि, ढुंढति, फिरति

ख- अरु ता पर आनंद उमग रहे हो [५]

गोविंदस्वामी(कां०) पद सं० १८६ -- उमगि

१- ह०प्र०सं० २८४ गु०
२- ,, १ आ०
३- ,, २ म०
४- ,, ३ आ०
५- ,, ४७५ गु०

ग- अबीर गुलाल फेंट भर भामिनी कर कंचन पचकाई[1]

कीर्तन संग्रह,द्वि०भा० ७१ -- : भरि : पिचकाई :

घ- हंसा मद ममता रस भूलो[2]

सूरसागर(सभा) पद सं० ४७ -- : हिंसा :

ङ- गर्ग नरुप कहे सुभ लछन अविगत है अविनासी[3]

सूरसागर(सभा) पद सं० ७०५ -- : निरूप :

इ के स्थान पर अे

क- पाअे पंजनीआ रुनझुन वाजे आंगणे आंगणे डोलना[4]

प०कां०, पद सं० ३७ -- : पांइ :

ख- बचि बिच गोपी अेक अेक माधो निरतत संग सहेली[5]

प०कां०, पद सं० ७७६ --: इक इक :

उ कार का लोप

क- नौ दलह्न व्रषभान नंदनी नौ दल हो व्रजराज कुमार[6]

प०शु०,पद सं० ३१८ -- : दुलह्न :

ख- आज बने नंद नंद री नव चंदन को तन लेप किये[7]

चतुर्भुजदास(कां०) पद सं० १०७ -- : तनु : : लेपु :

१- ह०प्र०सं०, १००० गु०

२- वही,

३- ह०प्र०सं०, ८०१ गु०

४- ,, १ म०

५- ह०प्र०सं०, १८३ गु०

६- ,, १ म०

७- वही

ग- कर कंकन भनकार मनोहर प्रमुदित बेन बजावै[१]

पं०कां०,पद सं० ७६६ : बेनु :

मध्यस्थ एकार की स्थिति

क- कैहत कबीर नर सुंदर रूपा [२]

क०ग्रं०प्रयाग,पद सं० ६४ : कहत :

ख- जानैत हौ गिरिधर मन अटकौ रसिकराय सिरमौर [३]

चतुर्भुजदास(कां०) पद सं० २२८ : जानत :

ग- सु सुत कौन कौ कैहत पीतारी [४]

सूरसागर(सभा) पद सं० ३४ : कहत :

ऐ > अई

क- सूरदास वइकुंठ पठैते कौउ न फेंट पकरता [५]

सूरसागर(सभा) पद सं० २६७, : वैकुंठ :

ख- लंका दारुन दइंत बसत है,बजर समान सरीर[६]

सूरसागर(सभा) पद सं० ५३० : दैत्य :

ग- परमानंद प्रभु इंद्र का वइभव मित्र सुदामा पायौ[७]

पं०कां०,पद सं० १३०२, : बैभव ?

१- ह०प्र०सं०, ४७५ गु०
२- ,, ६८३ गु०
३- ,, २८४ गु०
४- ,, ८६५ गु०
५- ,, ४७५ गु०
६- ह०प्र०सं० , १०००गु०
७- ,, , १३अ०

औ,औं > अउ

क- चितवत कउसल्या मुखचंद[१]

ब्रज में प्रचलित रूप, : कौसल्या :

ख- सुरि नर मुनि जन कउतग मुले रघुपति रूप निधान[२]

प०शु०,पद सं० ३३८ : कौतुक :

ग- गउधन संग शाम घन सुंदर[३]

गोविंदस्वामी(कां०) पद सं० ५४८ : गोधन :

अ,उ,ऊ > औ

क- नौ दल हौ वृषभान नंदनी नौ दल हौ ब्रजराज्य कुमार[४]

प०कां०, पद सं० १५६ : नव :

ख- नील पीत पर चलत चारु नट रसना नौपुर कूंजे हौ[५]

प०कां०,पद सं० ७६६ : नूपुर :

ग- आसकरन गिरिधरन नंदसुत बनी अनौपम जौरी[६]

कीर्तन संग्रह,प्र०पू०पृ० १६२ : अनूपम :

घ- कैहत नीगम पौकार, साधु संगत डार पासा फैर रसना सार[७]

सूरसागर(सभा) पद सं० ३०६ : पुकारि :

१- ह०प्र०सं०, १ आ०

२- ,, २ आ०

३- ,, ४७५ गु०

४- ,, १ म०

५- ,, ४७५ गु०

६- ,, १८३ गु०

७- ,, ११६० गु०

क > ग

क- छीतस्वामी गीरीधरन श्री वीठल तीरोभवन मुगट मणी[1]

छीतस्वामी (कां०) पद सं० ४० : मुकुट :

ख- सुरि नर मुनि जन कउतग भुले रघुपति रूप निधान[2]

प०शु०, पद सं० ३३८ : कौतुक :

ख > ष

गुजराती हस्तलिखित प्रतियों में ख के स्थान पर लिपिचिह्न के रूप में ष प्राप्त होता है। यद्यपि उसका उच्चारण ख ही होता है। यह प्रवृति मध्यकाल की समस्त रचनाओं के प्राचीन हस्तलेखों में सर्वत्र सामान्य रूप से पाई जाती है।

क- गौधन षरीक षोर गीरी गह्वर रषवारों वर बन जहां छावें[3]

प०कां०, पद सं० ६५५ : खरिक : खोरि : रखवारों :

ख- मोद भरे वसुदेव गोद ले अषिल लोक प्रतिपाल[4]

नंददास, पं०शु०, पृ० ३२६ : अखिल :

ग- षसि षसि परत सुमन सीसनि तें उपमा कहा वखानो[5]

नंददास, पं०शु० पृ० ३२६ : खसि खसि :

घ- षिरक षिलावत गाइनि ठाढ़े[6]

छीतस्वामी (कां०) पद सं० ६ : खरिक : खिलावत :

१- ह०प्र०सं०, १०६१ गु०

२- ,, २ आ०

३- ,, १ मा०

४- ,, ८०१ गु०

५- ,, ६१२ गु०

६- ,, १ आ०

य का आगम

गुजराती हस्तलिखित प्रतियों की यह एक विलक्षण प्रवृत्ति है कि इ अथवा अ के स्थान पर उनमें य् उपलब्ध होता है ।

क- झुलो लाल पालने गोव्यंद [1]

चतुर्भुजदास(कां०) पद सं० १०   : गोविंद :

ख- व्यिन सेवा बिन दान पुन व्यिन जप तप कीने [2]

प० कां०, पद सं० १३०३   : बिनु :

ग- वंदु रघुपति करुणा निध्यान [3]

विनयपत्रिका,गीता प्रेस, पृ० १२६: निधान :

घ- कहत कबीर संतन की संगत्ये आवागवन मिटि जाय [4]

क०ग्रं०प्रयाग, पद सं० १४४   : संगत :

ङ- त्रैलोक्य तिलक गुण गहन राम [5]

विनयपत्रिका, गीता प्रेस, पद सं० ६४ : त्रैलोक :

स > श

क- जेशो हुं तेशो तहारो [6]

गो० हरिराय जी के पद, पद सं० ५६७, : जैसो : तैसो :

ख- श्री गोकुल रश चाखे जे कोई [7]

गो० हरिराय जी के पद,पद सं० ६४६,   : रस :

१- ह०प्र०सं०, १ आ०

२- वही,

३- ह०प्र०सं०, १५०३ गु०

४- ,, १३०७ गु०

५- ,, १५०३ गु०

६- ,, ११८ गु०

७- वही

म ग- हुं तौ दाशी पुरव जनम नी तुमारे शीरदार[1]

मीरां बृहत पद संग्रह,मब ६०-४७ : दासी : सिरताज :

घ- श्री विट्ठलनाथ नाम रश अमरीत पान सदा तु कर रे रशना[2]

छीतस्वामी (कां०) पद सं० १८५ : रस : रसना :

ङ- शकल गोकुल के करत कुलाहल[3]

कीर्तन संग्रह,द्वि० पृ० १७२ : सकल :

ह का लोप

क- सुन सुन वे अमण नादाना[4]

बीजक,शब्द ८३ : आत्मक :

ख- यैम कत कबीरा सारं[5]

क०ग्रं०प्रयाग,पद सं० ११५ : कहत :

ग- गोरस बेचवै मं जात[6]

प०कां०,पद सं० ६२६ : मंहि :

घ- रिषीकेश प्रभु रीभि साम घन बनमाला पेराई[7]

कीर्तन संग्रह,द्वि० पृ० ७१ : पहराई :

ङ- कुंमनदास गिरिवरधर आवेगे[8]

कुंमनदास(कां०) पद सं० ७ : आवहिगे :

१- ह०प्र०सं०, १३२० गु०
२- ,, १०६१ गु०
३- ,, १५०७ गु०
४- ,, ६४५ गु०
५- ,, ३ आ०
६- ह०प्र०सं०, २८४ गु०
७- ,, १५०३गु०
८- ,, १८३ गु०

अल्पप्राण का महाप्राण

प्रकाशित रूप में यदि शब्द अल्पप्राण है तो हस्तलिखित रूप में प्राप्त शब्द का रूप महाप्राण प्राप्त होता है । ऐसे कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं-

क- ध्रुव अंबरीष प्रह्लाद भीभीखन नित नित महिमा गाइ[1]

पoकांo, पद संo ५ : बिभीषन :

ख- मदन मोहन पीय निकसे द्वार ह्वै सोहत पाघ लटपटी [2]

गोविंदस्वामी (कांo)पद संo ३०१ : पाग :

ग- हेमलता तमाल अबलंभीत सीस मत्यका फूली हो [3]

पoकांo,पद संo ७६६ : अबलंबित :

घ- खेवट की जाति काहा में वेद की राइ[4]

गीतावली,गीताप्रेस, पृo २५ : केवट :

ङ- गोविंद प्रभु पिव ताहीं सीधारों जहां अधर धसन क्षत कीने [5]

गोविंदस्वामी(कांo) पद संo २४३ : दसन :

च- मदन गोपाल मनोहर मुरत मिल्यो है भावतो कंथ[6]

पoकांo, पद संo ११८६ : कंत :

ज्ञ > ख

संस्कृत ज्ञ ध्वनि का ख के रूप में सरलीकरण मध्य भारतीय आर्यभाषा में सर्वत्र हो गया और गुजराती भी इस प्रभाव से अछूती न रह सकी । इस संबंध में निम्न उदाहरण द्रष्टव्य हैं -

---

१- ह०प्र०सं०, ८०१ गु०
२- ,, २८४ गु०
३- ,, ४७५ गु०
४- ,, ७७२ गु०
५- ह०प्र०सं० ८७८ प्रा०
६- ,, १ ३००

क- पौढ़े प्रभु छीरसागर में झूला जाय जावे री[1]

प्रचलित रूप : क्षीरसागर :

ख- चहुं वेद गुनी करत महामुनि होत नखत्र विचार[2]

चतुर्भुजदास(कां०) पद सं० २ : नक्षत्र :

ग- जैसे तिहारो पकुवान पायो,सोही रखा करही[3]

प०शु० पद सं० २६५ : रक्षा :

त्र > त

क- छीतस्वामी गीरीधरन श्री विठ्ठल तीरीमोवन मुगट मणी[4]

छीतस्वामी (कां०) पद सं० ४० : त्रिभुवन :

ख- गुंजत मधुप कोकिला कुंजत नव नीकुंज सोभित चीतरसारी[5]

कृष्णदास (कां०) पद सं० ४७१ : चित्रसारी :

ज्ञ > ग्य

क- जग्य पुरुष लीला अवतारी आदि मध्य अवसान एक रस[6]

प०कां०, पद सं० २८६ : ज्ञ :

१- ह०प्र०सं०, १५३२ गु०

२- वही

३- ह०प्र०सं०, ६-१५ डा०

४- ,, १०६१ गु०

५- ,, ४७५ गु०

६- ,, ६१२ गु०

संयुक्त ध्वनियों में य् तथा व् का लोप

क- लक्षमी हरि के निकट न आवे यह सारूप कबहुं न निहार्यो[1]

पु०कां०,पद सं० १२४७ : स्वरूप :

ख- जो तुम पंडत अगम पढ़ हो वेद हो बाकरणां[2]

क०गूं०प्रयाग, पद सं० १०१ : व्याकरनां :

ग- मधुरे सुर गावत केदारो उर के ऊडत फकीर[3]

कीर्तन संग्रह,प्र०उत्त० पृ० ३५३ : स्वर :

च् का लोप

क- हरद दूध अछित दधि कुमकुम सुंदर दूब बंधाइ[4]

कीर्तन संग्रह,प्र०पू०पृ० १४ पद ७ : अच्छत :

ख- साम सुभग तन पर दछीन कर पूजत चरण सरोज हो[5]

प०शु० पद सं० २१६ : दच्छिन :

ग- दीव्य चीर पेहेरे दछन को कटि की कांनी रुनझुन वांनी[6]

गोविंद स्वामी(कां०) पद सं० २८० : दच्छिन :

आलोच्य पदों की भाषा में प्राप्त उपर्युक्त विवेचित ध्वनि-परिवर्तन भाषा के [illegible] दौत्रिय संस्कार के परिणाम प्रतीत होते हैं । गुजराती प्रतिलिपिकारों ने एवं पदों के गायकों ने ब्रजभाषा के शब्दों को अपनी सुविधा एवं भाषा के अनुरूप परिवर्तित कर लिया किन्तु आलोच्य पदों की भाषा की देशानुसार स्वरूप ग्रहण की प्रवृति का भी परिचय हमें आलोच्य पद साहित्य से प्राप्त हो जाता है ।

१- ह०प्र०सं०, ६१२ गु०

२- ,, १००० गु०

३- ,, २१० फा०

४- ह०प्र०सं०, ८०१ गु०

५- ,, १ म०

६- ,, ८७९ प्रा०

पर्याय

आलोच्य पदों में अनेक शब्दों के पर्याय भी उपलब्ध होते हैं किन्तु सबका यहां परिचय प्रस्तुत करना संभव नहीं है। इसलिये कृष्ण और राम के पर्याय यहां प्रस्तुत किये जा रहे हैं क्योंकि कृष्ण काव्य और राम काव्य में कृष्ण और राम की अपेक्षा अन्य कोई शब्द अधिक महत्वपूर्ण हो भी नहीं सकता। नीचे आलोच्य पदों में प्रयुक्त कृष्ण और राम के पर्यायों का निर्देश किया जा रहा है --

कृष्ण -- कन्हाई, कान्हा, कुंवर कनइया, केशव, कृष्ण, गिरिधर, गिरिवरधारी, गिरिधर लाल, गिरधारी, गोकुल चंद, गोपाल लाल, गोविंद, गोपाल गोकुलनाथ, गोवरधनधारी, घनश्याम, चक्रपाणि, जगदीश, द्वारकानाथ, नटवर, नदनंदन, नंदलाल, नटवर नंद,किशोर, नंदसुत, नंदरावरे, नवलविहारी, नंदराय कुंवर, नागरराय, पुरुषोतम, बिहारी, व्रजराजकुमार, बलमोहन, मथुरानाथ, मदनमोहन, मदनगोपाल, मनोहर, मनमोहन, माधो, माधव, मोहन, मोहन लाल, मुरारि, रसिकराय, रसिया गोपाल, रसिक मुकट मनि, राजा रणछोड़, राधिका कंत, रसिक सिरोमनि, लाल, स्याम, स्यामसुंदर, सांवरे, हरि, हलधर वीर, हरी, श्याम मनोहर, त्रीकम, श्री गिरिधर, श्री नंदकुमार।

राम -- रघुनाथ, रघुनंदन, रघुवीर, रघुवर, राम, रामचन्द्र, जानकीवर ।

इन पर्यायों से यह स्पष्ट है कि राम की अपेक्षा कृष्ण के पर्याय अधिक प्रयुक्त हुये हैं जो वस्तुत: उपर्युक्त दोनों अवतारों से सम्बन्धित उपासना और पदक साहित्य के परिमाण के भी बोधक हैं ।

भाषा मिश्रण

पंजाबी का मिश्रण- हिन्दी प्रदेश के व्रजभाषा पदों के साथ कुछ कवियों के पंजाबी में रचित पद भी गुजरात पहुंचे । इन पदों की स्थिति इस तथ्य की द्योतक है कि भाषा ने दोनों प्रदेशों की सांस्कृतिक चेतना के निर्माण में कोई व्याघात नहीं उत्पन्न किया । पंजाबी में रचित तथा पंजाबी मिश्रित पद मीरांबाई, कबीर, गो० हरिराय के मिलते हैं । आगे इन पदों को उद्धृत किया जा रहा है -

क- प्रोई दे प्रोई दे मन मोतीउं दी माला
पाच पचीस लड़न की माला धागा तीन समोये दे रे
तीन सौ साठ हीरन की माला बावन कलीया समाई दे रे
बडे जतन से माला पाई भक्त वीना मत खोई दे रे
कहे कबीर सुं भाई साधु सबद में सुरती समोई दे रे ।[1]

ख- होरी के ख्याल विच यह क्या कीता
मैनु लगाई छरी फूलों की सिरदा,घुंघट खोल लिया
पाई गुलाल आंखो विच मेरे देखे न दा सुख कीता वे कीता
सखी देखे दी लाज मरो दी वन गा लो लीता वे लीता
एसी न कीजिए नागर नंद के कहिलावे तू व्रजजन मीता
रसिक प्रीतम नाल हा हा खाई हूं हारी तू जीता वे जीता ।[2]

ग- दरस बताबतो में वारियां तुमसे मेरी लगन लगी वे सांवरा
दरशन देत नीहाल करत हुं नाहायक जीवत रसांवदा
मोर मुगट सीर छत्र बीराजे मोरली की लटक सुना जावे सांवरा
सारी रैन मोहे तलपत बीती, तन की तपत बुफा जावे सांवरा
मीरां के प्रभु गीरधर नागर दील भर नजरों दी आजा सांवरा ।[3]

१- ह०प्र०सं०, ६४५ गु०
२- ,, ११६ गु०
३- ,, ३१८ फा०

गुजराती का मिश्रण

पदों का प्राप्ति स्थान गुजरात होने के कारण, उनमें गुजराती के शब्दों का मिश्रण पर्याप्त मात्रा में मिलता है। मध्यकाल और उसके पश्चात् यह पद उत्तर भारत से राजस्थान होकर गुजरात पहुंचे। गुजरात में ही प्रतिलिपि क्रम में गुजराती भाषा का भी प्रभाव इन पदों पर कहीं-कहीं पड़ा है। प्राप्त पदों में गुजराती भाषा के मिश्रण के निम्नलिखित कारण संभव प्रतीत होते हैं -

क- प्रतिलिपिकार की असावधानी -- हिन्दी पदों में गुजराती शब्दों के मिश्रण का प्रमुख कारण स्वयं प्रतिलिपिकार ही है, क्योंकि अधिकांश भिन्न पाठ तथा अन्य भाषा के शब्दों का समावेश प्रतिलिपिकार की असावधानी के कारण हो जाता है। ऐसा लगता है कि इन पदों के प्रतिलिपिकार गुजराती तथा हिंदी दोनों के ही ज्ञाता रहे होंगे। इसलिए प्रतिलिपि करते समय हिन्दी शब्द के स्थान पर गुजराती का शब्द लिख जाना उनके लिए स्वाभाविक ही है।

ख- प्रतिलिपिकार की अज्ञानता -- गुजराती शब्दों के मिश्रण का दूसरा कारण प्रतिलिपिकार की अज्ञानता भी है। प्रतिलिपिकार को किसी ठेठ शब्द का अर्थ समझ में नहीं आता, तो उस स्थान पर वे अपनी भाषा के सुगम शब्द को लगा देते हैं। ऐसी स्थिति में स्वयं प्रतिलिपिकार मिश्रण कर देता है।

ग- पदों की गेयता -- गुजराती भाषा के शब्दों और रूपों के मिश्रण का तीसरा कारण पदों की गेयता भी है। अधिकांश प्राप्त पद गाये जाने के लिए ही लिपिबद्ध किए जाते रहे हैं। गायक गाते-गाते किसी अंश विशेष को भूल जाय तो संभव है उस स्थल पर अपनी भाषा के किसी शब्द का प्रयोग करले। तत्पश्चात् वे पद उसी रूप में प्रचलन में आ जाते हैं।

घ- भाषा सादृश्य -- हिन्दी पदों में गुजराती भाषा के शब्दों और प्रयोगों के मिश्रण का चौथा कारण दोनों भाषाओं के शब्दों में प्राप्त सादृश्य भी है। उदाहरण के लिए नीचे दिए गए कुछ सर्वनामों को ले सकते हैं -

हिन्दी	--	गुजराती
तुम	--	तम, तमे
हम	--	अम अमे

हमारे	--	मारे, म्हारे
तुम्हारे	--	तमारे

जहां छंद की गति की अनुरुपता, मात्रिक समानता तथा ध्वनि साम्य पर्याप्त मात्रा में रहता है, वहां ऐसा शब्दान्तरण बहुधा प्राप्त हुआ है । इस प्रकार के गुजराती शब्दों पर निम्नलिखित क्रम में विचार किया गया है -

क- संज्ञा

ख- विशेषण

ग- सर्वनाम

घ- क्रिया

ङ- अव्यय

च- विभक्ति

क- संज्ञा

घेर घेर थी आवें टोला टोली[१]

को खेती को वणजें धायो [२]

अपने गल मां फांसी डारे [३]

जागत रैन त्रिहारे, कब घेर आवे आवे [४]

होता जाजो माराज माहारे (म्हारे) [५]

राजा दशरथ घेर नौबत वाजे, घेर घेर वटत वधाई [६]

१- माधवदास , ह०प्र०सं० १ आ०

२- कबीरदास, ,, ६८३ गु०

३- वही

४- मीरांबाई, ह०प्र०सं० १७५८ गु०

५- मीरांबाई, ,, १३२० गु०

६- माधवदास ,, १३२५ गु०

कंचन थाल साज लीये कर वेनु(बहन) शुमद्रा लाई[1]

ख- विशेषण

सूरा होये तो सनमुख रेवै,गाफल खावे घणुं (अधिक) मार रे[2]

माला रे फेरे ने मुख मीठुं मीठुं (- मीठा मीठा) बोले[3]

चतुरभुज प्रभु गिरिधरन वारी वन में क्यों रहै एकली (-अकेली) अबला[4]

अेक ही हाथ अेकलो (- अकेला) जु ठाड़ो[5]

एक जोगी दूजा मित्र है त्रीजे (-तीसरा) ग्यान दीवान[6]

बार (- बारह) बरस हम भवन न बसहैं[7]

अेक छोटी ने बीजी (- दूसरी) मोटी[8]

ग- सर्वनाम

प्राप्त पदों में सर्वनाम के प्रथम पुरुष और द्वितीय पुरुष के ही रूप मिलते हैं जो इस प्रकार हैं -

---

१- परमानंददास , ह०प्र०सं० २०६ फा०
२- कबीरदास , ,, १२३ गु०
३- वही
४- चतुर्भुजदास , ,, १ आ०
५- गोविंदस्वामी, ,, ६-१५ डा०
६- कबीरदास , ,, ६४५ गु०
७- वही,
८- मीरांबाई , ,, ११६४ गु०

प्रथम पुरुष

बहुवचन : षष्ठी विभक्ति

आशरी करी रये जे जन मारे जन यही चरण [१]

मारा वाला जु के हाथ छड़ी रे [२]

बहुवचन : चौथी विभक्ति

नंददास अमारे जीवन [३]

द्वितीय पुरुष

एक वचन : षष्ठी विभक्ति

वाला जी तारी मोरली गाय रे [४]

बहुवचन : पहली विभक्ति

कहे कबीर तमे सुण्ये भरथरी [५]

कहे कबीर तमे सुनो भाई साधु [६]

नाथ तमे जानत हो सब घट की। [७]

बहुवचन : षष्ठी विभक्ति

तमारे तेज चरण परताप ते [८]

१- गो० हीराय, ह०प्र०सं० १०६१ गु०
२- मीरांबाई, " २५५ गु०
३- नंददास " १५३२ गु०
४- रैदास " २५५०
५- कबीरदास , ह०प्र०सं० १२३ गु०
६- वही ,
७- मीरांबाई , ह०प्र०सं० १६५८ गु०
८- माणकचंद , ह०प्र०सं० ११८ गु०

घ- क्रिया

जल जमुना जल भरवानें जाता सिर पर गगरी भरी[1]

कहेत कबीरा सुणो भाई साधु फुंक दीधी जेम होरी रे[2]

ऊनी मुनी लेहने भया रे अनंदा[3]

जनम शफल थयो आज[4]

महाप्रभु नो हींडालो जोइने[5]

हसत बाल सुधे आचमन लीधो[6]

भजता श्री भगवान जी[7]

सहायक क्रिया

तु जारे छे पोट बीकार की[8]

फुटी छे आंख गुमार की[9]

सजल श्याम घन वरण लीन छे[10]

भात भात ना पुष्प मनोहर, भावे छे शकुमारी रे[11]

करतां श्री गोविंद करे छे[12]

१- मीरांबाई , ह०प्र०सं० ६८३ गु०
२- कबीरदास , ,, ६८३ गु०
३- ,, ,, १०३८ गु०
४- मीरांबाई , ,, १३२० गु०
५- हरीदास , ,, १८३ गु०
६- परमानंददास, ,, ४७५ गु०
७- हरीदास, ह०प्र०सं० ६-८ डा०
८- कबीरदास, ,, ६८३ गु०
९- वही
१०- कृष्णादास ,, २८४ गु०
११- हरिदास ,, १८३ गु०
१२- हरिदास ,, ६-८ डा०

ङ- अव्यय

पिता दशरथ को क्यम (- क्यों,कैसे) मेटूं [१]

कहत कबीरा सुणो माई साधो फुंक दीधी ज्युम (- ज्यों,जैसे) होरो रे[२]

अेम (- ऐसे) कत कबीरा सार[३]

धन कारण अेम निशदिन भटकत[४]

करतां श्री गोविन्द करे छे ते माटे (-उसके लिए) अभीमान न कर[५]

च- विभक्तियां

दूसरी और चौथी विभक्ति -- ने

मत पूजो पथरा ने पाणी[६]

अेक छोटी ने बीजी मोटी[७]

माला रे फेरे ने मुख मीठुं मीठुं बोले[८]

पंचमी विभक्ति -- थी

घर घर थी आवे टोला टोली [९]

नहीं रे विसारूं हरी अंतरमाथी[१०]

१- तुलसीदास, ह०प्र०सं० ५७७ गु०
२- कबीरदास, ,, ६८६गु०
३- कबीरदास, ,, ३६प्रा०गु०
४- हरीदास , ,, ११८ गु०
५- हरीदास , ,, ६-८ डा०
६- कबीरदास, ह०प्र०सं० १२३ गु०
७- मीरांबाई, ,, ११६४ गु०
८- कबीरदास, ,, १२३ गु०
९- माधौदास, ,, १ आ०
१०- मीरांबाई, ,, ६८३गु०

आवागमन थी लियो है छुड़ाई[1]

मौवन मौवन थी नीकसी[2]

सद्गुरु थी सीधो भयो, एरी पायो पद निरवाण[3]

षष्ठी विभक्ति -- ना, नी, नो

सद्गुरु संत नी सेवा न कीनी[4]

मैं कौण मेरा ख्याल काहा सो ते खबर नी कीनी[5]

परमानंद प्रभु बड़े ध्रुव नी पत राखी[6]

हुं तो दाशी पुरव जनम नी[7]

कुसुम नी वरखा होत व्रज ऊपर[8]

विष ना प्याला राणा जी भेजा[9]

तहां कुसुम नी वृष्टि कराई[10]

भात भात ना पुष्प मनौहरा[11]

महाप्रभु नो हिंडोले जोईने[12]

सप्तमी विभक्ति -- मां

भमर गुफा मां[13]

अपने गल मां फांसी डारे[14]

१- कबीरदास, ह०प्र०सं० १०३८ गु०
२- गोविंदस्वामी ,, १५०७ गु०
३- कबीरदास, ,, १२३ गु०
४- वही
५- कबीरदास ,, ६८३ गु०
६- परमानंददास ,, ११८ गु०
७- मीराबाई ,, १३२०गु०
८- गोविंदस्वामी, ह०प्र०सं० १५०७ गु०
९- मीराबाई ,, १७५८ गु०
१०- कृष्णदास ,, १७५ फा०
११- हरीदास ,, १८३ गु०
१२- वही
१३- कबीरदास ,, १२३ गु०
१४- " ६८३ गु०

सारांश यह है कि आलोच्य पदों की भाषा यद्यपि हिन्दी है तथापि उस पर गुजराती का भी यत्र तत्र प्रभाव मिलता है । अनेक शब्दों में ध्वनि परिवर्तन हो जाने के कारण उनका रूप बदल गया है जिससे वे गुजराती के अनुरूप हो गये हैं । इन पदों की भाषा का साहित्यिक दृष्टि से भले ही महत्व न हो किन्तु क्षेत्रीय संस्कार के परिणाम स्वरूप घटित होने वाले परिवर्तनों के अध्ययन की दृष्टि से इसकी पर्याप्त महत्ता है ।

-0-

अध्याय ८

छंद विधान

शोध का विषय पदों तक ही सीमित होने के कारण, गुजराती हस्तलिखित पद-संग्रहों से केवल पदों को ही लिपिवद्ध किया गया और उन्हीं के आधार पर यहां उनका क्रमगत विवेचन प्रस्तुत किया जा रहा है। अन्य अध्यायों के समान यहां भी पूर्व निश्चित कवियों के पदों का आधार लिया गया है।

पदों का स्वरूप -- प्राप्त पदों के स्वरूप एवं आकार में भिन्नता मिलती है, जो इस प्रकार है -

क- ध्रुवा या टेक सहित पद - अधिकांश प्राप्त पदों में ध्रुवा या टेक की योजना प्राप्त होती है। कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं --

१- हिंडोरे झूलत जुगल किशोरी
इत व्रज भूषन कुंअर रसिक वर उत वृषभान नंदनी गोरी[1]

२- लडैती पालने झूलें
रंग महल रुचि रच्यो विधाता, निरखि निरखि मन फूलें।[2]

कहीं-कहीं ध्रुवा दीर्घ रूप में भी प्राप्त होते हैं यथा पूरी एक या दो-दो पंक्तियों के। यथा --

१- भजन में होत आनंद
बरसत शब्द अमी के बादल भीजत है कोई संत ।[3]

२- सुन सुन वे अमण नादाना, हरदम साहेब नहीं जाना ।[4]

ख- ध्रुवा या टेक रहित पद - आलोच्य पदों में कुछ पद ऐसे भी प्राप्त हुए हैं जिनमें टेक या ध्रुवा का प्रयोग नहीं किया गया है। यथा -

---

१- परमानंददास, ह०प्र०सं० ३ आ०
२- कृष्णादास, ,, १०३६ गु०
३- कबीरदास, ,, ६४५ गु०
४- वही ,

वन्यौ रास मंडल में माधौ गति में गति उपजावे हो ।
कर कंकन झंकार मनोहर, प्रमुदित वेनु बजावे हो ।[1]

श्री विट्ठलनाथ वसत जिय जाके,ताकी प्रीति रीति छवि न्यारी ।
प्रफुलित वदन-कांति करुनामय,नैननि में झलके गिरधारी ।[2]

ध्रुवा से पद की संगति

ध्रुवा सहित पदों में ध्रुवा और पद की संगतियों के निम्न रूप मिलते हैं -

छंद संगति
तुक संगति

छंद संगति -- ध्रुवा सहित पदों में ध्रुवा तथा अन्य पंक्तियों के मात्रा क्रम में अन्तर मिलता है । ध्रुवा कहीं-कहीं ११,१३,१५ और इससे अधिक मात्राओं के भी मिलते हैं । जिनका कोई निश्चित विधान नहीं लगता । यद्यपि परंपरा प्राय: स्पष्ट है । जबकि अन्य पंक्तियां किसी छंद विशेष की हैं । ध्रुवा रहित पद एक ही छंद में प्राप्त होते हैं ।

तुक संगति -- प्राप्त पदों में ध्रुवा तथा अन्य पंक्तियों की तुक संगति के भी कई रूप मिलते हैं । कहीं-कहीं ध्रुवा की तुक, उस पद की प्रथम पंक्ति से ही मिलती है और अन्य पंक्तियां दो-दो के क्रम में स्वतन्त्र तुक वाली होती हैं । कुछ पदों में ध्रुवा से पद की अन्य सभी पंक्तियों की तुक संगति मिलती है और कुछ पदों में प्रत्येक पंक्ति स्वतंत्र तुक वाली मिलती है,। जिनमें तुक संगति पंक्ति के मध्य में है । नीचे इससे संबंधित कुछ उदाहरण प्रस्तुत किए जा रहे हैं -

ध्रुवा से प्रथम पंक्ति की संगति

आवे माई व्रज ललना दुख मोचन
गोधन संग फुनित कर मुरली,सरद कमल दल लोचन ।

१- परमानंददास, ह०प्र०सं० २ म०
२- छीतस्वामी , ,, ११८ गु०

कटि तट लाल काछनी काछे औहरत पीत पिछौरी ।
आप हँसे हँसावत गुवालन राग अलापत गौरी ।[1]

ध्रुवा से सभी पंक्तियों की तुक संगति

सुखद रसरूप श्री विट्ठलेस राइ
वेद वदत पूरन पुरुषोत्तम , श्री वल्लम गृह प्रगटे आइ ।
अद्भुत रूप अलौकिक महिमा, अति सुंदर मन सहज सुमाइ।[2]

पंक्तियों के मध्य में तुक विधान

रवि तनया के तीरा । बिपिन बसे आमीरा ।
सौवन जूथिका फूली । कुंज कुटी पर फूली ।[3]

ध्रुवा की प्रकृति -- पदों में व्यवहृत ध्रुवा के दो रूप मिलते हैं -

१- अर्थ संगति
२- तुक संगति

अधिकांश ध्रुवा पद की अन्य पंक्तियों से तुक संगति रखते हों या नहीं,अर्थ संगति अवश्य रखते हैं। बिना अर्थ,मात्र प्रयोग के लिए ही उनका विधान नहीं किया गया है। उनकी अर्थ संगति पूरे पद से लक्षित होती है।

पदों में चरण विन्यास सम रूप में हुआ है। विषम प्रकृति के पदों के उदाहरण नहीं मिलते। इसका कारण पदों की गेयता एवं उनकी तुकान्त प्रकृति है।

पदों में प्रयुक्त छंद और उनका स्वरूप

आलोच्य पदों में केवल मात्रिक छंदों का ही विधान हुआ है। मध्यकालीन हिन्दी साहित्य में यों भी पद साहित्य अधिकतर गेयता के कारण मात्रिक छंदों में ही रचा

१- कृष्णदास, ह०प्र०सं० १७७६ गु०
२- छीतस्वामी, ,, १६७६ गु०
३- परमानंददास ,, २ म०

गया है । वर्णिक छंदों के पद नहीं प्राप्त होते । मात्रिक छंदों मे भी प्राय: अधिक लोकप्रिय छंद ही प्रयुक्त हुए हैं । इनमें मुख्य हैं - सार, सरसी, विष्णुपद, हरिप्रिया, शोभन, रूपमाला, उपमान, झूलना आदि ।

सरसी और सार - प्राप्त पदों में सरसी और सार छंदो के पद प्रचुर मात्रा में प्राप्त होते हैं । कृष्णभक्त कवियों ने अधिकतर इन दोनों ही छंदों का प्रयोग अपनी पद-रचना में बहुलता पूर्वक किया है । सरसी छंद में २७ मात्राएं, १६-११ के मात्रा क्रम से होती हैं । अंत में एक गुरु लघु होता है[१]--

जहां तहां चरण कमल माधो के, तहां तहां मनमोर ।
जे पद कमल फिरत वृंदावन, गोधन संग किसोरे ।[२]

करत वेद धुनि सबै महामुनि, होत नक्षत्र विचार ।
उग्यो पुन्य को पुंज सांवरो, सकल सिद्धि दातार ।।[३]

मत्त गयंद देखि जिय लाजत, निरखि मंद गति चाल ।
व्रज वारिनि पकवान बहुत करि, भरि भरि लीनें थाल ।[४]

बरषत शब्द अमी के बादल, भीजत है कोई संत ।
रोम रोम अमी अंतर भेदा, पारस परसत अंग ।[५]

सार २८ मात्राओं का छंद है, जिसमें १६-१२ के मात्रा-क्रम से अंत में दो गुरु होते हैं ।[६] यदि सरसी छंद के अंत में लघु के स्थान पर गुरु कर दिया जाय तो वही सार छंद हो जाता है ।

१- छंद प्रभाकर, पृ० ७३
२- परमानंददास, ह०प्र०सं० ३ आ०
३- चतुर्भुजदास, ,, ८०१ गु०
४- कुंभनदास, ,, १ आ०
५- कबीरदास, ,, ६४५ गु० ।
६- छंद प्रभाकर, पृ० ७४

हाथ लकुटिया काछे कमरी, आ छवि ऊपरवारी ।
जल जमुन हुं भरण जाती , बीच मिलौ गिरधारी ।[1]

नन माला ले आये अंगन में,तोर डार वगरावै ।
बीनन के मिस संग अवलोकत,अैसे ही पहर बितावै ।[2]

सदा सेवों श्री वल्लभ नंदन,कहा करों जाऊ कासी ।
छांडिनाथ और रुचि उपजावे, सौ कहिये असुरासी।[3]

आय दिवान गांव मध्य बैठे,लेख कागद डारे ।
निकसी वांकी पकर मुकद्दम, सबही होय गये न्यारे।[4]

किन्तु मीरां के कुछ पदों में सार छंद का एक विशिष्ट प्रयोग मिलता है । इन्होंने सार के दो चरणों के बाद १३ मात्राओं की पंक्ति की अतिरिक्त योजना द्वारा विशिष्ट गेयता का समावेश किया है -

दरसण कारण भई बावरी, विरह व्यथा तन घेरी ।
तेरे कारण जोगण हूंगी , दूंगी नगर बिच फेरी।
कुंज सब हेरी हेरी ।[5]

सार और सरसी के कुछ मिश्रित प्रयोग भी मिलते हैं । कवि परमानंददास का एक पद इस प्रकार है -

नंद ग्रह बाजत कहुं बधाई
जुरि आई सब मीर अंगन में, जन्में कुंवर कन्हाई ।
सुनत चली सब व्रज की सुन्दरी,कर लिए कंचन थार ।

१- परमानंददास, ह०प्र०सं० ११६७ गु०
२- कृष्णादास, ,, १००० गु०
३- छीतस्वामी, ,, १०६१ गु०
४- कबीरदास, ,, १ आ०
५- मीरांबाई, ,, १७५८ गु०

कुमकुम केसर अच्छत श्रीफल,चलत ललित गति चाल ।
आज मैया यह भली भई है,तुम घर ढौटा जायो ।
हृदै कमल फूल्यो जो हमारो,सुनत बहुत सुख पायो ।[1]

विष्णुपद - विष्णुपद नामक छंद में २६ मात्राएं होती हैं । १६-१० के मात्रा क्रम से इसके अंत में गुरु होता है ।[2] सार और सरसी छंद के समान ही पद रचना में इस छंद का भी व्यापक प्रयोग मिलता है -

भवसागर ते काढ़ि महाप्रभु, राखि सरन अपनी ।
निसदिन तिहारो नाम रटतु है,जैसे मच्छ फनी ।[3]

ऐसी वंसी आन वजाई , सुध बुध ही न रही ।
उत गोकुल इत मथुरा नगरी, बैरन बीच वही ।[4]

खेलन फाग चली मोहन संग,खेलन फाग चली ।
चुवा चंदन और अरगजा, छिरकत घोष गली ।[5]

चवपैया - यह ३० मात्राओं का एक दीर्घ छंद है । जिसमें १०-८-१२ पर यति होकर अंत में गुरु होता है ।[6]

प्रात समय मानो,उदित भयो रवि, निरख,नयन अति लोभा ।
मणिमय जटित,साज सरस सब, ध्वजा चमर चित चोभा ।
मदन मोहन पिय मध्य विराजत, मनसिज मन के छोभा ।[7]

१- परमानंददास , ह०प्र०सं० २ भ०
२- छंद प्रभाकर, पृ० ७१
३- छीतस्वामी, ह०प्र०सं० १०६१ गु०
४- मीराबाई , ,, ५७७ गु०
५- परमानंददास, ,, ३ आ०
६- छंद प्रभाकर , पृ० ७८
७- गोविंदस्वामी, ह०प्र०सं० १५०७ गु०

उपमान,शोभन,और रूपमाला- उपमान छंद २३ मात्राओं का होता है । १३-१० के मात्रा क्रम से इसके अंत में दो गुरु होते हैं ।[1] रूपमाला में २४ मात्राएं १४-१० के मात्रा क्रम से होती हैं । अंत में एक गुरु और एक लघु होता है ।[2] यदि रूपमाला के अंत में जगण हो तो वही शोभन छंद माना जाता है ।[3]

उपमान — जब गोविंद कृपा करै, तब सब बनि आवै ।
सुख संपति आनंद घनोघर बैठे पावै ।[4]

व्रज भयौ महर के पूत,जब यह बात सुनी ।
सुनि आनंदे सब लोग,गोकुल गनक गुनी ।[5]

रूपमाला — निरखि हरि की बाल लीला,गावत गीत सुछंद ।
सुनत सिद्ध समाधि छूटी,भई रवि गति मंद ।[6]

द्वै खंभ कंचन के मनोहर, रत्न जड़ित सुरंग ।[7]

मारग बीच मिले मोहन, नागर नंद किसोर ।[8]

शोभन — वन वन ढूंढत मैं फिरि रे, अपने पिया के काज ।
दया करी ने दरसन दीजो,बांह गहे की लाज ।[9]

हरिप्रिया - इस छंद में १२-१२-१२ और १० के क्रम से ४६ मात्राएं होती हैं-[10]

जागिये गुपाल लाल, आनंद निधि नंदबाल ।
जसुमति कहे बार बार, भोर भयो प्यारे ।[11]

१- छंद प्रभाकर, पृ० ६६
२- ,, ,पृ० ६८
३- वही,
४- परमानंददास,ह०प्र०सं० ३ आ०
५- सूरदास, ,, ८०१ गु०
६- गोविंद स्वामी,, १ म०
७- कृष्णादास, ह०प्र०सं० १ म०
८- कुंभनदास , ,, २ आ०
९- मीरांबाई, ,, ५७७ गु०
१०- छंद प्रभाकर, पृ० ६१
११- सूरदास , ह०प्र०सं०

जुवति जूथ करत केलि , स्यामा सुख-सिंधु झेलि ।
लाज लीक दई पेलि , परसि पानि कुली ।[१]

कुकुभ- तीस मात्राओं के इस छंद में १६-१४ के मात्रा-क्रम से अंत में दो गुरु होते हैं।[२] कबीर के पदों में इस छंद का प्रयोग मिलता है -

चतुर सखी मिल खेल विचारा, आंखि मूंदि अंधियारो रे ।
परम पियारी बैठन हारी , ढूंढत है कुछ पानी रे ।[३]

आखरी तन खाक मिलेगा, क्या फिरता मगरुरी से ।
प्रेम नगर में रहन हमारी , पायो भगत जगीरी से ।[४]

सखी - इसके प्रत्येक चरण में १४ मात्राएं होती हैं । अंत में तीनों गुरु या एक लघु या दोनों गुरु होते हैं[५]-

मन बंध त्रिवेनी पाई , कछु गुरु मुख अगम लखाई ।
जब नख सिख सौं मन लीना, तब अंतरमंजन कीना ।[६]

दिगपाल- इस छंद में १२-१२ के मात्रा-क्रम से २४ मात्राएं होती हैं । अंत में दोनों गुरु होते हैं[७] -

अबके जो लाल मिले , अंचरा गह झगरो री ।
काहे तुम छांड गये , संग लाग डगरो री ।[८]

१- छीतस्वामी , ह०प्र०सं० १ आ०
२- छंद प्रभाकर , पृ० ८१
३- कबीरदास , ह०प्र०सं० १ आ०
४- कबीरदास , ,, ६४५ गु०
५- छंद प्रभाकर , पृ० ४८
६- कबीरदास, ह०प्र०सं० १ आ०
७- छंद प्रभाकर, पृ० ६७
८- परमानंददास, ह०प्र०सं० ४७पु०

वीर - ३१ मात्राओं का यह एक दीर्घ छंद है जिसमें १६-१५ के मात्रा क्रम से अंत में एक गुरु और लघु होता है।[१]

प्रेम मगन गावत गोपी जन , ले ले स्याम सुन्दर को नाम ।
नंद गोप सुत सब सुखदायक , मोहन मूरत पूरन काम ।[२]

करो कलेऊ कहत जसोदा , सुन्दर मेरे गिरिधर लाल ।
दूध दही पकवान मिठाई , माखन मिश्री परम रसाल ।[३]

रतन खचित कंचन को पलना, ता-मधि झूलत गिरिधर लाल ।
जसुमति हरषि झुलावत गावत, सुन्दर गुन दे दे कर ताल ।[४]

झूलना - इस छंद में १०-१०-१० और ७ के मात्रा क्रम से ३७ मात्राएं होती हैं। अंत में यगण होता है।[५]

बाल नंदन बली, विकट वनचर महा, द्वार रघुवीर को वीर आयो ।
पौरि ते दौरि दरवान दस सीस सों, जाइ सिरनाइ कह्यो सुनायो ।[६]

चौपाई-- इसमें १६ मात्राएं होती हैं।[७] प्राप्त पदों में इसके दो रूप मिलते हैं। एक में अंत में दोनों गुरु मिलते हैं औ दूसरे में दोनों लघु प्राप्त होते हैं।

नंदनंदन वृषभान दुलारी, बैठे हिंडोरे जुगल पिय प्यारी ।
स्याम सनेही वचन कोउ न बोले, घूंघट छांड बदन कोउ न खोले ।[८]

१- छंद प्रभाकर, पृ० ८२
२- चतुर्भुजदास , ह०प्र०सं० ८०१ गु०
३- परमानंददास, ,, २७०३ गु०
४- कुंभनदास, ,, ३ आ०
५- छंद प्रभाकर, पृ० ८६
६- सूरदास, ह०प्र०सं० ५७३ गु०
७- छंद प्रभाकर, पृ० ५६
८- कृष्णदास , ह०प्र०सं० २ म०

अब न भजे कब भजिहै माई, आवैगो अंत तब भज्यो न जाई ।[1]

सुंदर नंद महरि जु के मंदिर, प्रगट्यो पूत सकल सुख कंदर ।[2]

चौबोला- चौबोला नामक छंद में ८-७ मात्रा क्रम से १५ मात्रायें होती हैं और अंत में लघु गुरु होता है[3]-

जब लगि मैं मैं मेरी करै , तब लग काज अेक नहिं सरै ।
जब मेरी ममता मिटि जाय, तब प्रभु काज संवारै आये ।[4]

कृष्ण भक्त कवियों के पदों में संगीत विधान

अधिकांश कृष्णभक्त कवि पद रचना की निपुणता के साथ ही संगीत में भी निपुण थे । अष्टछाप के सभी कवि संगीत के ज्ञाता थे (सूरदास,गोविंदस्वामी , और कृष्णदास तो संगीत के ज्ञाता ही नहीं उसके आचार्य थे । तत्कालीन गायन की विविध पद्धतियों से वे भलीभांतिं परिचित थे । अष्टछाप के साथ ही सभी कृष्ण भक्तों के काव्य में संगीत की प्रधानता मिलती हैं । इस प्रधानता का मुख्य कारण कृष्ण की उपासना है । सभी कृष्ण भक्त कवियों के इष्ट मुरलीधर हैं जो स्वरों के अधिष्ठाता हैं । कुशल संगीतकार होने के कारण संगीत उनके जीवन की विविध क्रीड़ाओं में एक अनिवार्य उपकरण है । इनकी समस्त क्रियाएं संगीत के किसी न किसी रूप से सम्बन्धित हैं । इन कृष्ण भक्तों ने श्रीकृष्ण की जिस लीला का आनन्द प्राप्त किया, उसी को उन्होंने अपने पदों में गाकर साकार रूप प्रदान किया है । अत: कृष्ण की उपासना करने के कारण इन कृष्णभक्त कवियों के काव्य में संगीत का विधान स्वाभाविक रूप से स्वत: ही हो गया है ।

कृष्णकाव्य में लीलावतारी कृष्ण की लीलाओं का गान अलौकिक दृष्टि से प्रमुख रहा है । कृष्ण के लोकरंजक और लोकरक्षक,दोनों रूपों के वर्णन के कारण , उसमें प्राय: सभी रसों का समावेश हुआ है । जिसके परिणामस्वरूप प्रत्येक रस से सम्बन्धित संगीत की राग-रागिनियों को कृष्ण काव्य में स्थान मिल सका है ।

१- कबीर ह०प्र०सं० १ आ०
२- नंददास ह०प्र०सं० १ म०
३- छंद प्रभाकर पृ० ५०-५१
४- कबीर ह०प्र०सं० ३ आ०

सभी प्रकार की राग रागिनियों के लिये स्थान होने के कारण भी संगीत के प्रति सभी कृष्ण भक्त कवि आकृष्ट हुये ।

कृष्ण भक्त कवियों की चेतना श्रीकृष्ण के लोक रंजन रूप का वर्णन करने में ही अधिक लीन मिलती है । उनके वर्ण्य विषय प्रमुख रूप से प्राय: कृष्ण जन्म की बधाईं, रास, होली, वसन्त, वर्षा, मल्हार आदि हैं । ये सभी लीलायें इतनी सरस और मानव हृदय की विविध रागात्मिका वृत्तियों को उत्तेजित करने वाली हैं कि उनके गुण गान के क्षणों में वैविध्य पूर्ण संगीत का सहसा प्रवहमान हो जाना पूर्ण रूप से नैसर्गिक है ।[0]

कृष्ण भक्त कवियों के काव्य में संगीत की विभिन्न राग रागिनियों के नामों का उल्लेख मिलता है । इनमें सारंग, गौरी, मल्हार, केदार, गुजरी, आदि राग - रागिनियों का नाम प्रमुख रूप से आता है । इन राग रागिनियों से सम्बन्धित पदों की कुछ पंक्तियां यहां उद्धृत की जा रही हैं --

क- मधुरे सुर गावत केदारो, उर के उड़त भकोरे ।[१]

ख- गरजत गगन दामनी अति चमकत, राग मलार जमायो ।[२]

ग- गौरी राग अलापत गावत, कहत मांवते बोल ।[३]

घ- मच्यो राग बसंत तिहि औसर, गावत तान भली ।[४]

ङ- सारंग राग सरस नंद नंदन सजि सप्तक सुर गावत ।[५]

च- गुजरी राग अलापत गावत, कहत मांवते बोल ।[६]

इसके अतिरिक्त आलोच्य पदों में निम्नलिखित रागों का भी प्रयोग मिलता हैं -

---

०- हिन्दी के कृष्णभक्तिकालीन साहित्य में संगीत, पृ० १११

१- कृष्णदास , ह०प्र०सं० २१० फा०

२- चतुर्भुजदास , वही

३- परमानंददास, वही

४- गोविंदस्वामी, ह०प्र०सं० १ म०

५- चतुर्भुजदास, ह०प्र०सं० १ आ०

६- परमानंददास, ह०प्र०सं० १ आ०

टौडी, गौडी, आसावरी, मारु, बिलावल, केदार, धनाश्री, बसंत, बिहाग, भैरव, रामग्री, जैतश्री, देवगंधार, श्रीराग, धमार, हिंडौरा, यमन, नट, मालव, काफी, कल्यान, मल्हार

प्राप्त पदों में उपर्युक्त रागों का किसी निश्चित छंद विशेष से कोई सम्बन्ध नहीं मिलता। एक ही छंद में विभिन्न रागों के पद मिलते हैं और एक ही राग में विभिन्न प्रकार के छंद। अत: इस सम्बन्ध में कुछ कहना ही असंभव है कि छंदों और रागों में परस्पर कोई सम्बन्ध है।

कहीं-कहीं पदों में संगीत के वाद्य यंत्रों का भी प्रयोग मिलता है। जिससे कुछ कवियों के संगीत ज्ञान और उनके पद रचना के संगीतात्मक आधार का सहज अनुमान लगाया जा सकता है। कृष्ण भक्त कवियों के पदों में वाद्यों का वर्णन निम्न स्थलों पर मिलता है --

क- कृष्ण जन्मोत्सव

ख- रास, होली

ग- गोवर्धन पूजा

श्रीकृष्ण जन्मोत्सव के बधाई के पदों में मृदंग, पखावज, ताल, निसान आदि वाद्यों का वर्णन आता है। रास, होली और गोवर्धन पूजा के प्रकरण में ताल, मृदंग, मुंहचंग, डफ, मह्वर, बीना, उपंग, रुंज, मुरज, भेरनि, पटह, झांझ, पखावज, संख, मुरली-- आदि वाद्यों का वर्णन मिलता है। इस सम्बन्ध में कुछ उदाहरण दृष्टव्य हैं --

क- विविध भांति बाजत है बाजे, मृदंग उपंग ताल ।[1]

ख- ताल मृदंग झांझ डफ बीना, होरी राग जमायो ।[2]

ग- बाजत ताल मृदंग मौरलिका, वीणा पटह उपंग ।[3]

१- कृष्णदास, स०प्र०सं० १ आ०

२- श्री विट्ठल, ,, ११६ गु०

३- कृपाजीवन ,, १५०३ गु०

घ- कोउ चौवा ले छीरके बनाय, त्यों बाजे ताल मृदंग भाय
बिच बाजत मुंहचुंग मुरली बजाय,कोउ डफ ले मह्वर सु मिलाय ।[१]

ङ- ताल मृदंग उपंग फांफ डफ बाजत बेनु रसाला ।[२]

च- बाजत ताल मृदंग संख धुनि मधुरे मधुरे मुरली कूल कूंजत ।[३]

छ- डफ ताल पखावज बेनु बांसुरी राग रागिनी तान ।[४]

कबीर आदि निर्गुण कवियों और राम-भक्त पदकारों के पदों में वाद्य यंत्रों का उल्लेख उस रूप में नहीं प्राप्त होता जिस रूप में कृष्ण-भक्त कवियों की रचनाओं में मिलता है । इसका कारण कृष्णभक्ति-सम्प्रदायों में अन्य भक्त सम्प्रदायों की अपेक्षा कीर्तन की विधि में संगीत का प्राधान्य प्रतीत होता है । कबीर और गो० तुलसीदास के पदों में यत्र-तत्र वाद्यों का उल्लेख मिल जाता है,जो इस प्रकार है -

क- जंत्री जंत्र अनोपम बाजे, जाको सबद गगन धुन गाजे ।[५]

ख- दास कबीर चढ़े घड़ ऊपर तो जीत नसान बजाई ।[६]

ग- बरषहिं बिबुध निकट कुसुमावली, नभ दुंदभी बजाई ।[७]

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर यह कहा जा सकता है कि आलोच्य पदों में संगीत के साथ राग के अनुरूप एक सुनिश्चित छंद विधान मिलता है । ये छंद बहु -

---

१- कृष्णादास , ह०प्र०सं० २७०३ गु०
२- कृष्णादास , ह०प्र०सं० २७०२ गु०
३- कुंभनदास , ह०प्र०सं० १ म०
४- नंददास , ह०प्र०सं० २७०२ गु०
५- कबीर , ह०प्र०सं० १०००गु०
६- कबीर , ह०प्र०सं० ७१ फा०
७- तुलसीदास, ह०प्र०सं० २ आ०

प्रचलित एवं लोकरुचि के अनुरूप लक्षित होते हैं । छंदों में अधिकतर मात्रिक छंद ही प्रयुक्त हुये हैं । यद्यपि छंद और संगीत की दृष्टि से आलोच्य पदों में कोई भी नवीनता नहीं मिलती फिर भी हिन्दी प्रदेश के छंद रूपों और संगीत के संस्कार को सुरक्षित रखने की दृष्टि से इनका पर्याप्त महत्व है ।

-0-

अध्याय ६

प्राप्त अप्रकाशित पदों की प्रामाणिकता

गुजराती हस्तलिखित पद-संग्रहों में परमानंददास,कृष्णदास,कुंभनदास,और कबीर के कुछ ऐसे पद प्राप्त हुए हैं जो प्रमुख एवं प्रामाणिक प्रकाशित ग्रंथों में नहीं मिलते । नीचे परमानंददास,कृष्णदास,कुंभनदास,और कबीर के अप्रकाशित पदों की वर्ण्यवस्तु एवं मौलिकता का विवेचन किया गया है --

परमानंददास

इनके पद हमें प्रकाशित रूप में मुख्यत: निम्नलिखित ग्रंथों में प्राप्त हो जाते हैं --

परमानंद सागर	--	सम्पा०	श्री व्रजभूषण शर्मा
परमानंद सागर	--	,,	डा० गोवर्धननाथ शुक्ल
कीर्तन संग्रह(तीन भाग)	--	,,	लल्लूभाई छगनलाल देसाई
अष्टछाप परिचय	--	,,	प्रभुदयाल मित्तल

परमानंददास के इन चारों ग्रंथों का सम्पादन विभिन्न स्थानों से उपलब्ध हस्तलिखित पद-संग्रहों के आधार पर किया गया है । आगे उपर्युक्त संकलनों की ऐसी सामग्री का निर्देश किया गया है, जिससे उनके आधार-ग्रंथों की जानकारी प्राप्त हो सकेगी ।

परमानंद सागर (श्री व्रज भूषण शर्मा)

इस ग्रंथ के सम्पादन में विद्याविभाग में संरक्षित परमानंददास सम्बन्धी निम्न काव्य सामग्री का उपयोग किया गया है ।

क- इसकी बंध संख्या ४५,पुस्तक सं० १ है । प्राचीनतम प्रति के नाते इसका महत्व है ।

ख- बंध सं० ५७,पु०सं० ४ है । सुलेख और शुद्ध लिपि के कारण इस प्रति का ` व प्रति से साम्य है । प्रसंग निर्धारण में इससे बहुत सहायता मिली है ।

ग- बंध सं० ५७,पु०सं० ३ है । इसमें समुचित शीर्षकों के साथ अधिकाधिक संख्या में
पदों के संकलन का प्रयास है । प्रति अधिक प्राचीन नहीं है ।

घ- बंध सं० ३६ पु० ४ : अन्य कोई उल्लेख नहीं ।

ङ- १६ : ६ : लगभग ६३ विषय के १००० पद संकलित हैं ।

च- : मथुरेश पुस्तकालय,कांकरोली से प्राप्त ।

छ- : कीर्तनिया छोटूलाल महाबनिया, कांकरोली से ।

ज- : जमुनादास जरीवाला की प्रति ।

क से ज तक की प्रतियां परमानंददास के 'कीर्तन' 'पद' वा 'परमानंद सागर के विभिन्न कालों और लिपियों में लिखित मूल रूप हैं । इनमें भी क,ख,ग प्रतियां सर्वांगीण सम्पादन में अधिक उपयोगी सिद्ध हुई हैं । शेष प्रतियां पाठांतरों के मिलान में काम में आई हैं । पाठभेदों के समावेश के लिए इनके अतिरिक्त अ,आ,इ,ई, से संकेतित कुछ विशिष्ट नित्य,वर्षोत्सव,कीर्तन संग्रहों तथा अन्य भी ग्रन्थ पुस्तकों को आधार माना है । सागरों के अतिरिक्त यावत्प्राय परमानंद रचित पदों के संकलन का प्रयोग सरस्वती भंडार के समग्र कीर्तन-काव्य ग्रन्थों के द्वारा कर लिया है। पद,पंक्ति का भावसाम्य,अथवा परिवर्तन वा रूपांतर का अनुसंधान रखने के लिए अष्टछाप के अन्य कवियों के प्रकाशित अप्रकाशित पदसंग्रह भी दृष्टि में रखे गये हैं । 'सूरसागर '(सभा) को विशेष रूप से उल्लखित किया गया है ।[१]

परमानंद सागर (डा० गोवर्धननाथ शुक्ल)

प्रथम प्रति : परमानंददास जी के कीर्तन हैं । प्रति अपूर्ण है । पद- विषयक्रम से लिखे गये हैं । लगभग ८५० पद हैं । संपादक महोदय ने 'श्री गिरिधर विजयतु' उल्लेख के आधार पर इसका लेखन काल सं० १६४२-१६८० तक माना है ।

द्वितीयप्रति: का नाम परमानंद सागर है । पुस्तक अपूर्ण है । प्रथम प्रति के लिपि साम्य के आधार पर इसका लेखन काल भी १६४२ से १६८० वि० तक स्थिर होता है ।

---

१. परमानंद सागर, प्रका० विद्याविभाग कांकरोली, भूमिका ६०२

तृतीय प्रति : यह प्रति किसी हरिदासी वैष्णव की है। पदों की संख्या ११२१ है। इस प्रति का लेखन समय सं० १८४०-१८५० के मध्य माना गया है।

चतुर्थ प्रति : इसका नाम " परमानंद दास जी " के कीर्तन है। कुल पदों की संख्या ७४१ है। पुस्तक अपूर्ण है। लिपिकाल अज्ञात है।

पंचम प्रति : इसका भी नाम " परमानंददास जी " के कीर्तन है। लेखनकाल का उल्लेख नहीं

इसके अतिरिक्त दो प्रतियां और हैं जिनमें क्रम से ८०० तथा २०० पद हैं। ये प्रतियां १००-१२५ वर्ष पुरानी प्रतीत होती हैं। प्रामाणिकता की दृष्टि से अधिक महत्व नहीं रखती।

नाथद्वारा के महारज श्री के निज पुस्तकालय में चार हस्तलिखित प्रतियां और हैं जिनका विवरण इस प्रकार है :

प्रथम प्रति : परमानंददास जी के कीर्तन। १००० पद हैं और इसका लिपिकाल १८७३ वि० है।

द्वितीय प्रति : परमानंद सागर। ८८३ पद हैं। लगभग १५० वर्ष प्राचीन है। विद्या विभाग की तीसरी प्रति किसी एक मूलप्रति की दो प्रतिलिपियां हैं। महत्वपूर्ण है।

तृतीय-प्रति: परमानंद सागर। ५०० पद संग्रहीत है।

चतुर्थ प्रति : परमानंददास के कीर्तन। ८०० पद हैं। संभवतः १८वीं शताब्दी की है।

पंचम प्रति : ,, ,, । १००० पद हैं। लेखन काल अज्ञात ।

श्री नाथद्वारा और कांकरोली की उपर्युक्त १२ प्रतियों के अतिरिक्त ३ प्रतियों की चर्चा और है, वे क्रम से श्री जवाहर लाल चतुर्वेदी मथुरा, जमुनादास कीर्तनियां, एवं जयपुर वाले श्री रामचन्द्र। इन तीन महानुभावों के पास बतलाई जाती है।

परमानंद सागर की दो और प्रतियां जो लेखक को उपलब्ध हुई हैं वे सम्प्रदाय के मर्मज्ञ विद्वान श्री द्वारकादास परीख के अधिकार में हैं। प्रामाणिकता की दृष्टि से उनमें से एक प्रति भी तो विद्या विभाग की प्रथम दो प्रतियों के उपरांत रखी जानी

चाहिए । इसका सं० १७५४ स्पष्ट दिया हुआ है और दूसरी वर्षा के कारण जीर्ण-शीर्ण हो गई है किन्तु पद संख्या की दृष्टि से इसका बड़ा महत्व है ।

अत: उन्हीं की (परीख जी) दोनों प्रतियों के आधार पर पाठ-भेद देना भी निश्चय करके प्रस्तुत पद संग्रह का कार्य प्रारम्भ किया गया । और क्रम भी उन्हीं के आदेशानुसार । जहां पाठांतर प्रतीत हुआ या इतना पाठ भेद मिला कि पदों में पुनरावृत्ति सी प्रतीत हुई उन्हें परिशिष्ट में रख दिया गया । इस संग्रह का आधार परीख जी वाली दो प्रतियां तथा वर्षोत्सव नित्य कीर्तन संग्रह के तीनों भाग हैं । अत: पाठ भेद उक्त दोनों हस्तलिखित प्रतियों के आधार पर दिया गया है ।[१]

<u>कीर्तन संग्रह</u> (सं० लल्लूभाई छगनलाल देसाई)

कीर्तन संग्रह के सम्पादन का निम्नलिखित आधार बतलाया गया है -

प्रथम भाग १- अनेक प्राचीन हस्तलिखित और मुद्रित ग्रंथों को शुद्ध करके तैयार किया गया है ।

द्वितीय भाग : अत्यन्त प्राचीन हस्तलिखित ग्रंथों से एवं छपी हुई पुस्तकों से तथा महानुभावी भगवद्भक्त श्री व्रजवल्लभ शर्मा और शास्त्री वसंतराम हरिकृष्ण द्वारा शुद्ध कराके प्रस्तुत संकलन प्रसिद्ध किया गया है ।

तृतीय भाग : प्राचीन हस्तलिखित और मुद्रित अनेक ग्रंथों से अनेक महानुभावों द्वारा तथा काठियावाड़,गुजरात और व्रजभूमि से प्राप्त सामग्री के आधार पर,कीर्तन का यह अनुपम ग्रंथ तैयार किया गया है ।[२]

<u>अष्टछाप परिचय</u> (प्रभुदयाल मित्तल)

" ये समस्त पद दुष्प्राप्य हस्तलिखित प्रतियों से संग्रहीत एवं वंश परम्परागत कीर्तनकारों से प्राप्त किए गए हैं ।[३]

१- भूमिका पृ० १२- १५

२- पृष्ठ १

३- भूमिका पृ० घ

कीर्तन संग्रह को छोड़कर दोनों परमानंद सागर का सम्पादन कांकरोली तथा नाथद्वारा के हस्तलिखित संग्रहालय के ही आधार पर हुआ है । इन दोनों संग्रहों में गुजराती हस्तलिखित प्रतियों का कोई उपयोग नहीं लक्षित होता है और न कहीं इसका उल्लेख ही हुआ है । केवल अहमदाबाद से प्रकाशित कीर्तन संग्रह में इस बात का निर्देश अवश्य किया गया है कि उसका सम्पादन गुजरात,काठियावाड़,तथा व्रज से प्राप्त विभिन्न हस्तलिखित प्रतियों के आधार पर हुआ है किन्तु उसमें कितना अंश गुजराती प्रतियों का है यह सम्पादक के व्यक्तव्य से अथवा पदों के अध्ययन से स्पष्ट नहीं होता ।

प्रकाशित संस्करणों की तुलना में विषय-वस्तु का अंतर

गुजराती हस्तलिखित पद-संग्रहों में प्राप्त परमानंददास के अधिकांश पद प्रकाशित ग्रंथों में समान रूप से मिल जाते हैं । कुछ में सामान्य अंतर भी हैं जिनका अध्ययन अध्याय ६ में प्रस्तुत किया गया है, किन्तु १४ पद ऐसे प्राप्त हुए हैं जो किसी भी ज्ञात प्रकाशित संस्करण में नहीं मिलते । इन पदों का विषयानुसार वर्गीकरण इस प्रकार किया गया है -

१- गोचारण	२- कलेऊ	३-यशोदा भाग्य की सराहना
४- दीपमालिका	५-रक्षा-बंधन	६-पवित्रा
७- वर्षा	८-प्रेम	९०-चेतावनी
१०- कृष्ण महिमा	११-शरणागति	१२- कुबजा के प्रति गोपियों की उलाहना
१३- रामनवमी	१४- तिथियों के आधार पर राधा की विभिन्न लीलाओं का वर्णन	

गोचारण -- इस पद की कथावस्तु प्रकाशित पदों की तुलना में कुछ विभिन्नता रखती है । इसके अन्तर्गत कृष्ण द्वार-द्वार पर टेर लगाकर खोई हुई गाय का पता पूछते हैं । प्रकाशित पदों में कृष्ण गऊएं चराते हैं और वहीं अपनी गायों को टेर कर बुलाते हैं ।

कलेऊ -- इस पद में यशोदा कृष्ण से कलेऊ के लिए कहती हैं । नाना प्रकार के खाद्य -पदार्थों का रोचक वर्णन प्रस्तुत करने के उपरांत कृष्ण के फाग खेलने का विचार करना वर्णित है और इसके लिए श्री कृष्ण अपनी फेंट में अबीर,गुलाल आदि भरे हैं । जहां तक परमानंददास के कलेऊ के अन्य प्रकाशित पदों की कथावस्तु से संबंध है , इस प्रकार कृष्ण के फाग खेलने का कोई भी पद नहीं प्राप्त होता । उन पदों में केवल यशोदा द्वारा कृष्ण को कलेऊ के लिए कहना तथा विभिन्न प्रकार के पदार्थों का ही वर्णन प्राप्त होता है । अतएव इस पद की अंतिम तीनों पंक्तियां प्रकाशित पदों से असमानता एवं वैशिष्ट रखती हैं । पद की भाषा,विषय,आदि से तो ऐसा निश्चित प्रतीत होता है कि यह पद परमानंददास का ही है । किसी कारण से हिन्दी कृष्ण-काव्य-धारा में अपरिचित रह गया प्रतीत होता है ।कारण कृष्णदास का भी एक पद[1] इसी पद के पश्चात प्राप्त होता है,जिसकी कथावस्तु परमानंददास के उपरोक्त पद से पर्याप्त समानता रखती है ।

रक्षा बंधन-- इस पद की वर्ण्य-वस्तु प्रकाशित पदों की तुलना में कुछ भिन्न है । प्रकाशित पदों में कृष्ण को माता यशोदा और गर्ग मुनि द्वारा राखी बांधने का और बहन तथा फूफी द्वारा बलैया लेने का ही वर्णन मिलता है किन्तु इस पद में बहन सुभद्रा स्वयं कंचन थाल सजा कर लाती हैं और कृष्ण को तिलक करती हैं । अप्रकाशित पद में सुभद्रा का राखी बांधना प्रकाशित पद के वर्णन से अधिक स्वाभाविक प्रतीत होता है । ऐसा कदाचित् रक्षाबंधन की सामाजिक रीति के अनुरूप हुआ है ।

गोपी प्रेम -- इस पद की कथावस्तु भी प्रकाशित पदों की तुलना में भिन्न है । प्रकाशित पदों में जहां प्रेम या आसक्ति का वर्णन कवि करता है तो पूरे पद में एक ही विचारधारा का प्रवाह रहता है किन्तु इस पद की एक बड़ी भिन्नता इस बात में है कि प्रारम्भ में जहां कवि प्रेम का वर्णन प्रस्तुत करता है वहीं अंत में दो पंक्तियों के द्वारा उपदेश वृत्ति का प्रयोग करता हुआ कहता है , कि जो कृष्ण के सम्मुख नहीं है वह कुलहीन है । इस आधार पर यह संभव लगता है कि यह पद किन्हीं दो भिन्न पदों का सम्मिलित रूप है ।

---

१. परिशिष्ट, पद सं० १८.

कृष्ण महिमा-- विषय की दृष्टि से इस प्रकार का एक भी पद प्रकाशित ग्रंथों में नहीं प्राप्त होता ।

पद संख्या १४ परमानंददास के सभी प्रकाशित पदों की तुलना में एक नवीन कथावस्तु उपस्थित करता है । पद में तिथियों के आधार पर कृष्ण-राधा का वर्णन तथा उसके पश्चात होली तथा नंद-यशोदा द्वारा दान देने का प्रसंग है ।

उपरोक्त पदों के अतिरिक्त अन्य सभी पदों की वर्ण्य-वस्तु प्रकाशित पदों की वर्ण्य-वस्तु से पर्याप्त समानता रखती है ।

कृष्णादास

कृष्णादास के पद प्रकाशित रूप में हमें मुख्यत: निम्नलिखित ग्रंथों में मिल जाते हैं -

१- कृष्णादास (पद-संग्रह) - सम्पा० श्री व्रज भूषण शर्मा
२- कीर्तन संग्रह - ,, लल्लूभाई छगनलाल देसाई
३- अष्टछाप परिचय - ,, श्री प्रभुदयाल मित्तल

इन चारों ग्रंथों का सम्पादन विभिन्न स्थानों से उपलब्ध हस्तलिखित पद-संग्रहों के आधार पर हुआ है । संख्या २,३ के सम्पादन के आधार के सम्बन्ध में हम पीछे उल्लेख कर चुके हैं । यहां पर केवल संख्या १ का ही उल्लेख करेंगे, जिससे यह ज्ञात हो सके कि उसके सम्पादन का मुख्य आधार क्या है । इसी पुस्तक की भूमिका पृ० ५ पर विभिन्न हस्तलिखित प्रतियों का उल्लेख इस प्रकार किया गया है -

क	संज्ञक	हिन्दी बंध	८१	पुस्तक	संख्या	३
ख	,,	,,	३६	,,	,,	१३
ग	,,	,,	५१	,,	,,	४
घ	,,	,,	१४६	,,	,,	३

इसके पश्चात केवल \` क \` \` ख \` प्रति का ही पूर्ण विवरण प्रस्तुत किया गया है । स्पष्ट है इस संकलन में \` गुजराती लिपि \` की हस्तलिखित प्रति कोई का उपयोग नहीं हुआ है ।

प्रकाशित संस्करणों की तुलना में विषय वस्तु का अंतर

गुजराती हस्तलिखित पद संग्रहों में प्राप्त कृष्णदास के पद अधिकांश रूप में उपलब्ध प्रकाशित ग्रंथों में मिल जाते हैं किन्तु सात पद ऐसे प्राप्त हुए हैं जो प्रकाशित ग्रंथों में नहीं मिलते। इन पदों में निम्न विषयों का वर्णन हुआ है -

१- प्रेमासक्ति

२- पवित्रां

३- कलेऊ

४- वसतं

५,७,८, हिंडोरा

६- भोजन

प्रेमासक्ति -- इस पद में क्रिया चतुर नायिका का वर्णन है। क्रिया चतुर नायिका से तात्पर्य उस नायिका से है जो क्रिया की चतुराई से अपना मनोरथ सिद्ध करती है।[1] प्रकाशित ग्रंथों में जितने भी पद प्राप्त होते हैं उनमें से किसी में भी ऐसी नायिका का चित्रण नहीं मिलता। प्रकाशित पदों की तुलना में यह पद एक नवीन कथावस्तु को प्रस्तुत करता है।

कलेऊ, -- इस पद में कृष्ण के कलेऊ करने का रोचक वर्णन मिलता है। कृष्ण नाना प्रकार के मिष्ठान आदि खाते हैं और पश्चात बलराम के साथ फाग क खेलने की बात करते हैं। कृष्णदास के जितने भी कलेऊ के पद प्राप्त होते हैं उनकी कथा-लगभग एक समान ही है, किन्तु इस पद में फाग का जो वर्णन किया गया है वह पूरे पद को अन्य पदों से पृथक कर देता है। प्रकाशित पदों में इस प्रकार का एक भी पद कलेऊ का नहीं प्राप्त होता जिसके अंत में फाग का वर्णन हो। ऐसा ही एक पद परमानंद का भी प्राप्त होता है जिसका निर्देश पीछे किया जा चुका है। यदि इसे कलेऊ का पद न मानकर होली का भी माना जाय तो होली के पदों से भी इसकी वस्तुगत संगति नहीं बैठती।

वसंत -- विषय की दृष्टि से यह पद महत्वपूर्ण है जिसमें गो० विट्ठलनाथ जी के होली खेलने का वर्णन है। इसमें उनके ६ पुत्रों तथा अष्टछाप के ~~कुंभनदास और गोविंददास को छोड़कर अन्य सभी~~ कवियों का उल्लेख हुआ है जो होली के खेल में विभिन्न प्रकार से योग देते हैं। प्रकाशित संग्रहों में होली या वसंत के जितने भी पद प्राप्त होते हैं उनमें एक भी ऐसा पद नहीं मिलता जिसमें इस प्रकार का वर्णन हो। अत: विषय की दृष्टि से इस पद में एक नवीन प्रसंग की उद्भावना हुई है।

भोजन -- गुजराती मिश्रित इस पद में कृष्ण के भोजन करने का वर्णन हुआ है। कवि ने कृष्ण के भोजन के लिए नाना प्रकार के खाद्य पदार्थों के नाम गिनाएं हैं, जिनमें कुछ गुजराती व्यंजन भी सम्मिलित हैं। कृष्णदास के गुजराती होने के कारण यह संभव ही है कि उनके पदों में गुजराती के शब्द प्रयुक्त हों। इस प्रकार का मिश्रित पद प्रकाशित संग्रहों में नहीं प्राप्त होता।

दो, पांच, सात और आठ संख्यक पदों की कथावस्तु प्रकाशित संग्रहों में प्राप्त पदों की कथावस्तु से समानता रखती है और उसमें उपरोक्त प्रकार का कोई भी महत्वपूर्ण अन्तर नहीं प्राप्त होता।

कुंभनदास

कुंभनदास के पद हमें प्रकाशित रूप में निम्नलिखित ग्रंथों में मिलते हैं -

१- कुंभनदास(जीवनी-पद-संग्रह और भावार्थ) -- सम्पा० श्री व्रजभूषण शर्मा
२-कीर्तन संग्रह (तीन भाग) - ,, देसाई
३-अष्टछाप परिचय - ,, मित्तल

इन तीनों ग्रंथों का सम्पादन विभिन्न स्थानों से उपलब्ध हस्तलिखित पद-संग्रहों के आधार पर हुआ है। संख्या २,३ के सम्पादन के आधार के सम्बन्ध में हम पीछे उल्लेख कर चुके हैं। यहां पर केवल संख्या १ का ही विस्तृत उल्लेख प्रस्तुत करेंगे कि उसके सम्पादन का मुख्य आधार क्या है। आगे हम उसी पुस्तक के सम्पादक द्वारा प्रस्तुत हस्तलिखित प्रतियों का विवरण, जिसके आधार पर उपर्युक्त पुस्तक का सम्पादन हुआ,[१] यहां प्रस्तुत करते हैं --

---

१. पृ० ४-६

कुंभनदास -- कुंभनदास के पद सम्पादनार्थ कांकरौली के सरस्वती भंडार में ही इतनी सामग्री मिल गई है, जिससे अन्यत्र की प्रतियों की अपेक्षा ही नहीं हुई। कुंभनदास जैसे महानुभावी, मानसी-सेवा पारायण भक्त कवि की पद रचना का इतना विस्तृत आधिक्य भी तो नहीं है जो हमें इस दिशा में अधिक प्रोत्साहित करता। फलत: प्रस्तुत सम्पादन में जिन आदर्श प्रतियों का उपयोग किया गया, उनका परिचय इस प्रकार है -

१- `क` प्रति -- यह प्रति सरस्वती भंडार के हिन्दी विभाग में बंध संख्या ६१।७ पर विद्यमान है। इसमें पत्र १ से ८७ तक पत्रों में कुंभनदास कृत पद हैं और बाद में ८७ से १२२ ता नन्ददास कृत, पत्र १२२ से २२५ तक अन्य के पद संगृहीत है। ---- इसमें संगृहीत पदों की एकत्र संख्या १६० है। पदों के प्रारम्भ में रागों के नाम दिये गये हैं। वर्षोत्सव या नित्यलीला के पदों का कोई विभाग नहीं है।

२-`ख` प्रति-- यह प्रति सरस्वती भंडार के हिन्दी विभाग में बंध संख्या १०।६ पर विद्यमान है। इसमें पत्र १६१ से १६५ तक कुंभनदास कृत पदों का उल्लेख है। मध्य में १६२वां पत्र अनुपलब्ध है और १६३, १६७, १७०, १७६, १८०, १८६, १८८, १६६, यह आठ पत्र खाली हैं (केवल पृष्ठांक डले हुए हैं)। इसमें बाललीला से प्रारंभ कर द्वितीय अवस्था (विरह) तक २३ विषयों में १५६ पद लिखे मिलते हैं।

इसके अतिरिक्त ३६ अन्य प्रतियों का उपयोग किया गया हैं किन्तु उनका कोई विवरण नहीं दिया गया है। मात्र संख्याओं का उल्लेख कर दिया गया है। इन के साथ ही बहादुरपुर (संखेडा गुजरात) गोवर्द्धननाथ जी के कीर्तन सेवाकार, श्री छगनभाई तथा सेठ श्री पुरुषोत्तम दास जी से भी प्राप्त पदों की सहायता प्रस्तुत संस्करण के सम्पादन में ली गई है।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि इस संग्रह में गुजराती हस्तलिखित प्रतियों का कोई भी उपयोग नहीं किया गया है।

प्रकाशित संस्करणों की तुलना में विषय वस्तु का अंतर

गुजराती हस्तलिखित पद-संग्रहों में कुंभनदास के प्राप्त अधिकांश पद प्रकाशित ग्रंथो में मिल जाते हैं किन्तु कुछ पद, जिनकी संख्या चार है, ऐसे भी प्राप्त हुए हैं जो

प्रकाशित रूप में अनुपलब्ध है । इन सभी पदों का विषयानुसार वर्गीकरण इस प्रकार किया जा सकता है --

१- कृष्ण शोभा
२- गोवर्धन धारण
३- मिश्रित पद
४- हिंडोरा

उपर्युक्त सभी पदों की विषय वस्तु प्रकाशित पदों से पर्याप्त समानता रखती है ।

कबीर

कबीर के पद हमें प्रकाशित रूप में मुख्यत: निम्नलिखित ग्रंथो में प्राप्त होते हैं --

१- कबीर ग्रंथावली -- प्रका० नागरी प्रचारणी सभा
२- गुरु ग्रंथ साह्ब या उस पर आधारित संत कबीर (डा० रामकुमार वर्मा)
३- शब्दावली -- बेलवेडियर प्रेस और कबीर चौरा
४- बीजक
५- कबीर ग्रंथावली -- सम्पा० डा० पारस नाथ तिवारी

कबीरदास के इन पांचो ग्रंथों का सम्पादन विभिन्न स्थानों से उपलब्ध हस्तलिखित प्रतियों के आधार पर हुआ है । आगे हम इन सभी पुस्तकों के सम्पादन का मुख्य आधार क्या है, का वर्णन प्रस्तुत कर रहे हैं --

कबीर ग्रंथावली (सभा)

इसके सम्पादन में मुख्यत: दो हस्तलिखित प्रतियों का उपयोग किया गया है जिनमें से प्रथम प्रति सं० १५६१ की कही जाती है और दूसरी सं० १८८१ की है ।

गुरु ग्रंथ साहब -- श्री गुरु ग्रंथ साहब के सम्पादन का मुख्य आधार सं० १६६१ वि० की एक प्रति है। अब तक इसके पांच संस्करण प्रकाशित हो चुके हैं। बाद में इसी के पाठ के आधार पर " संत कबीर " नाम से डा० रामकुमार वर्मा ने भी एक संग्रह प्रकाशित करवाया ।

शब्दावली -- अनेक प्रतियों के आधार पर इनका संकलन हुआ है। किन्तु उनका कोई उल्लेख भूमिका में नहीं मिलता। इन संग्रहों में किसी प्रकार भी आलोचक दृष्टि का उपयोग नहीं किया गया है। सामान्य रूप से इन्हें संकलन मात्र कहा जा सकता है।

बीजक -- बीजक के लगभग ३०-३२ संस्करण मिलते हैं। इनमें आपस में बहुत अधिक अन्तर भी नहीं है। किन्तु वे जिन प्रतियों पर आधारित हैं उनका लिपिकाल १६वीं शताब्दी विक्रमी के पूर्व नहीं हैं। बीजक की मुख्यत: तीन परम्पराएं मिलती हैं -- कबीर चौरा, भगताई शाखा, और फतुहा परम्परा। इनमें भगताई शाखा का बीजक प्राचीन संभव ज्ञात होता है।

कबीर ग्रंथावली -- डा० पारसनाथ तिवारी द्वारा संपादित इस कबीर ग्रंथावली का सम्पादन पाठालोचन के सिद्धान्तों और नियमों के आधार पर हुआ है। ग्रंथावली के सम्पादन का मुख्य आधार कौन सी हस्तलिखित प्रतियां हैं उनका उल्लेख ग्रंथावली के भूमिका पृ० ५३ पर इस प्रकार किया गया है --

" इस प्रकार कबीर के नाम से प्रचलित प्रतियों की बड़ी संख्या में से पांच प्रतियां दादू पंथी शाखा की, एक प्रति निरंजनी शाखा की, एक गुरु ग्रंथ की, दो बीजक की, दो शब्दावलियों की, तीन साखियों की, एक सर्बंगी की, एक गुणगंजनामा की, और एक आचार्य सेन की (आंशिक रूप में) अर्थात ६ शाखाओं की, कुल १७ प्रतियां ही ऐसी हैं, जिनका विस्तृत तुलनात्मक अध्ययन किया गया है और इन्हीं के आधार पर प्रस्तुत ग्रंथ में कबीर की वाणियों का यथासम्भव प्राचीनतम और प्रामाणिक पाठ निर्धारित करने का प्रयत्न किया गया है ।"

उपर्युक्त विवरण से यह स्थिति अधिक स्पष्ट हो जाती है कि इन सम्पादनों में गुजरात से प्राप्त किसी भी गुजराती हस्तलिखित प्रति का उपयोग नहीं किया गया है।

गुजराती हस्तलिखित पद-संग्रहों में कबीर के अधिकांश प्राप्त पद उपलब्ध प्रकाशित ग्रंथों में समान रूप से मिल जाते हैं, कुछ में सामान्य अन्तर भी मिलते हैं, जिनका उल्लेख अध्याय ८ में किया गया है किन्तु इसी के साथ कुछ पद, जिनकी संख्या १४ है, ऐसे प्राप्त हुए हैं, जो किसी भी प्रकाशित ग्रंथ में नहीं मिलते। इन सभी पदों की वर्ण्यवस्तु इस प्रकार है --

१- यह चेतावनी का एक आध्यात्मिक पद है। जिसमें व्यक्ति के अंतिम समय का वर्णन किया गया है।

२- इस पद में शून्य साधना के विषय में कहा गया है। प्रथन तो नेत्र मूंद कर ध्यान, और ध्यान भी शून्य का और उस शून्य के ध्यान में नवनिधि की प्राप्ति। कबीर के अन्य पदों में भी इस शून्य साधना का वर्णन मिलता है। पद की अंतिम पंक्ति में नवनिधि शब्द दृष्टव्य है। कबीर ने नवधाभक्ति का यदि खंडन नहीं किया है तो उसका कहीं मंडन भी नहीं किया है। अत: ऐसा संभव लगता है कि किसी प्रक्षेप या अन्य किसी मिश्रण के कारण इस शब्द का समावेश इस पद में हो गया।

३- इस पद की विषय वस्तु सूरदास के एक पद, " प्रीति कर काहू सुख न लह्यो " से समानता रखती है। कबीर के अन्य प्राप्त प्रकाशित पदों में इस प्रकार की विचारधारा नहीं मिलती। वस्तुत: कबीर ने प्रेम का कहीं तिरस्कार नहीं किया है। वे प्रेम के पक्ष में ही बोलते हैं - " यह घर है प्रेम का खाला का घर नाहिं।

४- चौथे पद में ज्ञानांजन का वर्णन किया गया है। इस पद की प्रत्येक पंक्ति अपने भाव में स्वतन्त्र है। ऐसा जान पड़ता है कि प्रत्येक पंक्ति एक दूसरे पद की है, किन्तु कालान्तर में पदों की मौखिक परम्परा होने के कारण बाद में विभिन्न पदों की विभिन्न पंक्तियां इस रूप में संग्रहीत हो गई हैं। क्योंकि प्रथम द्विपदी में गुरु का माहात्म्य है। वही सच्चा ज्ञान देने वाला है। चौथी पंक्ति में संशय और दुविधा के नाश का रूपक है और अंतिम में राम से एक से एक होकर मिलने का है।

५- पांचवे पद में इस नश्वर संसार में उस अनश्वर परमात्मा के विषय में किससे पूछा

जाय, का वर्णन किया गया है ।

६- छठे पद में संसार की नश्वरता को दिखलाते हुए विभिन्न धर्मों के वाह्याचारों में मिथ्या अन्तर और इन सब नश्वर वस्तुओं के लिए राम नाम स्मरण ही परमार्थ है , का वर्णन किया गया है । इसी शब्दावली और इसी प्रकार की वर्ण्यवस्तु के कबीर के अनेक पद प्राप्त होते हैं ।

७- सातवें पद में सुरत निरत साधना और उसके द्वारा एक में अनेक का दर्शन का वर्णन किया गया है । इस पद की तीसरी, चौथी, छठी और आठवी पंक्तियां इसी रूप में अन्य पदों में भी मिलती हैं तथापि इसी विषय वस्तु के कबीर के अन्य पद भी मिलते हैं, किन्तु शब्दावली में पर्याप्त अन्तर मिलता है ।

८- आठवें पद में विरह वाण के कारण उत्पन्न हुई बैचेनी का वर्णन किया गया है । कबीर के अन्य पदों तथा साखियों में भी ऐसा वर्णन मिलता है । सुरत रूपी कमान से शब्द रूपी तीर मारा गया है जिसका फलका शरीर में विध जाता है और वह पूरे शरीर को कष्ट देते हुए भी बाहर से नहीं दिखलाई पड़ता ।

९- नवें पद में प्रेम भक्ति का वर्णन किया गया है । पद की दो एक पंक्तियों में मिलने वाला रूपक अन्यत्र भी मिलता है किन्तु वर्ण्यवस्तु और शब्दावली की दृष्टि से यह पद नवीन है , अन्यत्र नहीं प्राप्त होता ।

१०-यह चेतावनी का पद है जिसमें धर्मान्धता का वर्णन है और विशेषकर ब्राह्मणों के लिए कहा गया है । धर्म के वाह्यांडम्बरों में पड़कर असली तत्व का लोप हो जाना और केवल कथनी में ही पड़कर करनी को भुला देने का उल्लेख किया गया है।

११-इस पद में चित्त की शुद्धता और हृदय की सरलता पर विशेष जोर दिया गया है । परमात्मा को द्रवित करने के लिए आडम्बर की आवश्यकता नहीं है । उसे प्राप्त करने के लिए तो अपने को मिटाना ही पड़ेगा ।

१२-यह उलटवांसी का पद है जिसमें माया और ममता को गुरु ज्ञान के अस्त्र द्वारा नाश करने का वर्णन किया गया है । नारी को माया के रूप में चित्रित किया गया है । कबीर के अन्य पदों में भी इसी प्रकार नारी को माया के रूप में चित्रित किया गया है ।

१३- इस पद में काया रूपी गढ़ पर अधिकार करने का विषय लेकर एक आध्यात्मिक रूपक बांधा गया है । ज्ञान और भक्ति के द्वारा ही ब इन्द्रियों को वश में किया जा सकता है । कबीर के अन्य पदों में भी इस प्रकार के रूपक मिलते हैं ।

१४- यह पद कृषि का एक रूपक है, जिसमें धीरज धरती, योग युक्ति हलवाया, और हरिनाम रूपी बीज, चैतन्य आत्मा रखवाला, जहां इस रूप में खेती होती है वहां काल दुकाल का कोई डर नहीं रहता । इस प्रकार के रूपक कबीर के अन्य पदों में मिलते हैं ।

विषय के अनुसार उपर्युक्त पदों पर विचार कर लेने के पश्चात यह निश्चित सा ही हो जाता है कि ये सारे पद कबीर कृत ही हैं । किसी प्रकार गुजराती परम्परा में सुरक्षित रह गये जब कि हिन्दी परम्परा में उनका लोप हो गया या उनका संकलन ही नहीं किया किया गया ।

उपर्युक्त कवियों के पद उपलब्ध प्रकाशित ग्रंथों में नहीं प्राप्त होते तथा इस बात की भी अधिक संभावना नहीं है कि किसी अन्य पाठ-भेद से या किसी अन्य रूप में कहीं प्राप्त हो जाएं । जहां तक मुझे प्रतीत होता है इन रूपों में ये पद नहीं प्राप्त होते । यह भी असंभव नहीं है कि ये पद किसी अन्य हस्तलिखित प्रति में मिल जाएं । कबीर के कुछ पद निरंजनी सम्प्रदाय की एक हस्तलिखित प्रति में कुछ सामान्य अन्तर से प्राप्त हो जाते हैं ।[१] विषय की दृष्टि से प्राप्त पदों में कुछ पद विशेष महत्वपूर्ण हैं । यथा परमानंददास के पद सं० १,२,५,८,१०,१४ , कृष्णदास के १,३,४,६ तथा कबीर के ३,६, दृष्टव्य हैं । इन पदों की वर्ण्यवस्तु प्रकाशित पदों की वर्ण्यवस्तु से पर्याप्त अन्तर रखती है । अत: ऐसा संभव लगता है कि ये पद, जब कि हिन्दी धारा में अपरिचित ही रहे,गुजरात में इनकी परम्परा अक्षुण्ण बनी रही और उसमें हस्तक्षेप कम हुआ । सम्प्रदायों में प्राय: देशकाल की आवश्यकतानुसार अपने साहित्य में परिवर्तन होता रहता है जबकि दूर देश में सुरक्षित उसी साहित्य में इस प्रकार के

१- यह हस्तलिखित प्रति डा० पारसनाथ तिवारी,प्राध्यापक,हिन्दी विभाग, विश्वविद्यालय, प्रयाग के निजी संग्रह में है ।

हस्तक्षेपों की गुंजाइश कम ही रहती है । इसलिए संभव है कि परम्पराओं के अध्ययन की दृष्टि से ऐसी सामग्री महत्वपूर्ण ह सिद्ध हो । कुछ रचनाएं ऐसी भी हो सकती हैं जिनकी ओर सम्बद्ध सम्प्रदायों में विशेष आवश्यकता न पड़ने के कारण ध्यान न दिया गया हो । अत: संभव है धीरे-धीरे वे अपने मूल स्थान से तिरोहित हो गई हों तथा किसी दूरस्थ प्रदेश में आश्चर्यजनक रूप से उनकी सुरक्षा होती रही हो । मेरी निश्चित धारणा है कि गुजरात में इस दृष्टि से हिन्दी प्रदेश के कवियों की रचनाएं या उनकी परम्पराएं सुरक्षित रह सकी हैं । इसलिए हमने परिशिष्ट में विभिन्न कवियों के ऐसे पद संकलित कर दिए हैं, जो मुद्रित संस्करणों में नहीं प्राप्त होते ।

-0-

अध्याय १०

नवोपलब्ध पदों का साहित्यिक सौष्ठव

गुजराती हस्तलिखित पद-संग्रहों में प्राप्त पदकारों के काव्य-सृजन की मूल प्रेरणा भक्ति-भावना रही है किन्तु अपवादों को छोड़कर उनके सभी पदों का उद्देश्य सम्प्रदाय प्रचार एवं साम्प्रदायिक भावधारा की विवृति ही प्रतीत होता है। गुजरात में आलोच्य पदकारों के जो पद पहुंचे वे अधिकतर उनके वास्तविक कवित्व को उद्घाटित नहीं करते और न ही कलात्मक दृष्टि से, ऐसे पद उत्कृष्ट कहे जा सकते हैं। सूरदास और मीरां आदि महत्वपूर्ण कवियों के पद अपवाद प्रस्तुत करते हैं। अधिकांश पद साम्प्रदायिक उत्सवों से सम्बद्ध होने के कारण मुख्य रूप से वस्तु एवं भाव तत्व का रूढ़ तथा सामान्य रूप प्रस्तुत करते हैं। उनका कोई अनुभूतिगत विशेष काव्यात्मक प्रयोजन लक्षित नहीं होता। प्रचार एवं साम्प्रदायिक उपासना तथा कीर्तन की प्रेरणा से रचे जाने के कारण उनमें कला-पक्ष की शिथिलता मिलना, एक सीमा तक स्वाभाविक भी प्रतीत होता है। अस्तु आलोच्य पद साहित्यिक दृष्टि से सम्पन्न नहीं है। ये पद अपने प्रणेताओं के वास्तविक कवि-व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति करने में असमर्थ हैं, अत: केवल आलोच्य पदों के आधार पर हम पदकारों के कवि रूप का सम्यक मूल्यांकन नहीं कर सकते।

गुजरात में कृष्ण लीला परक जो पद पहुंचे वे सभी वात्सल्य और माधुर्य भावों से सम्बद्ध हैं। भागवत का कृष्णचरित गुजरात में कृष्ण-भक्ति सम्प्रदायों की उपासना पद्धति से युक्त होकर ही प्रचारित हुआ। इसीलिए परमानंददास, कृष्णदास और कुंभनदास के इन्हीं भावों से सम्बद्ध लीला परक पद गुजरात में लोकप्रिय हुए। अलौकिक कृष्ण लीलाओं से सम्बंधित पद अपनी वर्णनात्मक प्रकृति एवं कृष्ण के लोकोत्तर रूप की अतिशयतापरक दुरुह व्यंजना के कारण वहां लोकप्रियता न प्राप्त कर सके। इस प्रकार के पदों का कोई साम्प्रदायिक प्रयोजन भी नहीं लक्षित होता। अत: उत्सवों में ऐसे पदों की उपादेयता का अभाव, उनके गुजरात में न प्रचारित होने का मूल कारण ज्ञात होता है।

अलौकिक लीलाओं में गोवर्धन लीला ही एक मात्र ऐसी है जिससे सम्बंधित पद गुजराती हस्तलिखित प्रतियों में प्राप्त होते हैं। इसका कारण ब्रज से लेकर गुजरात

तक गोवर्धन पूजा का लोक प्रचलित विधान प्रतीत होता है । वल्लभ सम्प्रदाय में गिरिराज गोवर्धन का अत्यन्त महत्व है । वह कृष्ण स्वरूप है । इसीलिए गोवर्धन की पूजा, उपासना वल्लभ सम्प्रदाय में विशेष मान्य हुई । वल्लभ सम्प्रदाय के कवियों ने भी गोवर्धनोत्सव के पद प्रचुर मात्रा में लिखे । गुजरात में वल्लभ सम्प्रदाय के अधिकतर उत्सव विषयक पद ही प्रचार के माध्यम हुए ।

लीला स्थल की दृष्टि से आलोच्य कृष्ण भक्त कवियों के पदों की वर्ण्य-वस्तु, गोकुल और वृन्दावन की लीलाओं से ही विशेष सम्बद्ध है । मथुरा-लीला के अन्तर्गत केवल भ्रमरगीत से सम्बंधित कुछ ही पद अपवाद रूप में प्राप्त होते हैं । द्वारका-लीला की वस्तु का इन पदों में सर्वथा अभाव मिलता है । यह आश्चर्य का विषय है कि गुजरात में प्रदेश में द्वारका की स्थिति होते हुए भी वहाँ द्वारका-लीला, सुदामा-चरित, और रुक्मिणी-हरण जैसे रोचक एवं भक्ति-भाव की अभिव्यक्ति करने वाले प्रसंग हिन्दी पद साहित्य के माध्यम से लोकप्रिय न हो सके । ऐसा प्रतीत होता है कि वल्लभ सम्प्रदाय की वात्सल्य एवं माधुर्य भावमूलक उपासना-पद्धति , कृष्ण के ऐश्वर्य-परक रूप की तुलना में हिन्दी प्रदेश के समान ही गुजरात में भी लोक मन को आकृष्ट करने में अपेक्षाकृत अधिक सफल हुई । राधा-कृष्ण की प्रेम लक्षणा भक्ति को गुजरात में भी प्रसार करने में पर्याप्त लोकप्रियता मिली । उसकी तुलना में कृष्ण का ऐश्वर्य रूप हिन्दी पदकारों के मन को आकृष्ट करने में सफल नहीं हो सका ।

परमानंददास

परमानंददास अष्टछाप के कवियों में श्रेष्ठ माने जाते हैं । उनके पद कृष्णलीला के विविध प्रसंगों पर आधारित हैं । परमानंददास के पदों में भक्त की सामान्य अभिव्यक्ति के साथ वल्लभ सम्प्रदाय की उपासना पद्धति का भी निरुपण हुआ है । गुजरात में परमानंददास के जो पद पहुँचे , वे भी प्राय: उन्हीं विषयों से सम्बद्ध हैं । अप्रकाशित रूप में प्राप्त पद परमानंददास के कवि रूप का पूर्ण परिचय नहीं देते । वे काव्य-दृष्टि से सामान्य कोटि के हैं तथा उनके आधार पर परमानंददास की काव्य-प्रतिभा का सम्यक् निरूपण सम्भव नहीं प्रतीत होता ।

ऐसा प्रतीत होता है कि काव्य दृष्टि से उत्कृष्ट पद गुजराती संकलनकर्ताओं के आकर्षण के विषय नहीं बने । इन पदों में जिन प्रसंगों की अभिव्यक्ति हुई है,उनमें गौचारण,कलेऊ,बाललीला,दीपमालिका,पवित्रा,वर्षा,रक्षा-बंधन,गोपी प्रेम आदि उल्लेखनीय हैं । यह सभी पद वर्णनात्मक होते हुए भी प्रतिपाद्य की अपनी प्रकृति के अनुरूप कृष्ण लीला के खंडित प्रसंगों की उद्भावना ही करते हैं । इन पदों में परमानंददास की दृष्टि कलात्मक नहीं लक्षित होती । आलोच्य पद नित्य लीला तथा उत्सव मूलक होने के कारण अनुभूत की उत्कृष्ट अभिव्यंजना नहीं करते । फिर भी कहीं-कहीं रूप-चित्रण एवं भक्ति भाव की अभिव्यक्ति के लिए सादृश्यमूलक ,उपमा उत्प्रेक्षा,रूपक आदि अलंकारों के प्रयोग अपवाद रूप में मिल जाते हैं --

१- मन मधुकर कियों वारे ते, चरण कमल में ठाऊं ।[१]

२- चितवत कउसल्या मुख चंद
बार बार बिधु बदन बिलोकत रोम रोम आनंद ।[२]

वर्ण्य को प्रभावंजक बनाने के लिए कहीं-कहीं इन पदों में मुहावरों और लोकोक्तियों का भी प्रयोग मिल जाता है जो उनकी लोकप्रियता का एक प्रमुख कारण हो सकता है -

१- दीजे बन माहें कल न परत है कहत ही कुंअर कन्हैया ।[३]

२- जायो पूत सपूत पनोती कुल दीपक उज्वारौ ।[४]

३- ये संगी सब दिवस चार के धन दारा सुत पिता मात रे ।[५]

४- अब कहा दूहरे हाथ बिकाऊं ।[६]

५- परमानंद सिंधु को परिहरि नदी शरण कहां जाऊं ।[७]

१- दृष्टव्य,परिशिष्ट पद संख्या ११ २- दृष्टव्य,पद सं० १३
३- ,, ,, ,, १ ४- ,, ,, ३
५- ,, ,, ,, ६ ६- ,, ,, ११
७- ,, ,, ,, ११

कुछ पदों में परमानंददास का उपदेशक का व्यक्तित्व अभिव्यक्त हुआ है किन्तु ऐसे पद अपवाद रूप में ही प्राप्त हुए हैं। एक पद में वे मन को चेतावनी देते हुए कहते हैं :

जनम पदारथ खोशो जात रे
शमरण जा जन कर केश पको,जब लगी नेण गलीत गात रे ।
अ संगी सब दिवस चार के , धन दारा सुत पिता मात रे ।[१]

आलोच्य पदों में यद्यपि भाषा के अलंकरण एवं सचेत शब्द विन्यास का यत्न नहीं मिलता, जो उनकी उत्सव तथा प्रचार मूलक प्रवृत्ति के कारण एक सीमा तक स्वाभाविक भी प्रतीत होता है किन्तु गेयता के कारण पदों के चरणों में तरलता एवं लयात्मकता लाने के उद्देश्य से छेकानुप्रास के प्रयोग भी यत्र तत्र लक्षित होते हैं --

परमानंद सुख सिंधु हिंडोरे,हरख हरख जस गावे [२]

दुज दसन अति लाल , अधर अंग रचे हो
तीज तरुनी ग्वालि, बन में सिंगार चली ।[३]

परमानंददास के सभी पद गेय हैं किन्तु कहीं-कहीं विशिष्ट गेयता तथा सामूहिक गान की उपयुक्तता के उद्देश्य से उनमें लोक धुनों का भी प्रयोग हुआ है। यद्यपि इन पदों में प्रयुक्त लोकधुनें सामान्य कोटि की हैं फिर भी उनके द्वारा गुजरात में प्रचलित परमानंददास के लोकधुनों से युक्त पदों का रूप प्रतीक रूप में स्पष्ट हो जाता है । लोक धुन युक्त एक पदका यहाँ उद्धृत करना पर्याप्त होगा --

परिव यों न संवरि राधा जोरी बनी हो
दुज दसन अति लाल, अधर अंग रचे हो
तीज तरुनी ग्वालि बान में सिंगार चनी
चौथ चमर गज गाव फुलेल गुलाल भरे
पांचो पंच सुखो नेन सुरंग रचे हो ।[४]

१- द्रष्टव्य,परिशिष्ट पद सं० ६
२- ,, ,, ,, १३
३- ,, ,, ,, १४

कृष्णदास

कृष्णदास के गुजराती हस्तलिखित पद संग्रहों में प्राप्त पद संख्या में तो कम हैं हीं, काव्य-दृष्टि से भी ये पद सम्पन्न नहीं कहे जा सकते । इन पदों में कृष्णदास के भक्ति-भाव तथा राधा कृष्ण की लीलाओं की अभिव्यक्ति हुई है तथा इनमें राधा जन्म, हिंडोला मान लीला, वसंत और फाग आदि विषय मुख्य हैं । इसके अतिरिक्त कुछ पद राधा - कृष्ण के रूप चित्रण से भी सम्बद्ध हैं । परमानंददास के समान कृष्णदास के भी गुजराती हस्तलिखित पद संग्रहों में प्राप्त पद यद्यपि उनके यथार्थ कवि रूप को उद्घाटित नहीं करते तथापि उनके कतिपय अप्रकाशित पद कृष्णलीला तथा भक्ति विषयक नवीन प्रसंगों की उद्भावना की दृष्टि से महत्वपूर्ण (प्रतीत) होते हैं ।

कृष्णदास के अधिकांश अप्रकाशित पद वर्णनात्मक प्रकृति के हैं तथा इनमें राधा - कृष्ण की विविध लीलाओं से संबंधित दृश्यों की अवतारणा हुई है । हिंडोले के एक पद में राधा कृष्ण के क्रीड़ा विलास का वर्णन हुआ है ।[1]

कुछ पद गो० विट्ठलनाथ की स्तुति के भी प्राप्त होते हैं । ऐसे पद विशुद्ध साम्प्रदायिक दृष्टि से रचे गए प्रतीत होते हैं । इन पदों में गो० विट्ठलनाथ के प्रति कृष्णदास की श्रद्धा अभिव्यक्त हुई है ।[2]

एक पद[3] में गो० विट्ठलनाथ जी के होली खेलने का पर्याप्त रोचक वर्णन मिलता है जो कृष्णदास की मौलिक उद्भावना का द्योतक है । इसके अन्तर्गत गो० विट्ठलनाथ के ६ पुत्रों तथा अष्टछाप के कुंभनदास और गोविंदस्वामी को छोड़कर अन्य सभी कवियों का उल्लेख हुआ है जो होली की लीला में विभिन्न प्रकार का योग देते हैं ।

राधा और कृष्ण की क्रीड़ाओं का चित्रण कृष्णदास ने अनेक प्रकार से किया है । एक पद में राधा के क्रिया चतुर नायिका के रूप का चित्रण पर्याप्त रोचक है ।[4] वह कृष्ण के आगमन की प्रतीक्षा करती है तथा कृष्ण के अवलोकनार्थ माला को छोड़कर आंगन में

१- द्रष्टव्य, परिशिष्ट पद सं० १८

२- ,, ,, ,, २८

३- ,, ,, ,, १८

४- ,, ,, ,, १५

बिखरा देती है। इस प्रकार वह पुष्पचयन के व्याज से समय व्यतीत करती है। राधा दीपक को मंद करके पुन: उसे प्रज्वलित करने के उद्देश्य से आती है। राधा की यह समस्त क्रियाएं उसके इच्छित को अभिव्यक्त नहीं होने देतीं।

कृष्णदास के गुजराती हस्तलिखित पद संग्रहों में प्राप्त पदों में ब्रजभाषा के साथ गुजराती का मिश्रण हुआ है। भाषा के साथ गुजरात के लोक जीवन तथा खाद्य पदार्थों से संबंधित शब्दावली का प्रयोग उनके पदों की एक महत्वपूर्ण विशेषता है। एक पद में कृष्ण के भोग का वर्णन करते हुए कुछ गुजराती व्यंजनों यथा- दूध पाक,श्रीखंड,शाकेर जौन आदि का उल्लेख किया है।[1] ऐसे पद साम्प्रदायिक सेवा के निमित्त रचे गए प्रतीत होते हैं। इसीलिए उनमें ब्रज प्रदेश से इतर गुर्जर व्यंजनों का वर्णन प्राप्त होता है। अष्ट - छाप के अन्य कवियों के उत्सव विषयक पदों में इस प्रकार के वर्णन प्राय: नहीं मिलते। अतएव इस पद का समस्त अष्टछाप काव्य में अपना विशेष महत्व है।

यह संकेत किया जा चुका है कि भाव की गम्भीर अभिव्यक्ति पदों की उत्सव परकता के कारण इन पदों में गौण रही है। आत्मगत अभिव्यक्ति की दृष्टि से कृष्णदास के आलोच्य पद महत्वपूर्ण नहीं कहे जा सकते। इनमें वस्तु तत्व अवश्य कहीं-कहीं भाव संवलित होकर आया है किन्तु ऐसे स्थल भी अपवाद रूप में ही प्राप्त होते हैं।कृष्णदास के अप्रकाशित पदों में कलात्मकता का कोई आग्रह नहीं मिलता। रूप चित्रण के प्रसंगों में सादृश्यमूलक उपमा का प्रयोग मिलता है। यथा -

> रमक फुमक सुर मधुरं दियै, गावत राग महारी।
> प्यारी औढ़े नीली सारी, ज्यों घन में चपला री।[2]

इन पदों की भाषा गुजराती मिश्रित और व्यवहारिक है। कहीं-कहीं अनुप्रासिकता तथा वर्ण मैत्री के भी प्रयोग मिल जाते हैं किन्तु उनमें कलात्मकता का आभास नहीं मिलता यथा -

अनुप्रासिकता क- हसत हसावत हाव भाव लिए, कोटि मदन छवि न्यारी।
ललितादिक सखी फोंटा दे दे, झुलावत प्रभु तारी।[3]

१- द्रष्टव्य, परिशिष्ट पद सं० २८

२- ,, ,, ,, २२

३- ,, ,, ,, २२

ख- बिच बाजत मुंह कों मुरली बजाय,कोउ डफ मधुर सु मिलाए ।[1]

ग-ऐसेमा कहै कहा कवी वनाय, यह सुख समोह सेवक दिखाय ।[2]

वर्ण मैत्री

क- कर मुरली सुरली करली अंत,अधर धरे रुरियारी ।
मुकुट सीस ग्रीवा की लटकन कही न सकै कवितारी ।[3]

ख- राधा मुख राजित ससि लाजत, मिड्यौं मंन कौ गारो ।
जे कृष्णदास दंपत सुख संपत, बिगरत नहिं बिसारो ।[4]

कुंभनदास

कुंभनदास के आलोच्य अप्रकाशित पद गोवर्धन,गोदोहन,और हिंडोला लीलाओं पर आधारित हैं। कुंभनदास के सभी अप्रकाशित पद उत्सवपरक है,तथा अनुभूति और कला की दृष्टि से इनका कोई महत्व लक्षित नहीं होता । गोवर्धन लीला के पदों में अवश्य कृष्ण के रूप का प्रसंगवश कथन हुआ है जो अत्यन्त सामान्य कोटि का है । गोदोहन का केवल एक अप्रकाशित पद मिलता है[5]। वह भी साधारण कोटि का है । हिंडोला के पद की प्रकृति भी इसी प्रकार की है । उसमें राधा कृष्ण को गोपियों के द्वारा झुलाने का कथन हुआ है ।

इस प्रकार स्पष्ट है कि कुंभनदास के गुजराती हस्तलिखित पद संग्रहों में प्राप्त अप्रकाशित पद भाव और कला की दृष्टि से सम्पन्न नहीं कहे जा सकते । इनके माध्यम से कुंभनदास के कवि व्यक्तित्व का वास्तविक बोध नहीं होता ।

१-दृष्टव्य, परिशिष्ट पद सं० १८   २- दृष्टव्य, परिशिष्ट पद सं० १८
३- " " 22   ४- " " 21

कबीर

कबीर के पद गुजरात में पर्याप्त लोकप्रिय हुए । आलोच्य पदकारों में उनके पद गुजराती हस्तलिखित पद संग्रहों में जिस परिमाण में प्राप्त होते हैं , वह उनकी सहज लोकप्रियता का प्रमाण है । कबीर के इन गुजराती हस्तलिखित पद संग्रहों में प्राप्त पदों की यह विशेषता है कि वे उनके वास्तविक व्यक्तित्व का परिचय कराने में पर्याप्त सीमा तक सहायक होते हैं फिर भी अप्रकाशित पदों के आधार पर कबीर की विचारधारा का कोई निश्चित रूप निर्धारित नहीं किया जा सकता । इन पदों में मुख्य रूप से उपदेश, कथन तथा आध्यात्मिक विचारों की ही अभिव्यक्ति हुई है । कबीर का समाज सुधारक का व्यक्तित्व अपेक्षाकृत गौण हो गया है ।

कबीर के आलोच्य अप्रकाशित पद उनकी अनुभूति एवं आध्यात्मिक भावधारा के प्रतिफलन से प्रतीत होते हैं । कबीर की उपदेश कथन, सिद्धान्त निरुपण एवं आलोचना की वृत्तियां इन पदों में स्पष्टतया परिलक्षित होती है । आत्मानुभूति मूलक होने के कारण कबीर के आलोच्य पदों में वस्तु तत्व का अभाव मिलता है । सामान्यतया उनके अनुभवों की व्यंजना ही इन पदों का मूलाधार है ।[१]

कबीर के अप्रकाशित पदों में उनके प्रिय अलंकार रूपक का पर्याप्त प्रयोग हुआ है । प्रतीकात्मक पद्धति पर सांगरूपकों की योजना करते हुए उन्होंने अपने कथ्य की अभिव्यक्ति की है । इस प्रकार के पद उनके चिन्तन की विविध आध्यात्मिक स्थितियों की ही व्यंजना कराते हैं । एक पद में जीव की अन्तिम अवस्था का चित्रण इसी प्रकार का है ।[२]

इन पदों में कहीं-कहीं उनकी निर्गुण उपासना का सैद्धान्तिक निरूपण भी हुआ है । शून्य तत्व के स्वरूप और उसकी व्याप्ति का निरूपण करते हुए कबीरदास कहते

१- द्रष्टव्य, परिशिष्ट पद सं० , ३२

२- ,, ,, ,, , २८

हैं --

> बुझ्ऊ खेल खिलारी रे
> चतुर सखी मिल खेल बिचारा, आंखि मूंद अधियारी रे
> परम पियारी बैठन हारी ढुंढत है कछु पानी है ।[१]

कबीर के अन्य प्रकाशित पदों में भी शून्य साधना का यही रूप प्राप्त होता है । एक पद में उलटवांसी की शैली का भी प्रयोग मिलता है । माया और ममता को गुरु ज्ञान के अस्त्रों द्वारा समाप्त करने का वर्णन करते हुए इस पद में नारी को माया के रूप में चित्रित किया है ।[२] कबीर के अन्य पदों में नारी और माया के तादात्म्य का निरूपण इसी प्रकार से हुआ है ।

इसी प्रकार एक अन्य पद में उन्होंने प्रेम तत्व की महत्ता का उपदेशात्मक विधि से कथन किया है । प्रेम तत्व अन्तत: भगवद्भक्ति का उपकरण ही सिद्ध होता है । अपने कथ्य को बोधगम्य बनाने के लिए कबीर ने परम्परागत अवान्तर कथाओं तथा लोक विश्वासों का भी आश्रय लिया है ।[३] आलोच्य पदों में कबीर का समाज सुधारक का व्यक्तित्व भी देखने को मिल जाता है जिसकी मूल प्रेरणा धार्मिक एवं आध्यात्मिक ही है । संसार की नश्वरता का चित्रण करते हुए विभिन्न धर्मों के वाह्याचारों,उनके मिथ्या भेद बताते हुए वे राम नाम से ही जीवन की श्रेष्ठता समझते हैं । कबीर का इसी भाव को व्यंजित करने वाला प्रस्तुत पद उनके व्यक्तित्व की पूर्ण सम्यक् अभिव्यक्ति कहा जा सकता है--

> जीव रे राम परम पद जपणा, प्रभु जी बिना नहीं कोई अपना
> माटी चण चण मैहल बणाये, मुरख कहै घर मेरा ।[४]

इन पदों में कबीर ने अपने कथ्य को रूपकों और प्रतीकों के माध्यम से अभिव्यक्त किया है । इन पदों में कबीर के प्रतीक मौलिक हैं । रूपक योजना में जो प्रतीकात्मक शब्दावली रखी है, वह उनकी लोक दृष्टि की परिचायक है । इस प्रकार के कुछ प्रयोग

१- परिशिष्ट पद सं० २८,
२- ,, ,, २९,
३- ,, ,, ३०,
४- ,, ,, ३२,

दृष्टव्य है -

क- कित गये पंच किसान हमारे[1]

ख- दास कबीर पिया बहुर न मिलिबो
ज्यों तरुवर जरै पात रे [2]

ग- लैहै लगाम ज्ञान कै घोड़ा, सुरत निरत चित मटका[3]

घ- सुरत कमान शब्द का रे भनका, मारी रे मन की झांह रे करका[4]

ङ- निर्गुण नारी सौ फेरा फिरिया, विकट लोक मा वास[5]

च- धीरज धरती कुसल धीया, पाछौ प्रेम बनाया[6]

कबीर के गुजराती हस्तलिखित पद संग्रहों में प्राप्त पदों की भाषा उनके प्रकाशित एवं प्राप्त पदों की भाषा से पर्याप्त समानता रखती है। लोक तत्वों से अनुप्राणित होते हुए भी वह अभिव्यक्ति में सर्वत्र सक्षम लक्षित होती है। कबीर की विचारधारा तथा दार्शनिक तथ्यों को अभिव्यक्त करने वाली शब्दावली भी इन पदों में कहीं-कहीं व्यवहृत हुई है -

क- नाम महातम रटत निसदिन कारज उनको सरे[7]

ख- लैह लगाम ज्ञान के घोड़ा, सुरत निरत चित मटका[8]

ग- नास कहूं तो सदगुरु, जी लाजे वणना से कोई जोगी[9]
कैहत कबीर सुनो भाई साधौ, तो सत चित आनंद होई

१- परिशिष्ट पद सं० २८ ।
२- ,, ,, ३२ ।
३- ,, ,, ३४ ।
४- ,, ,, ३५ ।
५- ,, ,, ३६ ।
६- परिशिष्ट पद सं० ७१ ।
७- ,, ,, ३० ।
८- ,, ,, ३५ ।
९- ,, ,, ३५ ।

घ- सत शब्द की परख न जानै, जब लग परतीत न आवै [1]

ड- चेतन पुरुष करै कौतवाली, सो नगरनमूसे कोई [2]

च- सत रज तम ये मेट तू मेरा , निज कन राशि विराजै [3]

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि कबीर के आलोच्य पद अप्रकाशित होने की ही दृष्टि से नहीं, सुदूर गुजरात में उनकी भाव धारा तथा अनुभूति को उनकी प्रकृति के अनुरूप पहुंचाने में पर्याप्त सहायक हुए हैं। इस दृष्टि से इन पदों का अपना महत्व है।

इन पदों में परमानंददास, कृष्णदास, कुंभनदास, तथा कबीर के आलोच्य अप्रकाशित पदों में मुख्य रूप से उनके साम्प्रदायिक भाव धारा एवं मतों की ही अभिव्यक्ति हुई है। कृष्ण भक्त कवियों के पद अनुभूति की दृष्टि से उतने सम्पन्न नहीं हैं जितने कि कबीर के पद सम्पन्न दिखाई पड़ते हैं। कृष्ण भक्त कवियों के पदों में वात्सल्य और माधुर्य लीलाओं के स्फुट प्रसंगों की रूढ़ अभिव्यक्ति हुई है। अत: इन पदों में इनसे संबंधित वात्सल्य और माधुर्य रस ही व्यंजित हो सके हैं। कबीर के पदों में शान्त रस प्रमुख रहा है। इसका कारण उनकी आध्यात्मिक विचारधारा है। उपदेश कथन एवं सिद्धान्त निरूपण के आग्रहवश कबीर के पदों में जो प्रतीक योजना तथा सैद्धान्तिक शब्दावली आ गई है उसके परिणामस्वरूप उनके पदों में कहीं-कहीं नीरसता भी प्रतीत होती है जो प्रकारान्तर से उनके समस्त कृतित्व की प्रकृति के अनुरूप ही है।

-o-

---

१. परिशिष्ट, पद सं० ३८
२. " " ४०
३. " " ४१

उपसंहार

मध्ययुग में गुजरात की भूमि मध्यदेश के विभिन्न भक्ति-सम्प्रदायों के प्रचार एवं प्रसार के लिए उपयुक्त सिद्ध हुई। गुजराती जन-मानस में भक्ति भावना का प्रसार होने के कारण वहां सगुण और निर्गुण विचारधारा वाले विभिन्न सम्प्रदायों को प्रचार का अनुकूल अवसर प्राप्त हुआ। निम्बार्क,वल्लभ,चैतन्य,राधावल्लभ, हरिदासी रामानंदी एवं कबीर पंथ आदि विभिन्न सम्प्रदाय किसी न किसी रूप में गुजरात पहुंचे और वहां के लोक मानस को प्रभावित करने में सफल रहे। अन्य भक्त-सम्प्रदायों की अपेक्षा कृष्ण भक्ति के विभिन्न सम्प्रदायों की उपासना विधि में कीर्तन का अपना एक विशिष्ट स्थान है। इष्ट से सम्बन्धित सारे कार्य कीर्तन से ही प्रारम्भ होकर कीर्तन से ही समाप्त होते हैं। गुजरात में इन सम्प्रदायों के प्रसार के कारण ये पद गुजरात पहुंचे और इनकी परम्परा को अक्षुण्ण बनाये रखने के लिए इन पदों को लिपिबद्ध किया गया।

गुजरात में प्राप्त इन हस्तलिखित ग्रंथों की प्रकृति कुछ विशिष्ट प्रकार की है। जो संग्रहकर्ता या लिपिकार जिस सम्प्रदाय विशेष से सम्बद्ध था उसने अपने संग्रह में उसी सम्प्रदाय के पदों को प्रधानता दी। संग्रहकर्ता यदि निर्गुण विचारधारा का समर्थक था तो उसके संग्रह में कबीर,रैदास,मलूकदास,के ही पद संग्रह किये गये। इसी प्रकार वल्लभ सम्प्रदाय के अनुयायी के संग्रह में पुष्टिमार्ग के कवियों के पदों को ही स्थान मिल सका। इसके अतिरिक्त भी विभिन्न उत्सवों से सम्बन्धित पदों को ही संकलित किया गया। कुछ संकलनों में होली धमार, और हिंडोले के ही पद प्राप्त होते हैं और कुछ में कृष्ण जन्म और बधाइयों के ही पदों का संकलन है। प्रस्तुत अध्ययन से सम्बन्धित कुछ हस्तलिखित प्रतियां विशेष उल्लेखनीय हैं। ६४५,१३७७ गु० संख्यक प्रतियोंमें कबीर तथा अन्य निर्गुण धारा वाले कवियों के ही पद प्राप्त होते हैं। ६८३ गु० प्रति में सूरदास और मीरां के आत्मनिवेदन से सम्बन्धित पद ही मिलते हैं। १४७० गु० एवं १३४ फा० संख्यक प्रतियों में वर्षा,हिंडोरा,मल्हार आदि विषय से सम्बन्धित पद प्राप्त होते हैं। १०६१ गु० संख्यक प्रति में वल्लभाचार्य एवं विट्ठलनाथ से सम्बन्धित पदों को ही संकलित किया गया।

इस प्रकार हम देखते हैं कि गुजरात में प्राप्त हस्तलिखित पद-संग्रहों को साम्प्रदायिक दृष्टिकोण से लिपिबद्ध किया गया। जिसके फलस्वरूप कुछ निश्चित उत्सवों से सम्बन्धित और विशेष कवियों के ही पदों को इनमें स्थान मिल सका।

यह हस्तलिखित पद-संग्रह गुजरात के विभिन्न व्यक्तिगत और सार्वजनिक संग्रहों में सुरक्षित हैं। समय के व्यतीत होने के साथ ही बहुत से संग्रह समाप्त हो गये और अब उनका कोई अस्तित्व ही नहीं है। स्व० इच्छाराम सूर्यराम देसाई नो गुजराती प्रेस, बम्बई, श्री अंबालाल बुलाकी नक्स जानी, बम्बई, श्री पुरुषोतम विश्राम मावजी जे०पी आदि विभिन्न संग्रह अब उपलब्ध नहीं हैं। गुजराती हस्तलिखित पद-संग्रहों की महत्ता को देखते हुये इस बात की अपेक्षा है कि इनकी सुरक्षा और व्यवस्था उचित प्रकार से की जाये जिससे इनमें लिपिबद्ध साहित्य को सुरक्षित रक्खा जा सके।

गुजरात में लगभग मध्यदेश के सभी भक्ति सम्प्रदायों का प्रचार किसी न किसी रूप में हुआ जिसके फलस्वरूप उनका पद साहित्य भी गुजरात में लोकप्रिय हुआ। प्रतिदिन पूजा-पद्धति में उनका गायन आवश्यक था अत: उन्हें लिपिबद्ध कर पर्याप्त संरक्षण प्रदान किया गया। कृष्ण भक्ति विषयक जो पद गुजरात पहुँचे वे विषय की दृष्टि से विविधता सम्पन्न नहीं हैं। पदों के पहुँचने का मुख्य कारण साम्प्रदायिक है अत: सम्प्रदाय विशेष से सम्बन्धित पद ही गुजरात पहुँचे और वहाँ उनका प्रचार हुआ। कृष्ण की अलौकिक लीलाओं से सम्बन्धित एक भी पद हस्तलिखित पद-संग्रहों में नहीं प्राप्त होते। इसी प्रकार राम विषयक पदों में भी असुर संहार के पद नहीं मिलते। ऐसा संभव जान पड़ता है कि गुजरात के लोक मानस को कृष्ण के वात्सल्य एवं माधुर्य भावमूलक उपासना पद्धति ने अधिक प्रभावित किया जबकि कृष्ण का ऐश्वर्य परक रूप प्रभावित न कर सका। इसी के फलस्वरूप कृष्ण की द्वारका लीला के भी पद नहीं प्राप्त होते। यह बात वास्तव में बड़े आश्चर्य की है कि द्वारका की स्थिति गुजरात में होने पर भी द्वारका लीला के पदों को इन हस्तलिखित पद-संग्रहों में कोई स्थान न प्राप्त हो सका। कृष्ण और राम के साथ ही गो० वल्लभाचार्य एवं विट्ठलनाथ विषयक जिन पदों का संकलन किया गया उनमें इन आचार्यों की महिमा एवं स्तुति का ही गान है जिसके मूल में वल्लभ सम्प्रदाय की उपासना पद्धति ही मुख्य है। निर्गुण भक्त कवियों के जिन पदों का गुजरात में प्रचार हुआ वे चेतावनी, भक्ति, एवं गुरु महिमा से ही सम्बन्धित हैं। वास्तव में संत कवियों के ये ही मुख्य विषय हैं।

वल्लभ सम्प्रदाय के विगत अध्ययन के आधार पर हम कह सकते हैं कि गुजरात में

वल्लभ सम्प्रदाय के कवियों के ही पद अधिक मात्रा में संकलित किये गये । यहां पर हम विभिन्न कवियों और ~~ब~~ उनके प्राप्त पदों की संख्या दे रहे हैं जिससे यह स्थिति अधिक स्पष्ट हो सकेगी कि किस कवि के प्राप्त पदों की संख्या ~~कितने-है-~~ कितनी है, इससे उनके प्रभाव का भी पता चल सकेगा ---

कवि नाम	-	प्राप्त पदों की संख्या
श्री भट्ट	-	६
सूरदास	-	१८०
परमानंददास	-	१४८
कुंभनदास	-	३३
कृष्णदास	-	६०
नंददास	-	४३
चतुर्भुजदास	-	७८
गोविंदस्वामी	-	७०
छीतस्वामी	-	३५
कटहरिया	-	२
कान्हरदास	-	३
जनभगवान	-	४
दास	-	१०
द्वारिकेश	-	११
व्रजोत्सव (व्रजपति)	-	६
दासी	-	४
गो० विट्ठलनाथ गंगाबाई	-	२४
दयाल	-	२
मदनमोहन	-	१
विष्णुदास	-	४
रामदास	-	२०
हरिराय	-	३०

लालदास	-	४
मधुरादास	-	१
हरजीवन	-	३
नेहा	-	४
धौंधी	-	१
माधवदास	-	७
मानकचंद	-	६
रामराय हित भगवानदास	-	३
श्री रघुनाथ	-	२
यादवेन्द्र	-	२
हृषिकेश	-	७
स्यामदास	-	८
पद्मनाभदास	-	१
आसकरन	-	१२
गदाधर भट्ट	-	८
सूरदास मदनमोहन	-	१०
वल्लभ रसिक	-	२
श्री हित हरिवंश	-	१२
हरिराम व्यास	-	[illegible]
हित रूपलाल	-	६
हित दामोदर	-	१
नागरीदास	-	१
किशोरीलाल	-	७
चन्द्रसखी	-	४
हरिदास	-	१२
विट्ठल विपुल	-	२
गो० तुलसीदास	-	८०
अगदास	-	२०

रामानंद	-	१
प्रागदास	-	१
धन्ना भगत	-	२
राम सेवक	-	१
कबीर	-	१५१
रैदास	-	३२
धरमदास	-	२
दादू	-	६
मलूकदास	-	३
गरीबदास	-	१
मीरा	-	११५
तानसेन	-	१२
गंग	-	४
नरसी	-	१
ब्रह्मानंद	-	१
नामदेव	-	५

इस सूची से भी पूर्वोक्त तथ्य का समर्थन होता है कि अन्य सम्प्रदायों की अपेक्षा वल्लभ सम्प्रदाय के भक्त कवियों के पदों को अधिक महत्व मिला। इसमें भी अष्टछाप के कविगण, हरिराय, आदि कवियों के पद अन्यों की अपेक्षा अधिक संख्या में प्राप्त होते हैं। इसका कारण इन सभी कवियों का सम्प्रदाय में विशेष स्थान का होना है। निम्बार्क, राधावल्लभ, हरिदासी, चैतन्य आदि सम्प्रदायों का कम प्रचार हुआ जिसके फलस्वरूप इन सम्प्रदायों के कवियों के पद भी अल्प मात्रा में ही प्राप्त होते हैं। गो० तुलसीदास एवं अग्रदास के पद अन्य राम भक्त कवियों की अपेक्षा अधिक प्राप्त होते हैं। गो० तुलसीदास के पदों का गुजरात में अधिक प्रचार हुआ। कुछ विद्वान गुजराती भक्त कवियों - यथा भालण आदि पर इनका प्रभाव भी मानते हैं। संत कवियों में कबीर के पद पर्याप्त संख्या में प्राप्त हुये हैं। गुजरात में कबीर पंथ का प्रचार वल्लभ सम्प्रदाय के समान अधिक हुआ। वहां कबीर पंथ के केन्द्रों की स्थापना अनेक स्थानों पर हुई तथा अनेक मठों का निर्माण हुआ। कबीर के विचारों का

गुजरात की निर्गुणधारा पर विशेष प्रभाव पड़ा और उससे प्रेरित होकर अनेक कवियों ने काव्य सृजना की । इसी कारण कबीर के पद गुजरात में अधिक लोकप्रिय हुये । अन्य कवियों में मीरां के पदों की संख्या अधिक है । मीरां के जीवन का उत्तरार्ध गुजरात में ही व्यतीत हुआ । गुजराती विद्वान मीरां को गुजरात की ही कवियत्री मानते हैं । गुजरात में मीरां का भक्ति के क्षेत्र में अधिक प्राधान्य होने के कारण ही इनके पदों का आधिक्य लक्षित होता है ।

गुजराती हस्तलिखित पद-संग्रहों में प्राप्त पदों की तुलना जब हम उनके मुद्रित रूपों से करते हैं तो उनमें महत्त्वपूर्ण अन्तर प्राप्त होते हैं । यह अन्तर कवि नाम , चरणों की न्यूनाधिकता और पाठ की अत्यधिक भिन्नता के रूप में लक्षित होते हैं। यद्यपि अधिकांश पदों में पर्याप्त समानता मिलती है फिर भी क्षेत्रीय संस्कार और स्थानान्तरण के प्रमाणस्वरूप उनमें उपरोक्त प्रकार के जो अन्तर आ गये हैं उनका अपना अध्ययनगत वैशिष्ट्य है ।

आलोच्य पदों में सूरदास,परमानंददास,कबीर के कुछ पदों के पाठ मुद्रित पाठ की तुलना में अधिक श्रेष्ठ सिद्ध होते हैं । मुद्रित पाठों में जहां पुनरावृत्ति ,अस्पष्टता, असंगता, खंडित एवं विवादग्रस्त आदि पाठगत दोष प्राप्त होते हैं,वहीं हस्तलिखित पद संग्रहों के द्वारा हमें इन पदों के प्रामाणिक,तर्क संगत, गेय युक्त पाठ मिलते हैं । इन प्राप्त पाठों के द्वारा हम मुद्रित पाठों में संशोधन कर विभिन्न पाठों को अधिक श्रेष्ठ बना सकते हैं । इस प्रकार गुजराती हस्तलिखित पद-संग्रहों में प्राप्त विभिन्न पदों के पाठ मुद्रित पाठ की तुलना में अधिक ग्राह्य हैं और इनके द्वारा हम एक अभाव की पूर्ति कर सकते हैं ।

गुजराती हस्तलिखित पद-संग्रहों के आलोच्य पदों की भाषा के अध्ययन से यह स्थिति अधिक स्पष्ट हो जाती है कि जब एक भाषा के पद दूसरी भाषा में लिपिबद्ध किये जाते हैं तो ध्वनि-परिवर्तनों के कारण उनके रूपों में अन्तर आ जाता है। इन ध्वनि-परिवर्तनों के मूल में लेखन-पद्धति,सरलीकरण की प्रवृत्ति , प्रतिलिपिकार की असावधानी आदि कारण कार्य करते रहते हैं । इन्हीं सब कारणों से इ का ई, उ का ऊ , क का ग , इ का ये , तथा अन्य प्रकार के ध्वनि परिवर्तन प्राप्त होते हैं । साथ ही क्षेत्र विशेष की भाषा का भी प्रभाव किसी न किसी रूप में अवश्य पड़ता है । हिन्दी के पद जब गुजराती में लिपिबद्ध किये गये तो उन पर गुजराती भाषा का भी प्रभाव पड़ा । गुजराती भाषा का यह प्रभाव संज्ञा,सर्वनाम,क्रिया,

विशेषण,अव्यय, सभी रूपों में प्राप्त होता है ।

गुजराती हस्तलिखित पद-संग्रहों में प्राप्त पद छंद वैविध्य की दृष्टि से अधिक सम्पन्न नहीं हैं । गुजरात में कीर्तनों का अधिक प्रचार होने के कारण केवल मात्रिक छंदो के ही पद प्राप्त होते हैं । वर्णिक छंदो के पद उपलब्ध नहीं होते । मात्रिक छंदों में भी सरसी,सार,विष्णुपद,उपमान,शोमन,रूपमाला,हरिप्रिया, आदि छंद ही अधिक प्रयुक्त हुये । विविध छंदों में रचित पदों के अनेक रूप उपलब्ध होते हैं जैसे ध्रुवा रहित,ध्रुवा सहित एक या दो पंक्तियों के ध्रुवाओं के पद आदि । विभिन्न कृष्ण भक्त कवियों के पदों में संगीत के वाद्य यंत्रों एवं रागों का भी निर्देश प्राप्त होता है । कृष्ण भक्ति साहित्य में संगीत का प्राधान्य ही इसका मुख्य कारण कहा जा सकता है ।

गुजराती हस्तलिखित पद-संग्रहों में परमानंददास, कृष्णदास, कुंभनदास,एवं कबीर के ऐसे पद प्राप्त हुये हैं जो मुद्रित संस्करणों में नहीं प्राप्त होते । जहां इनमें से अधिकांश पदों की विषय वस्तु मुद्रित संस्करणों से पर्याप्त समानता रखती है , वहीं कुछ पद नवीन विषयों के भी मिलते हैं । भाव,भाषा और विचार सभी दृष्टियों से यह पद इन्हीं कवियों के ज्ञात होते हैं । हिन्दी धारा से जब कि इनका लोप हो गया, गुजरात में इनकी परंपरा सुरक्षित रही । इस दृष्टि से गुजराती हस्तलिखित पद-संग्रहों का विशेष महत्व है ।

उपर्युक्त अध्ययन के आधार पर यह कहा जा सकता है कि गुजरात में जो पद पहुंचे,उनका व्यक्तित्व साम्प्रदायिक अधिक साहित्यिक कम था । केवल सूरदास और मीरां के पद इसके अपवाद कहे जा सकते हैं । इसके अतिरिक्त जो पद हिन्दी प्रदेश में लोकप्रिय थे वे अपनी इसी विशेषता के कारण लोक के माध्यम से गुजरात पहुंचे । ये पद अपनी भाव-परिधि की व्यापकता,रसमयता और उत्कृष्टता के कारण हिन्दी प्रदेश और गुजरात के लोक मानस को एक सूत्र में बांधने में शताब्दियों से सफल सिद्ध हुये हैं । इन पदों का भाषा,पाठ आदि विभिन्न दृष्टियों से अत्यन्त महत्व है तथा इनके अध्ययन से हिन्दी मध्ययुगीन भक्ति साहित्य के क्षेत्र में अभिवृद्धि निश्चित है । विशेषकर आज जब हिन्दी के अन्तर्प्रान्तीय संदर्भों पर विशेष प्रकाश डालने की आव--श्यकता है । प्रस्तुत अध्ययन शोध के उद्देश्य से किया गया पहला व्यवस्थित प्रयत्न है ।

परिशिष्ट

पद संग्रह

परमानंददास

१

दौ ब्रषभान हमारी गइया
बार बार द्वार हौ टेरत, हलधर जु के भैया ।
शामी सांझ की बाग ते, बीछरी अधरात न रुख पइया ।
दीजे बन माहि कल न परत है, कहत हौ कुंवर कनइया ।
सुन पिया वचन कुंवरी अटा चढ़, जा लइहौ मै गौर वे ।
परमानंद कर बली औहे , मृगनैनी ------------- ।[१]

२

करौ कलेउ कहत जसौदा , सुन्दर मेरे गिरीधर लाल ।
दूध दही पकवान मिठाई, माखन मिश्री परम रसाल ।
पीछि खेलन जावो लड़ैते , संग लेहो सब व्रज के बाल ।
चौवा चंदन अगर कुमकुमा, फेंटन भर लेहो अबीर गुलाल ।
कियो कलेउ मन को भायो, हलधर संग सकल मिल ग्वाल ।
कियो विचार फाग खेलन कौ, परमानंद प्रभु नयन विसाल ।[२]

३

भाजेग शबन थे नारी रानी
जाओ पूत शपूत पनोती, कुल दीपक अजुवारौ ।
गोद लिये झुलरावत गावत,और लागत अति प्यारो।
परमानंददास को ठाकुर गोकुल लोचन तारौ ।[३]

१- ह०प्र०सं० ६-८ डा०
२- ,, २७०३ गु०
३- ,, १५६१ गु०

४

दीपमालिका को दिन आज,
बौत दीपक प्रगटे मौवन में, आनंदे अति प्रति जी राज ।
पर भुषण पेहरावो लाल कुं,बल मौह्न लैल्यौ घौ मांथ ।
गौपी जन मिल मंगल गावत, नर बल्ल जसौदा मात ।
- - -
सुरि नर मुनीवर नरखत शौभा, परमानंददास बलिहार ।[१]

५-

हरजी फुरखा बंधन आई
जरित जराव बनी अति सुंदर हीरा लाल मां लाई ।
कंचन थाल साज लिये कर वेन सुभद्रा लाई ।
कुंकम तिलक दुब कर अरचित ---- -- मुगता बधमई ।
अे शौभा वरने कहा कहुं शब कौउ के हाथ बंधाई ।
अेह छबी निरखी शाम सुंदर की परमानंद बल हौ जाई ।[२]

६

राग रामश्री

पवित्रां पेहरेत नंदलाल
श्रावण मास श्रदपल मनोहर, हरी बासुर अमसार ।
घर घर ते सब सुंदरी आंई , काजर तिलक बनाय ।
भुषन बसन संगार सुभग मिल गावत मंगलचार ।
मुदित भये सबे ब्रुजवासी , आनंद मगन प्रीति त्रवीघ ।

१- ह०प्र०सं० १११ फा०
२- ,, २०६ फा०

मौह्न सुं बौलत जै जैकार
भौग समरपण कीयौ विविध , रस नाना भांत रसाल ।
परमानंद स्वामी कैल कतौह्ल , लीला ललित गौपाल ।[१]

७

गौवरधन पर बनै पर बोल मैर
इत ही श्याम घन मौरली बजाई, उत ही मेह घन ोर ।
चल हौ सखी अब कुंज मह्ल में , मौ मौ हौत पवन फकौर।
परमानंददास कौ बिछुड़ौ , गाजत है घनघौर ।[२]

८

प्रैम कीजे हौ गापी,
मदन गौपाल किजे बस अपने, उधर सांम भुजा हौ गौपी ।
सुकमुनि वास प्रशंसा कीनी , औघ वसतं सराई ।
भौले भाव गौकुल की वनिता, अत ही पुनीत भव माही हौ ।
कहा जौ भयौ बिप्रकुल जन्मौ , जौ हरी सैवा नाहीं ।
सौ कुल कुलहीन दास परमानंद , जौ हरी सनमुख नाहीं ।[३]

९

जनम पदारथ बौहौ जात रे,
शमरणा जा जन कर कैश पकौ,जब लगी नैण गलीत गात रे ।
जे संगी सब दिवश चार के, धन दारा सुत पिता मात रे ।
समभ सौच मुरख मन हारे, तज अमरीत तु वर्णाई खात रे ।
परमानंददास मन चैतौ , काल अचानक देत धान रे ।[४]

१- ह०प्र०सं० १ म० २- ह०प्र०सं० १३२० गु०
३- ,, ११६० गु० ४- ,, ११८ गु०

१०

राग सारंग

जौ गौपिन कुं प्रेम न होतौ , औरर भागवत पुरान ।
सब ही औघट पंथी होते , कथ तज मईया म्यान ।
पाखंड धर्म भयो कलजुग में , भक्त धर्म भयो लोप ।
परमानंद वेद पथ विगस्यो , कृष्णा कीजे कौप ।[१]

११

राग आसावरी

अब कहा दुसरे हाथ बिकाउं
मन मधुकर कीओ वारे तें , चरण कंवल में ठाऊं ।
जौ कीउ जानुं दुसरौ करता, तौ मन पें पछताऊं ।
या की वै हु ताके सवे लायक, अघ दावानल नाहुं ।
जौ परतीत होत युग जैसी, परमत्य देल डराऊं ।
परमानंद सिंध कौ परिहरि,नदी शरण कहां जाऊं ।[२]

१२

कुबजा तु काहे न मंगल गावे
सौल सहस्त्र गौपन कौ ठाकुर, सौ तेरे घर आवे ।
सौ दन तौकु वीसर गये री, घर घर भरती पानी ।
अब तौ मुख से काहे बौले , पांचन में पटरानी ।
सुख सनकादिक नारद मुनिजन,वाही के सुपने नावे ।
परमानंददास कौ ठाकुर , अपने हाथ जमावे ।[३]

१-- ह०प्र०सं० १ म०
२- ह०प्र०सं० १ आ०
३- ह०प्र०सं० १००० गु०

१३

राग आसावरी

चितवत कउसल्या मुख चंद
बार बार विधु बदन बिलोकत , रोम रोम आनंद ।
कौण वृत कौण पुन्य मैं कीनो,ताको फल मोहि आन विधाता
रामचन्द्र सुत दीनो ।
कै सनकादिक नारद आद देह पुरन कीयें आयो ।
कहा ये देह कीट सो नंदी , जहां रघुरतन उपायो ।
सिव विरंच सिर मुगट सिरोमणि सो पै पान करावे ।
परमानंद सुख सिंधु हींडोरे , हरिख हरिख जस गावे ।[1]

१४

परिव यों न बविरि राधा जोरी बनी हो ।
दुज दसन अति लाल अधर रंग रचे हो ।
तीज तरुनी ग्वालि बन मों सिंगार करी ।
चौथ चमर गज गावफुलेल गुलाल भरे ।
पांचो पंच सुणे नैन सुरंग रचे हो ।
छटि छेल राधा सेज रची हो ।
सातो समदी कान्ह नटवर भेष धरे हो ।
आठो अंग लगाइ वाके श्याम गये हो ।
नौमी नवल किशोर मौर सिरबंद धरे हो ।
दशमी दश अवतार घर घर बाजि रहे ।
एकादशी मोतीन हर लट कान लटिक रहे हो ।
द्वादसी तिलकनि लाट हीरा लाल बने हो ।
तेरम तरुनि गुवाउलि उर नख औपि रही हो ।

१- ह०प्र०सं० ७१ आ०

चौदस फौरा फेरि सब नंद भुवन गये हो ।
पुन्यों होरी लगाउ खेल स्याम हरी हो ।
नंद दयौ बहुदान जसोदा चीर दये ।
सोभा बरनी न जाई नइ अति आनंद बढ्यौ हो ।
जन परमानंद गाइ हरि के चरन रह्यौ हो ।[१]

--

कृष्णादास

१५

कऊं री तु घरी घरी इंह आवे
नंदनंदन सु हीत काहे मोई कऊं न बतावे ।
मन माला ले आये अ अंगन में तोर डार बगरावे ।
बीनन के मिस संग अवलोकत और ही पोहोर बतावे।
दीपक ज्यार द्वार मंदो कर फर बारन कु आवे ।
हरदे उजारो अंधेरो ही चाहे ना दीपक बीतलावे ।
कैहत जसोमती सुनो सखी री इंहा कोउ समफावे।
क्रीसनदास गरिधर छबीलो ताहे लगी सुणपावे ।[२]

१- ह०प्र०सं० १२० गु०
२- ह०प्र०सं० १००० गु०

१६

पवीत्रां पैहरी गिरधर लाला
तीनई लौक पवीत्र कीओ हैं श्री विट्ठलनाथ विशाल ।
शावण वृत अेकादशी हौत है म नाल भरी ।
करत शीगार शीगारन बैठौ देत पवीत्रां उदार ।
कहा कहुं अंग की शौभा , उर बनी बनमाला ।
करशणदास गौकुल के बाशी , पैहरत बाल गौपाल ।[१]

१७

कर ही कलेऊ मदन गोपाल
मधुमेवा पक्वान मिठाई , भर भर राखे कंचनथार ।
माखन मिश्री सच जम्यौ दधी औट्यौ दुध अरु सरस मल्हाय ।
आपहुं खायौ ग्वालन संग लैके पाछे खेलौ सघन वन जाइ ।
करत कलेउ राम कृष्ण दौउ बीर ही संग लीये सब ग्वाल ।
करहैं बात फाग खेलन की कृष्णदास मनमौहन लाल ।[२]

१८

खेलत बसंत विट्ठलेसराय , नीज सैवक सुख देखे हैं आये ।
श्री गीरिधर राजा बुलाये, श्री गौविंद जब पिचकारी लाय ।
श्री बालकृष्ण छवि कही न जाय, श्री गौकुलनाथ लीला देखाय।
रघुनाथ लाल अरगजा लाय , यदुनाथ लाल चौवा मंगाई ।
घनश्याम धाम फैंटन भराय, सब बालक खेलत एक दाय ।
तहां सुरदास नाचत हैं भाय, परमानंद घौर गुलाल लाय ।
चतुर्भुजदास केसर माठ भरीये, छीतस्वामी बूका फैके जाय ।
नंददास नीरखी छबी कहत जाय,गावे कुंभनदास वैना बजाय ।

१- ह०प्र०सं० १३२६ गु०
२- ह०प्र०सं० २७०३ गु०

सब गोविंद बालक छीरके आय, कोउ नाचत देह दीसा भुलाय ।
सब बालक हो हो बोले जाय , उड़्यो अबीर गुलाल घुंघर कराय।
पीचकारी इत उत छीटे जाय , कोउ फैकत फुलन अपने माय ।
कोउ चोवा ले छीरके बनाय , त्या बाजे ताल मृदंग माय ।
बिच बाजत मुंहचुंग मुरली बजाय, कोउ डफ ले महुवर सु मीलाय।
एक नाचत पग नूपुर बजाय , बढ़्यो सुख समोह कछु कही न जाय।
सब बालक मीनें अंग बुचाय , गोकुल घर सुख ही छाय ।
यैसो भा कहे कहा कवी बनाय,यह सुख समोह सेवक दिखाय ।
तहां सुर कुसुम वरखत हैं आय , सब गावत मीठी गारी माय ।
सब अपुनो मनोरथ करत आय , तहां कृष्णादास बलहारी जाय ।[१]

१६

राग मलार

नंदनंदन वृषभान दुलारी , बैठे हींडोरे जुगल पीया प्यारी ।
स्याम सनेही बचन कोऊ न बोले,घुघंट छांड बदन कोऊ न खोले।
निरख सुधारस नीकेहुं पीजे , मान वचन मोहे या सुख दीजे ।
सुख दीजे स्यामा अेही विनती कामनी प्रति युं कह्यो ।
मान घटा घन पटली अेसो सुख लह्यो ।
बचन सुन के मान्यनी अमे सुं अवलोकनी,प्रीत की छवि कहा बरनु
मोहे ओंर रती पती ।
हींडोर मन मत गोपका मुसकनी कल मोहे ना परे ।
कहत कृष्णादास गिरीधर संग स्याम ले चले ।[२]

१- ह०प्र०सं० २७०३ गु०
२- ह०प्र०सं० २ म०

२०

भोजन कीजे कुंवर कनैआ , भूखे बोत भजे जदुराजे ।
मधु मेवा पकवान मिठाई, जशोमती थाल लेकर आई ।
लाडु शेवैआ ने शुणाली प्रीते आरोगो वनमाल ।
पुरी दुधपाक शु मेजी श्रीखंड कीधो छे शाकर जोल ।
बीजन बोत भात को कीनो , मोहन हरखी स्वाद शु लीनो ।
रुची शुं भोजन कीनो मोरारी, जमनोदन जल भरी छे भारी ।
पान पचांश वालु रे बीडु बीडी शेवक लावे श्मारी ।
(आ)रती कंचन था(ल) जो वारी, कृष्णदास बीहारी।[1]

२१

प्यारी संग झूलत नंद दुलारो
सुरंग पात्र सिर छोगो सोहे , झगुला कनक तारो ।
राधा मुख राजित ससि लाजत, मिट्यों मंन को गारो ।
जे कृष्णदास दंपत सुख संपत बिसरत नाहिं बिसारो ।[2]

२२

झूलत रसिक कुंवर बनवारी जू
कर मुरली मुरली करली वते अधर धरे हरियारी ।
मुकुट सीस ग्रीवा की लटकन कही न सके कवितारी ।
रमक झुमक सुर मधुरें दियें , गावत राग मलारी ।
प्यारी ओढ़े नीली सारी ज्यों घन में चपला री ।
हसत हसावत हाव भाव लियें कोटि मदन छवि न्यारी।
ललितादिक सखी झोंटा दे दे झुलरावत प्रभु तारी ।
जे कृष्णदास की जीवन ता दोउ राधे कुंज बिहारी ।[3]

१- ह०प्र०सं० १५५ फा० २- ह०प्र०सं० १३४ फा०

३- ह०प्र०सं० १३४ फा०

कुंभनदास

२३

मौय जात न बरनी यह छवी मौपै जात न बरनी ।
श्री गौवरधन के आस पास ते दुल रही सब सरणी ।
मदन मौहन पीया खेलन निकसै संग स्यामा मन हरणी ।
कुंभनदास प्रभु गौबरधन घर धन्य धन्य बृज की धरनी ।[1]

२४

बादुर अंबर छायौ देखौ रे बादुर अंबर छायौ ।
अेक अचानक नंद जी कौ ढौटा ताआ पर अंदर चढ़ावो ।
तब हरी जे अेक बुध परकाशी कर गही राज उठायौ ।
गौपी गौपालण शरनागत राखे कुंभनदास जस गायौ ।[2]

२५

श्री गौबरधन की औार डीगर चलौ ।
मारग बीच मीले मौहन नागर नंद कीशौर ।
ढौर ढौर ब्रुम वैली फुली कुंज कौकिला मौर ।
कुंभनदास प्रभु गौबरधन घर रसीक राव शीरमौर ।[3]

२६

मैया धेन धौवत नंदरानी मैया
आसौ बदगीयौ दसी दन तुम गावत मंगल बानी ।
न्हवत सजे संगार अनौपम आप करन मनमानी ।
कुंभनदास लालन गीरीधर देखत हसत नंदरानी ।[4]

१- ह०प्र०सं० २५५६ गु०

२- ह०प्र०सं० २५४७ गु०

३- ह०प्र०सं० १०६१ गु०

४- ह०प्र०सं० ६-१५ डा०

२७

झांझरिया झमक बाजे झूले दौउ राज
भुवन भुवन थे झुलावत आईं, सजी अपनौ सब साज ।
हरि कौं झुलावति भैरै सुर गावति तजी सब मन की लाज ।
कुंभनदास प्रभु यह विधि झूले सब गौपिन सीरताज ।[१]

कबीर

२८

कित गये पंच किसान हमारे
आय दिवान गाव मध बैठे , लैखे कागद डारे ।
निकसी बाकी पकर मुकदम , सबही हौय गय न्यारे ।
रुक गये कंठ शब्द नहीं उचरत,परै कष्ट अति भारे ।
दगाबाज सौ साझा कीन्हौं, वे साह बिचारे ।
सूकौ खेत बीज गयौ निफल , रुक गये चार पनारे।
कबिरा गांव बोहोर नहिं बसवो,उठि गये सींचन हार ।[२]

२९

राग भूपाली

बुझउ खेल खिलारी रे
चतुर सखी मिल खेल बिचारा , आंखि मूंद अंधियारो रे ।
परम पियारी बैठन हारी , ढुंढत है कछु पानी रे ।
वे दौउ फुनि चहुं दिस धावै, सून्य ही सून्य समानी रे ।

१- ह०प्र०सं० १३४ फा०
२- ह०प्र०सं० १ म०

जब उन्ह सुन्य रूप अवगाहा, तब इन्ह येक बनाया रे ।
येक रूप औ येक नाम धरि , सुन्य अकार छ्याया रे ।
उन्हें येक येक करि ढुंडावों , दो ही रूप समानी रे ।
वही बरन और वही नाम धरि खोजत दोउ लजानी रे ।
येहि भांति नवनिधि देन ष्यों, नाम येक नारी रे ।
कहै कबीर आगीली बानी , नवधा भक्ति सवारी रे ।[१]

३०

राग कनड़ो

प्रेम के बस पड़े जन कोई , प्रेम के बस परै ।
घाट औ घाट बाट सभी, कोटिन में कोउ तरै ।
दिपक देषी पतंग हुलस्यो, जीव देत न डरै ।
नाद घंटा सुनत माघा , मुषे तरन न चरै ।
सकल बन में भमत भरा , सो बास कमल की करै ।
स्वांत बुंद कु रटत पीय , निसदिन पीउ पीउ करै।
चकोर कुं बल बोहोत चंद को, सो अंगन में परवरै ।
जैसे हरिया लगत लकरी, सो भोमी पाव न धरै ।
सुरा बांधी रन चढ़े , तोहु मरन से न डरै ।
सती अपने सत कारन, पीउ के संग जरै ।
नाम महातम रटत निसदिन, कारज उनको सरै ।
कहै कबीर हरि तब पइये , जो जीब ताही मरै।[२]

३१

आंजन आंजीये नीज सोय ,
जाही अंजन तिमर नासे नैन निरमल होय ।
गुरु सांई मुक्त ज्ञान बतावे , दिल की दुबध्या खोय ।

१- ह०प्र०सं० १ वा०
२- ह०प्र०सं० ८६५ गु०

वेद साईं जे पीउ मेरे , फेर पीउ न होय ।
सर्स साबु सूपड़ धोबी , गुरु का भी मल डारे धोय ।
कहे कबीर हरि तब पइये, जो येका येकी होय ।[१]

३२

अपने साख्व की कात री में काको पूछूं
जान सुजान पीआ प्रीत बना सबई बटाऊ लोक री ।
बरछे मार दे बानी कीती इंया तन कस बेहाल री ।
नदिया नीर धार अति धार कोई न उतरा जात रे ।
मावा मोहो मदन के माते , फरे वणज कि घाट रे ।
मूरख पांच अमात संगी , सुमर सुमर रे ।
दास कबीर पिया बोहरि ना मिलवो जउ तर बर जरे पात रे ।[२]

३३

जीबरे राम पद जपणा , प्रभु जी बिना नहीं कोई अपना ।
माटी षण षण मेह्ल बणाये,मुरष कहे घर मेरा ।
आवेगा जमरा तलब लगावे , तो नहीं मेरा नहीं तेरा ।
हिंदू बोले राम ही राम , तुरकी बोले खुदाई ।
हिंदू जाले मुसलमान गाड़ , तो षाकमें मां षाक मलाई ।
को लूटे धन जोबन बावरे , को लूटे सुंदर नारी ।
राम परम पद कोउ न लूटे , कबीर भीखारी ।[३]

१- ह०प्र०सं० ८६५ गु०
२- ह०प्र०सं० १००० गु०
३- ह०प्र०सं० ३ आ०

३४

रमौ मन रमनां हे रे
छरबे गघन बीचे अटकत नाही , केवल मुती मेदाना ।
लैहे लगाम ज्ञान के घोड़ा , सुरत निरत चीत मटका ।
सैजे चढु सत्य गुरु जी के वचने , तौ मीट गया मन का मटका ।
हैरण नाद ने बुदह थोड़ी , रवी ससि खाली ना पड़ना ।
आसन पाली मगन होकर बैठा, तौ मीट गया आवागमना ।
त्रीता नाम मां त्रीभौवन सूझे, सदुगुरु अलख लखाया ।
जब कारण जोगी बाहर ढूढत है,ते घट मीतर पाया ।
अेक मां अनेक अनेक मां अेक ते अनेक नी पाया ।
अेक देखी जब परचारे , तौ अेक मां अनेक समाया ।
नास कहुं तौ सदगुरु जी लाजे , बण्ना से कोई जौगी ।
कहेत कबीर सुनो भाई साधु , तौ सतचित आनंद होई ।[१]

३५

प्रेम कटारी जेहे ने प्रेम की रे यागी
मारण हारार रे सतगुरु सुरा , ते प्रेमासन सुरा ।
सुरत कमान सबद कारे मलका , मारी रे मन की छांह रे करका ।
गहेलघु मैरे मरण की रे लागी, देवता पेवता मुंम तारे तागी ।
मीतर मलका रहा रे तन माही, सालत बुकत कल जारे मांही ।
घायल की गति घायल बुझे , मीतर पीड़ा पण बाहर नाहीं सूझे ।
कहेत कबीर मुवरि मन मांही , फौर मरने की आशा नाहीं ।[२]

१- ह०प्र०सं० १०३८ गु०

२- वही

३६

आर भजा रे अला यार हमारा, सब जीवन का रे प्राण अधारा ।
में जुत अेक ने दस दरवाजा , तापर मला पढ़े नीबाजा ।
पांच पीर करे कफराना , मरी मरी रे मौरे मौला रे वाणा ।
पांच पीर बसे एक थान , अन मंगर जे नाबत खाना ।
चंचलचीत वाहारे डरावी , अन पाणी तौ पकडावी ।
सैत पान जो पावे बीडा , सत लौक मां करत है क्रीड़ा ।
नाम अघौर सतगुरु में पाई , आवागमन थी लीओ है छांडाई ।
केहेत कबीर सुनो नर सोही , प्रेम भगती बिना मुगती न होई।[१]

३७

साधौ कहे सुने कछु नाहीं
जौ यह जीव जंजाल न छूटे , विषै विकल बुधि माही ।
साषि सिषि ब्रह होय बोढ़ा, निरभै विषै कमावै ।
पूछे ते परपंचि प्रानी साष निगम की ल्यावै ।
अकरे अनीत मगन माया मौ कहे अगम की बानी ।
यह परतीत राम नहिं माने , मूठ माछली जानी ।
देषत का सिध सीधक दीसे , इन्द्रीया बहु अपराधी ।
जा घर नाम नहिं निज निर्मल, राम भक्त नहिं साधी।
जो कछु कीया अबूभ अमाने , अजहुं चेत सयाने ।
कहे कबीर तिन्है काहा कहीये, जे देषत भीस भुलाने ।[२]

३८

साधौ दया पदौं सौं न्यारी
जब लग मन बिसराम न आवे, क्या बानी बिस्तारी ।
निस बासर येक पलक औ सुरति विषैं कौं तरसै ।
सुमरन भजन ग्यान कौ पूरौ तौउ राम नहिं दरसै ।

१- ह०प्र०सं० १०३८ गु०

२- ह०प्र०सं० ३ आ०

सत सबद की परख न जाने , जब लग परतीत न आवै ।
अबनासि कौं अंग न दीया , तौ बादि भरम मरिकावै ।
तन मन खोज मेटि आपन यो, पद मो प्रान समाई ।
कहै कबीर जानिये तब ही दखे त्रीभुवन राई ।[1]

३६

संतो घर की कहा न मानै , मैं प्रगट कह्यौं रे ग्याने ।
सोवै सवारी उठै अवारी , दोपहरे दर रांधे ।
खाति बिरीया लरिका पटके कलह कंथ सो बाँधे ।
ममता नारी बहु विध मारी , सब्द गुरु की लाठी ।
धेर धेर घर माहैल्या उठौ ले नाठी नाठी ।
निर्गुन नारि सो फेरा फिरिया विकट लोक मा बास।
कहै कबीर सुनो रे साधो क्यों हांसी घर वासा ।[2]

४०

राम राजे मन की आसा पाउं ताथे काया नगरी बसाउं ।
सोलै खाई दस दरवाजे , बावने अंगूरे ।
तीन सो आठ घेट चारे लागे तो परजा दुखी सहोवै ।
चेतन पूरण करे कोतवाली तो नगर न मूसे कोई ।
अस धे ऊपर राजा राज करत है नसदन फरत है दुवाई ।
काम करोध दूनो गरदन मारे , ऐसी अदल चलाई ।
गानांन मां भार रहो भरपूरे , कछु खरचो कछु खावो ।
दास कबीर चढ़े घढ़ ऊपर तो जीत नसान बजाई ।[3]

१- ह०प्र०सं० १ म०

२- ह०प्र०सं० १ म०

३- ह०प्र०सं० २ उ०प्र०

४१

मन मेरी येसी खेती करिये , ताथै काल दुकाल न डरिये ।
धीरज धरती बुधबल धीया , पाछौ प्रेम बनाया ।
जुरा जौती जुगति करि ल्हीया , सांचा सिरिया पाया ।
आल जंजाल छांड मन मेरे , हरि हरि बीज बवाई ।
चेतन राष चिरी रषवाला, उपन्या षेत न षाई ।
सत रज तम ये मेटि तू मेरा, निज कन राशि विराजे ।
कहै कबीर सो जन के ऐसी , ताकै दिवस निवाजे ।[1]

-0-

१- ह०प्र०सं० २ ज्ञा

सहायक ग्रंथ सूची

क- प्रकाशित काव्य

१- कबीर ग्रंथावली	संपादक-डा० पारसनाथ तिवारी, प्रकाशक-हिन्दी परिषद्, प्रयाग विश्वविद्यालय,प्रयाग प्रथम संस्करण १९६१ ई० ।
२- कबीर ग्रंथावली	संपादक- श्याम सुंदर दास , नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी ।
३- कीर्तन संग्रह(तीन भाग)	प्रकाशक- लल्लूभाई छगनलाल देसाई , श्री भक्त ग्रंथमाला कार्यालय , अहमदाबाद,द्वितीय संस्करण १९९३ वि० ।
४- कुंभनदास (जीवनी-पदसंग्रह,भावार्थ)	संपादक- श्री ब्रजभूषण शर्मा , विद्या विभाग कांकरौली , प्रथम संस्करण, १९५४ ई० ।
५- कृष्णदास (पद संग्रह)	संपादक - श्री ब्रजभूषण शर्मा, विद्या विभाग कांकरौली ।
६- गोविन्दस्वामी (साहित्यिक विश्लेषण,वार्ता और पद संग्रह)	संपादक- श्री ब्रजभूषण शर्मा , विद्या विभाग कांकरौली, प्रथमावृत्ति २००८ वि० ।
७- गोस्वामी हरिराय जी का पद साहित्य	संपादक- श्री प्रभुदयाल मीतल, साहित्य संस्थान मथुरा , प्रथम संस्करण , १९६२ ई० ।
८- चतुर्भुजदास (पद संग्रह)	संपादक- श्री ब्रजभूषण शर्मा , विद्या विभाग कांकरौली ।
९- चंदसखी का जीवन और साहित्य	श्री प्रभुदयाल मीतल , साहित्य संस्थान, मथुरा प्रथम संस्करण , १९६३ ई० ।
१०- चंदसखी की जीवनी और पदावली	श्री प्रभुदयाल मीतल , अखिल भारतीय ब्रज साहित्य मण्डल , मथुरा प्रथम संस्करण २०१४ वि० ।
११- चंदसखी के भजन और लोकगीत	श्री प्रभुदयाल मीतल , सूचना विभाग, उत्तर प्रदेश सरकार , प्रथम संस्करण १९५७ ई० ।

१२- छीतस्वामी — संपादक- श्री ब्रजभूषण शर्मा, विद्या विभाग, कांकरौली , प्रथम संस्करण २०१२ वि० ।

१३- तुलसी ग्रंथावली (दूसरा खण्ड) — संपादक- रामचन्द्र शुक्ल,भगवानदीन,ब्रजरत्नदास प्रकाशक- नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी २००४ वि० ।

१४- नंददास (प्रथम,द्वितीय भाग) — संपादक- पं० उमाशंकर शुक्ल प्रकाशक- प्रयाग विश्वविद्यालय , प्रयाग प्रथम संस्करण , १६४२ ई० ।

१५- नंददास ग्रंथावली — संपादक- ब्रजरत्नदास प्रकाशक- नागरी प्रचारिणी सभा,वाराणसी २०१४ वि० ।

१६- परमानंद सागर (पद संग्रह) — संपादक- डा० गोवर्धननाथ शुक्ल प्रकाशक- भारत प्रकाशन मन्दिर अलीगढ़ ।

१७- परमानंद सागर — संपादक- श्री ब्रजभूषण शर्मा प्रकाशक- विद्या विभाग, कांकरौली।२०१६ वि० ।

१८- बीजक — संपादक- विचारदास शास्त्री प्रकाशक- रामनारायण लाल, प्रयाग ।

१६- ब्रज माधुरी सार — संपादक- वियोगी हरि प्रकाशक- हिन्दी साहित्य सम्मेलन , प्रयाग १६६६ वि० ।

२०- भक्त कवि व्यास जी — संपादक- वासुदेव गोस्वामी प्रकाशक- अग्रवाल प्रेस मथुरा ।

२१- मीरांबाई की पदावली — परशुराम चतुर्वेदी, हिन्दी साहित्य सम्मेलन , प्रयाग ।

२२- मीरां भजनमाला तथा जीवनी — लालसिंह शक्तावत, मीरां मन्दिर चित्तौड़गढ़, २०१२ वि० चतुर्थ संस्करण ।

२३- मीरां वृहत पद संग्रह — पद्मावती शबनम, लोकसेवक प्रकाशन, बुलानाला,वाराणसी ।

२४- मीरां स्मृति ग्रंथ — बंगीय हिन्दी परिषद् , कलकत्ता , प्रथमावृति, २००६ वि० ।

२५- मीरां सुधा सिंधु — स्वामी आनन्द स्वरूप, श्री मीरां प्रकाशन समिति, भीलवाड़ा २०१४ वि० ।

२६- मौल्लीवाणी श्री गदाधर भट्ट जी की — कृष्णदास , कुसुम सरोवर ~ गोवर्धन २००० वि० ।

२७- रामानंद की हिन्दी रचनाएं — हजारी प्रसाद द्विवेदी , नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, २०१२ वि० ।

२८- वाणी श्री बल्लभ रसिक जी की — कृष्णदास , कुसुम सरोवर , प्रथमावृति ।

२९- शब्द विलास — आचार्य मदन साहब , आचार्य गद्दी , बड़ैया जौनपुर ।

३०- श्री दादू दयाल जी की बाणी — संपादक- मंगलदास स्वामी, प्रकाशक- स्वामी लक्ष्मीराम प्रेस,जयपुर १९५१ ई० ।

३१- श्री निम्बार्क माधुरी — श्री बिहारी शरण, १९९७ वि० ।

३२- श्री व्यास वाणी (पूर्वार्द्ध-उत्तरार्द्ध) — प्रकाशक- अखिल भारतवर्षीय श्री हित राधावल्लभी वैष्णव महासभा, वृन्दावन , प्रथमावृत्ति १९९१वि०

३३- श्री हित चौरासी (स्फुटवाणी और सेवक वाणी सहित) — ललिता चरण गोस्वामी नेशनल पब्लिशिंग हाउस , दिल्ली प्रथम संस्करण १९६३ ई० ।

३४- श्रृंगार रस सागर — बाबा तुलसीदास गोपाल भवन, दुसायत , वृन्दावन ।

३५- संत कबीर — संपादक- डा० रामकुमार वर्मा प्रकाशक- साहित्य भवन प्राइवेट लिमिटेड प्रयाग ।

३६- संत काव्य — परशुराम चतुर्वेदी, किताब महल , प्रथम संस्करण १९५२ ई० ।

३७- संतवाणी संग्रह — वेलवेडियर प्रेस, प्रयाग १९३२ ई० ।

३८- संगीत राग कल्पद्रुम — प्रकाशक- बंगीय साहित्य परिषद् मंदिर, कलकत्ता, १९७३ वि० ।

३९- संगीत सम्राट तानसेन (जीवनी - रचनाएं) — प्रभुदयाल मीतल साहित्य संस्थान, मथुरा ,प्रथम संस्करण २०१७वि

४०- सूरदास मदनमोहन जीवनी और पदावली — प्रभुदायल मीतल , अग्रवाल प्रेस , मथुरा, प्रथम संस्करण २०१५वि० ।

४१- सूरसागर (प्रथम-द्वितीय भाग) — संपादक- नंददुलारे वाजपेयी
प्रकाशक- नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी
द्वितीय संस्करण, २०१२ वि० ।

४२- सूर सारावली — प्रभुदयाल मीतल,
अग्रवाल प्रेस, मथुरा, प्रथम संस्करण २०१४ वि०।

ख- शोध प्रबन्ध और आलोचना साहित्य

१- अकबरी दरबार के हिन्दी कवि — डा० सरयु प्रसाद अग्रवाल,
लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ ।

२- अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय — डा० दीनदयाल गुप्त,
हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग ।

३- अष्टछाप परिचय — प्रभुदयाल मीतल,
अग्रवाल प्रेस मथुरा, २००६ वि० ।

४- उत्तर भारत की संत परम्परा — परशुराम चतुर्वेदी,
भारती भण्डार, प्रयाग, प्रथम संस्करण २००८वि०।

५- कांकरौली का इतिहास (द्वितीय भाग) — कण्ठमणि शास्त्री,
विद्या विभाग, कांकरौली, प्रथम संस्करण१९९६वि

६- गुजराती और ब्रजभाषा कृष्ण-काव्य का तुलनात्मक अध्ययन — डा० जगदीश गुप्त,
हिन्दी परिषद्, विश्वविद्यालय प्रयाग
प्रथम संस्करण १९५८ ई० ।

७- छंद प्रभाकर — जगन्नाथ प्रसाद भानु,
जगन्नाथ प्रेस, बिलासपुर ।

८- तुलसीदास	डा० माता प्रसाद गुप्त हिन्दी परिषद्,प्रयाग विश्वविद्यालय प्रयाग ।
९- तुलसीदास की भाषा	डा० देवकीनन्दन श्रीवास्तव लखनऊ विश्वविद्यालय,लखनऊ २०१४ वि०
१०- दो सौ बावन वैष्णव की वार्ता	संपादक- श्री ब्रजभूषण शर्मा एवं श्री द्वारिका दास पारीख , शुद्धादेत एकेडेमी,कांकरोली ।
११- धीरेन्द्र वर्मा विशेषांक	संपादक- डा० व्रजेश्वर वर्मा, भारतीय हिन्दी परिषद् , प्रयाग १९६०ई०।
१२- पुरानी राजस्थानी	अनुवादक- नामवर सिंह नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी २०१२ वि० ।
१३- ब्रजभाषा	डा० धीरेन्द्र वर्मा, हिन्दुस्तानी एकेडेमी , प्रयाग १९५४ ई० ।
१४- ब्रज और ब्रजयात्रा	
१५- ब्रज का इतिहास (द्वितीय खण्ड)	संपादक- श्री कृष्णदत्त वाजपेयी अखिल भारतीय ब्रज साहित्य मंडल,मथुरा २०१५ वि० ।
१६- ब्रजभाषा कृष्णभक्ति काव्य में अभिव्यंजना शिल्प	डा० सावित्री सिनहा
१७- भागवत सम्प्रदाय	स्व० मुंशी देवी प्रसाद, नागरी प्रचारिणी सभा , २०१० वि० ।

१८- भावनगर कांग्रेस स्मृति ग्रंथ	
१६- भाषण	कण्ठमणि शास्त्री, श्री वा०शु०महात्मा कार्यालय सूरत सं०१६६८ ।
२०- मिश्रबन्धु विनोद	मिश्रबन्धु , हिन्दी ग्रंथ प्रसारक मंडली,खण्डवा ।
२१- राधावल्लभ सम्प्रदाय सिद्धान्त और साहित्य	डा० विजयेन्द्र स्नातक नेशनल पब्लिशिंग हाउस ,२०१४ वि० ।
२२- राम भक्ति में रसिक सम्प्रदाय	डा० भगवती प्रसाद सिंह, अवध साहित्य मंदिर,बलरामपुर ।
२३- रामानंद सम्प्रदाय तथा हिन्दी साहित्य पर उसका प्रभाव	डा० बदरीनारायण श्रीवास्तव हिन्दी परिषद्, विश्वविद्यालय प्रयाग ।
२४- राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त अभिनन्दन ग्रंथ	प्रकाशक- राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त अभिनन्दन समिति,८७ विवेकानंद रोड़ कलकत्ता - ६ ।
२५- वार्ता साहित्य	डा० हरिहर नाथ टण्डन भारत प्रकाशन मन्दिर, अलीगढ़ ।
२६- श्री द्वारिकानाथ की प्राग्ट्य वार्ता	श्री कण्ठमणि शास्त्री, विद्या विभाग, कांकरौली ।
२७- श्री भक्तमाल	श्री सीतारामशरण भगवान प्रसाद रूपकला तेजकुमार प्रेस बुक डिपो,लखनऊ, तृतीय संस्करण १६५१ वि० ।
२८- श्री हित श्रीराधावल्लभीय भक्तमाल अर्थात वृहत अनन्य रसिकावली	पं० रसिक अनन्य हित प्रियादास शुक्ल प्रकाशक- पं० प्रियादास त्मज ब्रजवल्लभदास मुखिया , मथुरा ,प्रथम संस्करण १६८६ वि०

२९- श्री हित हरिवंश गोस्वामी सम्प्रदाय और साहित्य — ललिताचरण गोस्वामी, वेणु प्रकाशन, वृन्दावन २०१४ वि० ।

३०- साहित्य वाचस्पति सेठ कन्हैयाल पोद्दार अभिनन्दन ग्रंथ — संपादक- वासुदेव शरण अग्रवाल प्रकाशक- अखिल भारतीय ब्रज साहित्य मण्डल , मथुरा २०१० वि० ।

३१- सूरदास — डा० ब्रजेश्वर वर्मा , हिन्दी परिषद्, प्रयाग विश्वविद्यालय १९५८ ई० ।

३२- सूरपूर्व ब्रजभाषा और उसका साहित्य — डा० शिव प्रसाद सिंह, हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, १९५८ ई० ।

३३- सोलहवीं शती के हिन्दी और बंगाली वैष्णव कवि — डा० रत्नकुमारी , भारती साहित्य मंदिर, दिल्ली ।

३४- हिन्दी और प्रादेशिक भाषाओं का वैज्ञानिक इतिहास — शमशेर सिंह नरुला, राजकमल प्रकाशन, १९५७ ई० ।

३५- हिन्दी के कृष्णभक्ति कालीन साहित्य में संगीत — उषा गुप्ता लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ ।

३६- हिन्दी के विकास में अपभ्रंश का योग — डा० नामवर सिंह, साहित्य भवन, इलाहाबाद १९५४ ई० ।

३७- हिन्दी तद्भव शास्त्र — प्रो० मुरलीधर श्रीवास्तव, कलाकार प्रकाशन, पटना-३ १९६१ ई०

३८- हिन्दी पुस्तक साहित्य — डा० माता प्रसाद गुप्त, हिन्दुस्तानी एकैडेमी, इलाहाबाद १९४५

३९- हिन्दी भाषा और साहित्य का इतिहास — अयोध्या सिंह उपाध्याय

४०- हिन्दी साहित्य (प्रथम खण्ड, भूमिका) — संपादक- डा० धीरेन्द्र वर्मा, भारतीय हिन्दी परिषद् , प्रयाग प्रथम संस्करण, २०१९ वि० ।

४१- हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास — डा० रामकुमार वर्मा, रामनारायण लाल, इलाहाबाद ।

४२- हिन्दी साहित्य का इतिहास — रामचन्द्र शुक्ल नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी ।

४३- [illegible]

ग- अप्रकाशित शोध प्रबंध

१- हिन्दी कृष्णभक्ति काव्य — राजेन्द्र कुमार वर्मा, इलाहाबाद विश्वविद्यालय ।

घ- अन्य भाषाओं के ग्रंथ

गुजराती

१- अखा नां छप्पा — सस्तु साहित्य वर्धक कार्यालय, अहमदाबाद ।

२- अखो एक अध्ययन

३- ऐतिहासिक संशोधन — दुर्गाशंकर शास्त्री

४- कबीर सम्प्रदाय — रा०रा० किशनसिंह गौ० चावड़ा श्री फार्बस गुजराती सभा, बम्बई १९९४ वि० ।

५- गुजरात ना ऐतिहासिक लेख

६- गुजरात नो सांस्कृतिक इतिहास (इस्लामी युग १-२) — रत्नमणि राव

७- गुजराती साहित्य खण्ड ५मौं (मध्यकालीन नौ साहित्य प्र) — घी साहित्य प्रकाशक कं० ५३ मेड्डोजस्ट्रीट फोर्ट, बम्बई १९२६ ई० ।

८- गुजराती साहित्य ना मार्गसूचक अने वधु मार्ग सूचक स्तम्भो — कृष्णलाल मोहन लाल फवेरी, ऐन०ऐम०त्रिपाठी प्राइवेट लिमिटेड, प्रिन्सैस स्ट्रीट , बम्बई , १९५८ ई० ।

९- गुजराती हाथप्रतोनी संकलित यादी — श्री केशवराम काशीराम शास्त्री, गुजरात विद्या सभा, अहमदाबाद, १९३९ ई०।

१०- छठी गुजराती साहित्य परिषद् नो रिपोर्ट — गुजरात साहित्य सभा,कार्यालय अहमदाबाद ।

११- जूनी गुजराती भाषा — नरसिंहभाई पुरुषोत्तमदास पटेल देशबन्धु प्रिन्टिंग प्रैस, आनन्द, प्रथमावृत्ति , १९३५ ई० ।

१२- नरसिंह मेहताकृत काव्य संग्रह — इच्छाराम सूर्यराम देसाई। गुजराती प्रैस , १९६९ वि०, प्रथम संस्करण ।

१३- पुराणों मां गुजरात — उमाशंकर जोशी

१४- रासमाला — :

१५- बृहत काव्य दोहन भाग १,२ — इच्छाराम सूर्यराम देसाई गुजराती प्रिंटिंग प्रैस बम्बई, ।

१६- विविध धोल तथा पद संग्रह भाग १ लो — प्रकाशक- लल्लूभाई ज्ञानलाल देसाई ।

१७- वैष्णवधर्म नो संक्षिप्त इतिहास — दुर्गाशंकर के० शास्त्री, श्री फार्बस गुजराती सभा, बम्बई १९९५ वि० ।

१८- श्री भजन सागर — सस्तु साहित्य वर्धक कार्यालय, अहमदाबाद, २०१४ वि० ।

१९- श्री वल्लभ वंश पद्य वचनामृत — कवि नरसिंगदास माणा जी भाई ब्रह्मभट्ट श्री सनातन भक्ति मार्गीय साहित्य सेवा सदन, मथुरा १९८६ वि० ।

२०- शैव धर्म नो संक्षिप्त इतिहास — दुर्गाशंकर के० शास्त्री, श्री फार्बस गुजराती सभा, बम्बई १९९२ वि० ।

English

1- An Alphabetical list of Manuscript in the Oriental Institute . — By Benoytosh Bhattacharya ,Compiled by Raghvan Nambiyar catalogue Ass.O.I.Baroda 1950 .

2- Cambridge history of India

3- Chaulukyas of Gujarat — By A.K.Majumdar; Published by Bhartiya Vidya ~~Mandir~~ Bhavan 1956 .

4- Gujarat and its literature from early times to 1852 — By K.M.Munshi ; Published by Bhartiya Vidya Bhawan,Second Edition .

5- Gujarati Language and Literature . — By N.B.Devatia .

6- History Of Gujarat (vol.I 1297-A.D 1573) — By M.S. Commissariat ; Published by Longsman Green and co.Ltd. 1938 .

7- Kabir and his followers — By F.E.Keay ; Published by Assocaation Prss y.m.c.a. 5 Russell street , Calcutta .

8- Milestones in Gujarati Literature — By Krishna Lal Mohan Lal Jhaveri; Published by The Gujarati Printing Press. 1914.

9- Selection from Gujarati Literature — By Irach Jehangir Sarahji Taraporewala .Published by The University of Calcutta .

10- Somanath and other Medieyal temple in Kathiawad. — Cousense .

11- Sri Vallabhacharya Life,teaching,movement. — By Manilal,C. Parekh .

12- The Glory that was Gurjardesh — Edited by K.M.Munshi , Published by Bhartiya Vidya Bhawan, Bombay 1843 .

13. Introduction to Indian textual Criticism — S.M. Katre

ङ - पत्रिकायें , कोश

हिन्दी

उत्तर भारतीय	--	भाग ६ अंक २
गवेषणा	--	मार्च १९६४
नागरी प्रचारिणी पत्रिका	--	भाग १२
परिषद् पत्रिका	--	वर्ष १ अंक ३
ब्रजभारती	--	वर्ष २ अंक १०
भारतीय साहित्य	--	जनवरी, १९५८
भारतीय साहित्य	--	जनवरी, १९५९
भारतीय साहित्य	--	अप्रैल , १९६१
सरस्वती	--	दिसम्बर, १९६२
हिन्दी अनुशीलन	--	वर्ष १४ अंक २

गुजराती

बसंत	--	सावन-भादों १९६१
बुद्धिप्रकाश	--	१९३८ ई०

कोश

हिन्दी साहित्य कोश — सम्पादक- डा० धीरेन्द्र वर्मा
प्रकाशक - ज्ञानमण्डल लिमिटेड,वाराणसी
२०२० वि० ।